# गुप्त कालीन वैष्णव धर्म

## (बुन्देलखण्ड के विशेष संदर्भ में)

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी
के अंतर्गत

इतिहास विषय में पी-एच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत

# शोध - प्रबंध (Thesis)

# 2003
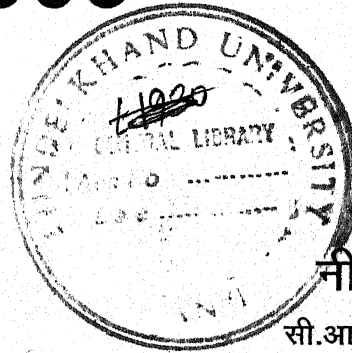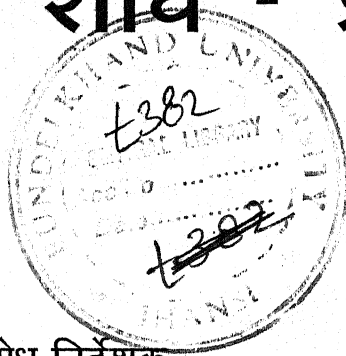
शोध निर्देशक
**डॉ. राम सजीवन शुक्ल**
एम.ए., पी-एच.डी., एल.टी. साहित्य रत्न
रीडर, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व
मथुरा प्रसाद स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोंच, जालौन
(बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी)

प्रस्तुतकर्ता
**नीता स्टीफन**
सी.आई.सी. कम्पाउण्ड
सिविल लाइन्स
झाँसी

**Dr. Ram Sajiwan Shukla**
M. A., Ph. D., L.T., Sahitya Ratna
Reader, Dept. of Ancient Indian History
Culture & Archaeology
MPPG College, Konch, Jalaun
Bundelkhand University, Jhansi

Brajeshwari Colony
Konch, Jalaun
Ph. : 05165 - 244549

# CERTIFICATE

This is to certify that the Research Work embodied in the thesis submitted for the degree of "Doctor of Philosophy" (Ph. D.) in History, entitled. "Gupta Kalin Vaishnava Dharma with special reference to Bundelkhand" is the original research work done by Neeta Stephan.

She has worked under my guidance and supervision for the required period.

29.9.03

**(Dr. Ram Sajiwan Shukla)**
M. A., Ph. D., L.T., Sahitya Ratna
Reader, Dept. of Ancient Indian History
Culture & Archaeology
MPPG College, Konch, Jalaun
Bundelkhand University, Jhansi

# पुरोवाक्

गुप्तकाल को भारत के इतिहास का स्वर्णयुग कहा जाता है, इस युग को 'क्लासिक एज' भी कहा गया है। स्वर्णयुग एवं क्लासिकल एज एक ऐसा समय है जो सामान्य से ऊपर उठकर बहुमुखी विकास के चरमोत्कर्ष पर पहुंच चुका हो। यह वह काल है, जो ऐतिहासिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक दृष्टिकोण से इतना समुन्नत हो चुका हो जो आने वाली पीढ़ियों के लिए अनुकरणीय बन जाय। जो भावी पीढ़ियों के उदाहरण स्वरूप सिद्ध हो, उसे क्लासिकल एज कहते हैं। निःसंदेह गुप्तकाल सभी क्षेत्रों में उन्नति की उच्च पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था। गुप्त युग में अनेक बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न सम्राट हुये जो सैनिक और सामरिक दृष्टि से अत्यन्त पराक्रमी, रणकुशल, व विजेता थे वे प्रजावत्सल व लोक हितकारी थे। साम्राज्यवादी व महान विजेता होते हुये भी वे नरसंहार के विरूद्ध थे। इस युग में जहां एक ओर साम्राज्य के भीतर शान्ति व सुव्यवस्था थी, वहीं दूसरी ओर विदेशों से भी हमारे सांस्कृतिक सम्बन्ध मधुर थे। साम्राज्य में राजनीतिक एकता थी। सम्पूर्ण देश धन–धान्य से परिपूर्ण था। आन्तरिक शान्ति, व्यवस्था, सुरक्षा, सफल प्रशासन और यातायात के साधनों की समुचित व्यवस्था के कारण देश में आन्तरिक और बाह्य व्यापार को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला।

विद्यानुरागी, विद्वान गुप्त सम्राटों नें न केवल साहित्य को समुचित प्रोत्साहन दिया अपितु उसे राजकीय आश्रय भी प्रदान किया। उन्होंने कवियों और लेखकों को अपने राजदरवार में आमंत्रित किया। इस काल के दिग्गज कवियों, लेखकों, नाटककारों और दार्शनिकों में भास, कालिदास, भारवि, शूद्रक, विशाखदत्त, वसुबन्धु, दण्डिन, हरिषेण, वराहमिहिर आदि के नाम अग्रगण्य है। इस युग में विज्ञान के क्षेत्र में भी प्रभूत विकास हुआ। आर्यभट्ट जैसे गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त जैसे वैज्ञानिक व चरक और सुश्रुत जैसे चिकित्सक हुये, जिन्होंने अपने–अपने क्षेत्र में अभूतपूर्व ख्याति अर्जित की। इसी काल में पालकाप्य नामक पशु चिकित्सक हुये तथा वाणभट्ट नामक चिकित्सा वैज्ञानिक हुये।

कला के सभी क्षेत्र ललितकला, स्थापत्य कला, चित्रकला व मूर्तिकला के क्षेत्र में भी गुप्तकाल ने अन्य सभी युगों को पीछे छोड़ दिया। अजन्ता और बाघ की गुफाओं की भित्ति चित्र, बिहार, चैत्य व स्तूप तथा मन्दिर आदि विविध कलाओं का जितना विकास गुप्त युग में हुआ उसे न भूतों न भविष्यत कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।

गुप्त युग में भारतीय आर्य संस्कृति का विदेशों में जितना प्रचार–प्रसार हुआ उतना किसी अन्य युग में नहीं हुआ। इस काल में मलाया, चम्पा, कम्बोडिया, इण्डोचीन, सुमात्रा, जावा, खोतान, चीनी, तुर्किस्तान आदि में भारतीय संस्कृति का प्रसार हुआ। इस परिप्रेक्ष्य में श्री अरविन्द का निम्नलिखित कथन सटीक बैठता है–

"भारत ने अपने इतिहास में कभी भी अपनी जीवन शक्ति को अनेक दशाओं में इस प्रकार प्रफुल्लित होते हुये नहीं देखा जैसा कि गुप्त युग में।"

गुप्तकाल धार्मिक विकास और धार्मिक सहिष्णुता के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध है। गुप्तकालीन धार्मिक जीवन की प्रमुख विशेषता यह रही है, कि इसने धर्म की जनवादी परम्परा को जन्म दिया। इस काल में हिन्दू धर्म में प्राचीन और नवीन तत्वों का समन्वय किया गया। अधिकांश गुप्त सम्राट वैष्णव थे। वे अपने को 'परम भागवत' कहते थे। 'भागवत' शब्द का अर्थ है अवतार। वे अपने को विष्णु का अवतार मानते थे। श्री मद्‌भागवत महापुराण के एकादश स्कन्ध के 29 वें अध्याय में भागवत धर्म का विश्‌द विवेचन किया गया है। जन्म लेने वाले प्रत्येक प्राणी को पूर्ण निष्ठा एवं लगन के साथ भगवान श्री कृष्ण (विष्णु) के चरणों में लीन हो जाना ही भागवत धर्म है। पुराणों में कहा गया है, कि वेदों में जिसे ब्रहम, विष्णु का परम पद अथवा परम धाम कहकर सम्बोधित किया गया है, परमात्मा का वही स्वरूप भगवत् है। भागवत् धर्म को सात्वत्, पांचरात्र, वासुदेव एवं एकांतिक आदि नामों से भी अभिहित किया गया है। इस धर्म के आराध्य देव वासुदेव कृष्ण है। वासुदेव कृष्ण को विष्णु का अवतार माना गया है। अतः वासुदेव कृष्ण या विष्णु (जो एक ही देव है) के उपासक वैष्णव कहलायें। वैष्णव धर्म के मूल आराध्य देवता विष्णु है। अतः

भागवत धर्म वासुदेव कृष्ण से सम्बन्धित है। महाभारत में वासुदेव कृष्ण का समीकरण स्पष्टतः विष्णु से किया गया है। वस्तुतः महाभारत काल तक वैष्णव धर्म और भागवत् धर्म एकाकार हो गये थे।

गुप्तकालीन धर्म के विविध तत्वों के गहन अध्ययन के उपरान्त ऐसा जान पड़ता है कि, वैष्णव धर्म, वैदिक धर्म का ही एक विकसित रूप था, जिनके अनुपालन में गुप्त शासकों ने वैदिक धर्म के प्राचीन तत्वों से कुछ खोया नहीं वरन् नवीन तत्वों से कुछ न कुछ प्राप्त अवश्य किया। अतः यदि यह कहा जाय कि वैष्णव धर्म (भागवत् धर्म) वैदिक धर्म का एक विकसित स्वरूप था, तो असंगत न होगा। गुप्तों ने वैष्णव धर्म को राजधर्म के रूप में स्वीकार किया। परिणामतः उनका राजकीय संरक्षण प्राप्त होने के कारण वैष्णव धर्म प्रगति के पथ पर अग्रसर हो गया। उनके लेखों पर उन्हें 'परम भागवत' कहा गया। उनके सिक्कों पर भी ब्रहमा के वाहन गरूड़ और विष्णु की पत्नी लक्ष्मी के चित्र अंकित किये गये। स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ अभिलेख विष्णु की प्रार्थना के साथ प्रारंभ होता है। बुद्धगुप्त के एरण अभिलेख में भी विष्णु की स्तुति की गयी है। इस काल में अनेक वैष्णव मन्दिरों व मूर्तियों का भी विपुलता के साथ निर्माण किया गया। देवगढ़ जनपद ललितपुर उ.प्र. के दशावतार मन्दिर में शेषनाग पर शयन करती हुयी विष्णु प्रतिमा बड़ी ही अद्वितीय है। उनके पार्श्व में बैठी हुयी लक्ष्मी उनके चरण दबा रही है। भोपाल के पास बिदिशा के उदयगिरि गुफा में विष्णु के वराह अवतार की विशाल प्रतिमा उत्कीर्ण की गयी है। इसी प्रकार गढ़वाल और मथुरा में गुप्त शासकों के परम उपास्य विष्णु की अनेक प्रतिमायें उपलब्ध हुयी है। गुप्त कालीन कलाकारों ने पाषाण जैसे कठोर द्रव्य पर विष्णु की अनेक सुन्दर सुन्दर प्रतिमायें उत्कीर्ण की, जो उनके वैष्णव होने का ज्वलन्त उदाहरण हैं।

गुप्त शासकों के राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक तथा धार्मिक इतिहास पर अनेक विद्वान इतिहासकारों ने प्रभूत प्रकाश डाला है, उनके समस्त अभिलेखों का एक से अधिक बार सम्पादन व प्रकाशन किया जा चुका है, इन इतिहासकारों में बी.ए. स्मिथ, एल.डी. बार्नेट, रोमिला थापर, एम.ए. मेहेण्डोल,ए.के. मजूमदार, आर.

एन. दण्डेकर, भगवतशरण उपाध्याय पी.एल. गुप्त, पाल ब्रन्टन, डी.एन. झा. कृष्ण मोहन श्रीमाली, आर.सी. मजूमदार, श्री राम गोयल आदि प्रमुख है। इन समस्त विद्वानों की कृतियों का यथासम्भव अध्ययन करने के पश्चात मैं गुप्त शासकों के धार्मिक विचारों से प्रभावित होकर उनके द्वारा राजधर्म के रूप में स्वीकृत वैष्णव धर्म को अपने शोध विषय के रूप में चुना। अपने इस संकल्प को असली रूप प्रदान करने में मैं तब सक्षम हो सकीं, जब मेरी मुलाकात मथुरा प्रसाद स्नातकोत्तर महाविद्यालय कोंच, जालौन के प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के रीडर एवं लब्ध प्रतिष्ठ इतिहासकार डॉ. रामसंजीवन शुक्ल से लखनऊ में हुयी, जो सम्प्रति विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा 'माइनर रिसर्च प्रोजेक्ट' के अन्तर्गत अनुदानित 'बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक भूगोल' पर कार्य कर रहे हैं, डॉ. शुक्ल अपने शोध प्रबन्ध इण्डिया एज नोन टु हरिभद्रसूरि' पर पर्याप्त कीर्ति अर्जित कर चुके हैं। उन्हीं के द्वारा समय–समय पर प्रदत्त उत्साह व निर्देशन के परिणामस्वरूप इस विषय को मैं शोध स्वरूप दे सकी हूँ।

एक सम्भ्रान्त ईसाई परिवार में जन्मी पली पुसी मैं जब गुप्तकालीन वैष्णव धर्म के विषय में किसी विद्वान, लेखक व इतिहासकार से एतद् विषयक परिचर्चा प्रारम्भ करती, तो वह प्रथमतः आश्चर्यचकित हो जाता, कि एक ईसाई बालिका का भला वैष्णव धर्म से क्या सम्बन्ध। परन्तु मेरी दृढ़ इच्छाशक्ति और गुरूदेव डॉ. शुक्ल का सतत् शुभाशीष मेरा सम्बल बना।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को पांच अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय में गुप्तकाल की राजनैतिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसमें गुप्तकालीन सामाजिक व्यवस्था जैसे वर्ण व्यवस्था, दास प्रथा, पारिवारिक जीवन, स्त्रियों की दिशा, खान–पान, वस्त्राभूषण, श्रृंगार, मनोरंजन के साधन और विवाह आदि पर संक्षिप्त और समीचीन प्रकाश डाला गया है। इसी अध्याय में गुप्तों की शासन प्रणाली प्रशासन के अंग, प्रशासनाधिकारियों के पद, उनके अधिकार और कर्त्तव्य आदि पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। केन्द्रीय शासन में सम्राट का स्थान व अधिकार, मंत्रिपरिषद, केन्द्रीय सरकार व प्रशासन के

अधिकारी, प्रान्तीय व स्थानीय शासन तथा ग्राम प्रशासन एवं राजस्व के साधन के साथ गुप्तकाल के गणतंत्र और राजतंत्र पर प्रकाश डाला गया है। अन्तिम गुप्त सम्राट कुमारगुप्त के उत्तराधिकार की समस्या एवं परवर्ती गुप्त शासकों की राजनैतिक स्थितियों पर क्रमशः एक शासक के पश्चात दूसरे शासक की परिस्थितियों का उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। अध्ययन का मुख्य आधार गुप्त शासकों द्वारा जारी किए गये सिक्के, मोहरें एवं उनके अभिलेख हैं जिन्हें सम सामयिक आधार ग्रन्थों एवं सहायक ग्रन्थों से सुमेलित किया गया है।

द्वितीय अध्याय में प्रारम्भिक पौराणिक साहित्य में वर्णित गुप्त शासकों के वैष्णव सम्बन्धी विचारों एवं तत्वों का आलोचनात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है। पुराणों में विष्णु की अवधारणा, विष्णु के अवतारों की संख्या एवं हेतु वैष्णव धर्म का उद्‌भव और विकास आदि का वर्णन किया गया है। इसी अध्याय में वैष्णव धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों के साथ वैष्णव प्रतिमायें और उनकी पूजा विधियों को पाठकों के समक्ष विवेचनात्मक शैली में रखा गया है। वैष्णव धर्म को राज्याश्रय प्राप्त होने के कारण वह राजधर्म बन गया, परन्तु फिर भी अन्य धर्मो का ह्रास नहीं होने पाया तथा गुप्त शासकों ने धार्मिक सहिष्णुता का परिचय दिया इस तथ्य का भी गवेषणा पूर्ण अध्ययन करने काप्रयास किया गया है। इस काल के कवियों और नाटककारों की कृतियों में प्राप्त वैष्णव विचार धाराओं को अध्येताओं के समक्ष कुशलतापूर्वक प्रस्तुत किया गया है। विष्णु पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, मत्स्य पुराण और वायु पुराण के कतिपय अंशों में वैष्णव धर्म के अनेक सिद्धान्तों एवं कर्मकाण्डों को अध्येताओं के समक्ष रखा गया है। 426 ई. के गंगाधर अभिलेख में देवोत्थान एकादशी का उल्लेख गुप्त शासकों की वैष्णव विचारधारा का द्योतक है। कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी (ग्यारहवीं) तिथि को देवताओं का उत्थान (जागरणकाल) माना जाता है। इस तिथि के आगमन के साथ ही विवाह आदि से सम्बन्धित विभिन्न शुभ मुहूर्त प्रारम्भ हो जाते है।

तृतीय अध्याय में गुप्तकालीन सिक्कों और मोहरों तथा विभिन्न मुद्राओं पर अंकित वैष्णव धर्म से सम्बन्धित प्राप्त संकेतों का भी नवीन व्याख्याओं एवं सुझावों

के साथ वर्णन किया गया है। उनके सिक्कों पर गरूड़, चक्रध्वज, चक्रपुरूष, लक्ष्मी आदि उनके वैष्णव होने का प्रबल प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। वसाढ़ और राजघाट से प्राप्त गुप्तकालीन मोहरों पर उपलब्ध वैष्णव प्रतीकों के साथ–साथ नारायण,स्वामी नारायण, चक्र स्वामी आदि उपाधियां प्राप्त होती है, जिन्हें इस अध्याय में वर्णित किया गया हैं। समुद्रगुप्त द्वारा जारी विभिन्न प्रकार की स्वर्ण व रजत मुद्रायें, उनके आकार प्रकार, उद्देश्य उन पर प्राप्त लीजेण्ड आदि का सम्यक् वर्णन किया गया है। इसकी चक्रध्वज प्रकार, चक्र विक्रम प्रकार, कार्तिकेय व मयूर प्रकार की रजत मुद्रायें उनके वैष्णव होने का स्पष्ट प्रमाण हैं। इन मुद्राओं के प्रकार के साथ ही उनके जारी करने वाले शासकों के नाम व मुद्राओं के प्राप्ति स्थान आदि का समालोचनात्मक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। कुछ मुद्रायें ऐसी भी हैं, जिन्हें दो या दो से अधिक शासकों ने एक ही प्रकार से जारी की, जैसे छत्र भांति, खड़े राजा भांति, अर्द्ध शरीर भांति, चक्र भांति, मस्तक भांति, कलश भांति, धनुर्धर भांति, मुद्राओं को समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त द्वितीय दोनों ने चलाया। इसी प्रकार कुमारगुप्त प्रथम ने भी छत्र भांति, खड़ा राजा भांति, लक्ष्मी हवन कुंड भांति, और कलश भांति की मुद्राओं को चलाया।

अध्याय चतुर्थ में गुप्त शासकों द्वारा जारी किये गये अभिलेखों में वैष्णव धर्म सम्बन्धी प्राप्त विवरण का विस्तृत अध्ययन किया गया है। इन अभिलेखों में प्राप्त गुप्त कालीन इतिहास, उनके राज्यक्रम और तिथिक्रम की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत करते हुये यह निरूपण किया गया है, कि इन अभिलेखों में गुप्त शासकों की वैष्णव धर्म सम्बन्धी विचारधाराओं किस प्रकार प्रकट होती है। गुप्त शासकों के अभिलेखों के साथ अन्य समसामयिक अभिलेखों से प्राप्त गुप्त शासकों की वैष्णव धर्म सम्बन्धी विचारधारायें को इस अध्याय में अधीत किया गया है। इसी अध्याय में परवर्ती गुप्त शासकों के तिथि क्रम, राज्यकाल, शासन सम्बन्धी दृष्टिकोण एवं वैष्णव धर्म सम्बन्धी विचारों का अनुशीलन किया गया है। साथ ही इन अभिलेखों के लेखक, अवधि, प्राप्ति स्थान, लिखाये जाने का उद्देश्य, भाषा, लिपि, वर्तनी, महत्व, तिथि युक्त अथवा तिथि विहीन होना आदि विविध प्रकार की सूचनाएं यथा– सम्भव

उपलब्ध कराने का सम्यक् प्रयास किया गया है। परवर्ती गुप्त शासकों नरसिंह गुप्त प्रथम और बुधगुप्त के नालन्दा मोहर लेख का उद्देश्य और महत्व आदि का सम्यक् अध्ययन इसी अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

पंचम अध्याय में गुप्तकालीन वैष्णव प्रतिमायें और मन्दिरों के साथ–साथ तत्कालीन मूर्तिकला पर भी विवेच्य प्रकाश डाला गया है। इन प्रतिमाओं के विभिन्न प्रकारों यथा योग प्रतिमा, भोग प्रतिमा, वीर प्रतिमा, अभिचारिक प्रतिमा, आसनस्थ प्रतिमा, स्थानक प्रतिमा, शयन प्रतिमा, अवतार प्रतिमा आदि का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। कई वैष्णव प्रतिमायें पशु आकार की हैं तो कई मानवाकार की है। कुछ मिश्रित आकार की है। कुछ अलंकृत हैं तो कुछ कम अलंकृत है। अवतार प्रतिमाओं में नृवराह, यज्ञवराह, प्रलय वराह के अतिरिक्त नरसिंह अवतार प्रमुख है। इन अवतारों के अतिरिक्त वामन और गौड़ अवतार प्रमुख है। इन समस्त अवतारों के उद्देश्य व महत्व एवं अवतार की परिस्थितियों पर सम्यक् प्रकाश डाला गया है।

गुप्त शासक वास्तुकला के प्रति भी पर्याप्त रूचिशील थे। यह उनकी प्रबल धार्मिकता का ही प्रभाव है, कि गुप्तकाल में मन्दिरों का जितना निर्माण हुआ, उतना पहले और वाद में भी कभी नहीं हुआ। यद्यपि भिन्न–भिन्न मन्दिरों में भिन्न–भिन्न प्रतिमायें स्थापित की गयीं, परन्तु उनकी कला में साम्यता और एकरूपता है। इस काल में मन्दिरों का निर्माण दो चरणों में हुआ, पहले चरण में निर्मित मन्दिर सपाट छत वाले थे दूसरे चरण में आमलक और शिखर युक्त मन्दिर बनने लगे।

गुप्तकाल में निर्मित प्रमुख मन्दिर हैं– एरण का वैष्णव मन्दिर, भूमरा का शिव मन्दिर, नचना का पार्वती मन्दिर, देवगढ़ का दशावतार मन्दिर, भीतरगांव का मन्दिर, सांची का मन्दिर, उदयगिरि का मन्दिर, तिगवा का मन्दिर, शंकर गढ़ का मन्दिर, ऐहोल का मन्दिर,कहौम का मन्दिर, पवाया का मन्दिर, अहिच्छत्र का मन्दिर, मुंकुद दर्रा मन्दिर, व बोधगया का मन्दिर। इन मन्दिरों की वास्तुकला देखते ही बनती है। गुप्त सम्राटों के उदार संरक्षण एवं उनकी आध्यात्मिक अभिरूचियों के परिणामस्वरूप निर्मित यह समस्त मन्दिर आज भी सहस्राब्दियों की वर्षा, गर्मी व सर्दी झेलते हुये

आज भी तत्कालीन भारत की धार्मिक दशा का ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं। परन्तु समुचित रखरखाव के अभाव में यह सभी मन्दिर अब जीर्णशीर्ण हो रहे हैं। इनके अनुरक्षण की महती आवश्यकता है वरन् भारत की यह अमूल्य धरोहर काल कवलित हो जायेगी।

अन्त में समस्त उपलब्ध सामग्री का समवेत अध्ययन करने के उपरान्त सामान्य पाठकों के लिए सम्पूर्ण विषय वस्तु को उपसंहार के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। कुछ ऐतिहासिक एवं शोधपरक तथ्य जो ऊपर नहीं कहे जा सके थे, अथवा जो उस समय तक उपलब्ध नहीं थे, उन्हें भी उपसंहार में दर्शाया गया है। गुप्तकालीन भारत अत्यन्त विशाल था। वस्तुतः यह एक साम्राज्य था। इतने सुविस्तृत देश में उपलब्ध समस्त साधनों, स्रोतों, और निष्कर्षो को एक स्थान पर पूर्णता प्रदान कर पाना उतना ही दुरासाध्य है, जैसे पेड़ की ऊँची डाल पर लगे हुये मीठे फल को तोड़ने के लिये कोई बौना हाथ उठाये खड़ा हो। तथापि हमने गुप्तकाल के वैष्णव धर्म सम्बन्धी विवरणों को इस शोध – प्रबन्ध में गुम्फित करने का यथासंभव प्रयास किया है। आशा है, सुधी पाठक हमें न्यूनताओं के लिए अवश्य ही क्षमा करेंगे।

# आभार प्रदर्शन

इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में हमें जिन विद्वानों, मनीषियों, लेखकों, संस्थानों, पुस्तकालयों और विज्ञजनों का सहयोग मिला है, उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपना कर्तव्य समझती हूँ।

सर्वप्रथम मैं परमेश्वर पिता का धन्यवाद करते हुए शत् शत् प्रणाम करती हूँ, कि उसकी कृपा से मुझे मानवीय जीवन प्राप्त हुआ। इसी जीवन के जीवंत अनुभव ने मुझे भारतीय होने का सौभाग्य प्रदान किया।

मैं स्वयं को सौभाग्यशाली मानती हूँ, कि मुझे भारतीय क्षेत्र. में शोध करने एवं धार्मिक विषयों पर प्रकाश डालने का अवसर प्राप्त हुआ। इसी माध्यम से मैने प्राचीन भारतीय इतिहास पर दृष्टि डाली हे। इस शोध कार्य में मुख्यतः गुप्तकालीन वैष्णव धर्म में प्रचलित सांस्कृतिक एवं धार्मिक पहलू, सिक्के तथा अभिलेखों का महत्व और विशेषतः वैष्णव धर्म की महानता पर प्रकाश डाला गया है। भगवान विष्णु की धार्मिक एवं वास्तविक छवि को उभारने का प्रयास किया गया है। गुप्तकालीन राजाओं की अवधारणा कि वे स्वयं विष्णु के अवतार है, तथा उनका भी सम्मान उचित है, इस मान्यता को सिक्कों तथा अभिलेखों के माध्यम द्वारा प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है।

मेरे लिए यह प्रसन्नता का विषय है, कि इस शोध ग्रन्थ "गुप्त–कालीन वैष्णव धर्म" के द्वारा ही वैष्णव धर्म एवम् हिन्दू विश्वास और मान्यताओं के प्रति मेरा आदर और अधिक बढ़ा है तथा मेरी कई भ्रान्तियाँ दूर हुई है।

मैने प्रयत्न किया है, कि उपरोक्त विषयों का क्रमबद्ध तरीके से वर्णन करूँ। मेरा लघु विश्वास यह भी है, कि मेरा यह प्रयत्न पाठकों को पसन्द आएगा और इस दिशा में शोध करने वाले विद्यार्थी बन्धुओं के लिए, सहायक और प्रेरणा स्रोत होगा।

मैं हृदय से आभारी हूँ अपने पूज्यनीय, श्रद्धेय गुरू एवं लब्ध प्रतिष्ठ इतिहासविद् डॉ. रामसंजीवन शुक्ल जी की जिनकी प्रेरणा, आदर्शों एवं मार्गदर्शन द्वारा मेरा यह शोध कार्य पूर्ण हो सका। मैं अपने गुरू जी के अविस्मरणीय सहयोग और ज्ञान का सम्मान करते हुए उनकी सराहना करती हूँ। साथ ही मैं अपने परमपूज्य पिता एवं पूज्यनीया माता जी को भी धन्यवाद देना अपना गौरव समझती हूँ, जिन्होंने प्रथमतः मुझे शोध कार्य करने के लिए न केवल प्रोत्साहित किया, अपितु पग–पग पर सदा सर्वदा मेरी हिम्मत को बढ़ाया। मैं अपनी बहिन ज्योत्सना की भी आभारी हूँ, जिसने इस शोध को पूर्ण करने में मेरे साथ अथक परिश्रम किया।

मैं हृदय से धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ अपने पति प्रवीण का, जिन्होंने मेरे शोध ग्रन्थ को पूरा करने में मेरा भरपूर सहयोग किया। उन्हीं के परिश्रम और लगन से यह शोध प्रबन्ध कम से कम समय में पूरा हो पाया है। वस्तुतः मैं उनकी चिर ऋणी हूँ।

मैं उन विद्वानों व लेखकों एवं इतिहासकारों के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना कर्तव्य समझती हूँ, जिनकी कृतियों का इस शोध प्रबन्ध के लेखन में हमने भरपूर उपयोग किया है।

संग्रहालयों में संकलित वैष्णव प्रतिमाओं के अध्ययन के लिए मैं रानीमहल संकलन झांसी, राजकीय संग्रहालय झांसी, राज्य संग्रहालय लखनऊ के निदेशक व कर्मचारियों के प्रति भी अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

मैं श्री रवीन्द्र कुमार शुक्ल क्राइस्ट चर्च कालेज लखनऊ को भी धन्यवाद देती हूं, जिन्होंने मेरे आवास स्थान इलाहाबाद आकर मुझे आवश्यक पुस्तकें प्रदान की।

अन्त में मैं क्लासिक प्रिण्टर्स (संजय एवं आनन्द सक्सेना) झाँसी को भी साधुवाद देती हूँ, जिसने बड़ी तत्परतापूर्वक मेरे शोध प्रबन्ध को कम से कम समय में यथा सम्भव त्रुटि रहित टंकित किया।

मैं निम्नलिखित पुस्तकालयों के प्रति अपना आभार प्रदर्शित करना चाहती हूँ जहां से मुझे पूर्ण सहायता एवं सहयोग प्राप्त हुआ बुन्देलखण्ड यूनिवर्सिटी पब्लिक लाइब्रेरी, झाँसी तथा विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन, रामकृष्ण मठ, पब्लिक लाइब्रेरी, इलाहाबाद म्यूजियम, सत्यनिकेतन कालेज, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, इलाहाबाद। मैं उपरोक्त सभी वाचनालयों के प्रबन्धकों को भी धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने समय–समय पर पुस्तकों एवं अपने अनुभवों द्वारा मेरा मार्गदर्शन किया।

नीता. ए. स्टीफन

नीता स्टीफन

शोधकर्ता

# अनुक्रमणिका

चन्द्रगुप्त द्वितीय की विजयें: मुख्य नगर, कुमारगुप्त प्रथम (415 ई. से 455 ई. तक) की उपाधि कुमारगुप्त प्रथम के पश्चात उत्तराधिकार की समस्या स्कन्दगुप्त (455 ई. 465 ई.) स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकारी नरसिंह बालादित्य(472 ई.) कुमार गुप्त द्वितीय (472 ई. से 476 ई.) बुद्धगुप्त (477 ई. से 495 ई.) तथा गुप्त और बालादित्यः कुमार गुप्त तृतीय, दामोदर गुप्तः महासेनगुप्तः देवगुप्त द्वितीयः माधवगुप्तः आदित्यसेनः देवगुप्त तृतीय एवं विष्णु गुप्त द्वितीयः

टेकरी, डेबरा, झूंसी, कुसुम्भी, कन्नौज (उ.प्र.), बयाना (राजस्थान) मीठाथल, रूपड़ (पंजाब), कुमरखान (गुजरात), बमनमाला, सकौर, सागर (म.प्र.), बहरामपुर, भानुपुर, अंगुल, मध्य जावा, (उड़ीसा), उपलब्धियां का विश्लेषणः सोने के उभारदार सिक्के; उपलब्धियां, चांदी के सिक्के, कुमारगुप्त प्रथमः स्कन्दगुप्त, बुधगुप्त, उपलब्धियां– मुहम्मदपुर, सुल्तानगंज, कन्नौज, नलियासर, साँभर, कच्छ, अहमदाबाद, सानौद, नासिक, ब्रहमपुरी, एलिचपुरः

समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय – छत्र भांति, खड़े राजा भांति, अर्ध शरीर भांति, चक्र भांति, मस्तक भांति, कलश भांति, धनुर्धर भांति, रामगुप्तः कुमारगुप्त प्रथम, छत्र भांति, खड़ा राजा भांति, लक्ष्मीहवनकुंड भांति, कलश भांति, उपलब्धियां

## अध्याय 4 

## गुप्त तथा समसामयिक अभिलेखों में वैष्णव धर्म

गुप्त तथा समसामयिक अभिलेखों में वैष्णव धर्म सम्बन्धी विवरणः गुप्तकालीन अभिलेख, गुप्त इतिहासः राज्यक्रम और तिथि क्रम की संक्षिप्त रूपरेखाः प्रारम्भिक गुप्त–तिथि क्रम, गुप्त और घटोत्कच, प्रथम चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त, उत्तराधिकार, अश्वमेघ यज्ञः रामगुप्त और द्वितीय चन्द्रगुप्त प्रथम कुमार गुप्त, स्कन्दगुप्त, पुरूगुप्त और घटोत्कचः परवर्ती गुप्त सम्राटों का अनुक्रम और तिथिक्रमः प्रथम नरसिंह गुप्त तथा द्वितीय कुमारगुप्त, बुधगुप्त, तृतीय चन्द्रगुप्त,

वैन्यगुप्त द्वादशादित्य तथा भानुगुप्त, प्रकाशादित्य द्वितीय नरसिंह गुप्त बालादित्य तृतीय कुमार गुप्त क्रमादित्य तथा विष्णुगुप्त चन्द्रगुप्तः गुप्तकालीन अभिलेखों में वर्णित वैष्णव धर्मः गुप्तनरेश और वैष्णव धर्म, समुद्रगुप्त के शासन काल में अभिलेखः प्रयाग प्रशस्ति, लेखक, भाषा, लिपि और वर्तनी, समुद्रगुप्त विष्णु उपासक के रूप में, प्रयाग प्रशस्ति का उद्देश्य, समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति का महत्व, समुद्रगुप्त का तिथि विहीन खण्डित एरण पाषाण लेख, एरण अभिलेख का उद्देश्य एवं महत्व, समुद्रगुप्त का सन्दिग्ध नालन्दा ताम्रपत्र अभिलेख, समुद्रगुप्त का सन्दिग्ध गया ताम्रपत्र अभिलेख, अभिलेख का उद्देश्य एवं महत्व, चन्द्र का तिथि विहीन महरौली लौह स्तम्भ लेख, अभिलेख का उद्देश्य एवं महत्व, द्वितीय चन्द्रगुप्त का तिथि विहीन मथुरा पाषाण लेख, अभिलेख का उद्देश्य एवं महत्व, प्रथम कुमारगुप्त का विल्सड़ पाषाण स्तम्भ लेख, अभिलेख का उद्देश्य एवं महत्व, प्रथम कुमारगुप्त शासनकालीन खण्डित तुमैन पाषाण लेख, अभिलेख का उद्देश्य एवं महत्व, पुरूगुप्त कालीन तिथि विहीन विहार पाषाण स्तम्भ लेख, अभिलेख का उद्देश्य एवं महत्व स्कन्दगुप्त का तिथिविहीन भीतरी पाषाण स्तम्भ लेख, अभिलेख का उद्देश्य एवं महत्व, स्कन्दगुप्त का प्रथम जूनागढ़ शिलालेख, अभिलेख का उद्देश्य एवं महत्व, स्कन्दगुप्त का द्वितीय जूनागढ़ अभिलेख, अभिलेख का उद्देश्य एवं महत्व, स्कन्दगुप्त कालीन कहाव पाषाण स्तम्भ लेख, अभिलेख का उद्देश्य एवं महत्व, स्कन्दगुप्त का इन्दौर ताम्रपत्र अभिलेख, उद्देश्य एवं महत्व, प्रथम नरसिंह गुप्त का नालन्दा मोहर लेख, उद्देश्य एवं महत्व, बुधगुप्त कालीन एरण प्रस्तर स्तम्भ अभिलेख, उद्देश्य एवं महत्व, बुधगुप्त का नालन्दा मोहर लेख, उद्देश्य एवं महत्व।

# अध्याय – 1

# गुप्तकाल की राजनैतिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

# अध्याय – 1

# गुप्तकाल की राजनैतिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

भारतीय संस्कृति के इतिहास में गुप्तकाल एक नक्षत्र की भांति रहा है। इस युग में भारतीय सभ्यता और संस्कृति अपनी उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुंच गई थी। क्या समाज, राजनीति, साहित्य, कला और धर्म सभी क्षेत्र में गुप्त युग में असाधारण प्रगति हुई। इतिहास वेत्ता गुप्तकाल को जिसमें नवाभ्युत्थान का आंदोलन, साहित्य व कला के क्षेत्र में अनेक सफल सिद्धियों को प्राप्त करता हुआ विकास की चरम पराकाष्ठा तक पहुंच गया था। हिन्दू धर्म का स्वर्ण युग और हिंदू नवाभ्युत्थान का काल कहते हैं। गुप्त वंश का संस्थापक चन्द्रुप्त प्रथम था। उसके उपरांत उसके पुत्र समुद्रगुप्त ने अपनी गौरवपूर्ण विजयों द्वारा सामग्राज्य की सीमाओं को बहुत दूर–दूर तक बढ़ाया। समुद्रगुप्त के बाद इस युग का सर्वाधिक महत्वपूर्ण शासक चंद्रगुप्त विक्रमादित्य सिंहासानारुढ़ हुआ जिसने एक ओर अपने असाधारण बल, विक्रम और नेतृत्व शक्ति के द्वारा साम्राज्य विस्तान किया, तो दूसरी ओर कुशल प्रशासन और धार्मिक सहिष्णुता के द्वारा जनता में लोकप्रियता प्राप्त की। स्कन्दगुप्त इस स्वर्ण युग का अंतिम प्रतापी नरेश था, जिसके प्रताप का सूर्य समस्त उत्तरी भारत पर चमकता रहा।[1]

## समाज और समाजिक दशा

गुप्तकालीन समाज की विशेषताओं का परिज्ञान तो हमें तत्कालीन अभिलेखों, साहित्यिक साक्ष्यों तथा मुद्राओं द्वारा तो प्राप्त होता ही है, साथ ही साथ इस विषय में चीनी यात्री फाह्यन के भारत संबंधी यात्रा विवरण से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

फाह्यान 399 ई. में बौद्ध ग्रन्थों की खोज करता हुआ भारत आया था। उस समय चंद्रगुप्त विक्रमादित्य गुप्त साम्राज्य के सिंहासन पर आसीन था। फह्यान ने भारतीय सामाजिक अवस्था की मुक्तकन्ठ से प्रशंसा की है। वह लिखता है लोगों का आपसी व्यवहार बड़ा सौहार्द्रपूर्ण था। वे प्रेममय जीवन व्यतीत करते थे। केवल चांडालों को छोड़कर कोई मांस मंदिरा आदि का सेवन नहीं करता था। लहसून प्याज आदि का प्रयोग कम होता था। मुर्गी तथा सूअर पालन घृणित कार्य समझा

1. श्रीवास्तव एम.पी. प्राचीन भारत की सांस्कृतिक झलक पृष्ठ : 158–59

जाता था। समाज में नैतिकता की प्रबल भावना थी। धनी व्यक्ति मुक्तहस्त निर्धनों की सहायता करते थे, तथा मंदिर, धर्मशालायें तथा प्याऊ इत्यादि बनवाते थे।

देश धन–धान्य से परिपूर्ण था। जनता को स्वतंत्रता प्राप्त थी, तथा शास्त्रीय हस्तक्षेप वर्जित था। गुप्त साम्राज्य का उद्देश्य कल्याणकारी राज्य स्थापित करना था। अतः प्रजाहित को सर्वोपरि स्थान प्राप्त था। स्थान–स्थान पर दानालय, विश्रामालय औषधालय, अनाथालय आदि स्थापित किए गए थे। लोगों का नैतिक स्तर उन्नत था। जनता का सुखमय जीवन, भोजन, आवास तथा धन–धान्य की परिपूर्णता थी। इन कारणों से हमें गुप्तकाल के सामाजिक जीवन में कुछ नवीनताएं दृष्टिगत होती है।[1]

## वर्ण व्यवस्था

वर्ण व्यवस्था भारतीयों के सामाजिक जीवन की एक सर्वप्रमुख विशेषता है। वैदिक कालीन समाज में जि वर्ण व्यवस्था की नींव पड़ी थी। समय के झंझावतों को पार करते हुए वह निरंतर चली आ रही थी। गुप्तकाल में भी वर्ण–व्यवस्था विद्यमान थी, गुप्तकाल के स्मृति ग्रंथों में वर्ण–व्यवस्था के कठोर नियमों का प्रतिपादन किया गया है। परंतु व्यवहारिक रुप में इस काल की वर्ण–व्यवस्था उदार थी। हिंदू धर्मावलंबी गुप्त शासकों के समय में समाज के विभाजन का आधार यही वर्ण व्यवस्था थी। चार वर्णों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण ब्राह्मण होते थे, जिनके कर्तव्य थे, पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ कराना, दान लेना देना। यह वर्ण राजनीति की ओर से सर्वथा उदासीन नहीं रहता था। राजा का पुरोहित ब्राह्मण होता था और यह पुरोहित राजा के धर्म विषयों में परामर्श देने के साथ–साथ विविध देव–देवताओं की स्तुति करके राष्ट्र के मंगल की कामना करता था। इस भांति ब्राह्मणों का गुप्त युगीन समाज में सबसे अधिक आदर और प्रतिष्ठा थी। समाज में सामाजिक क्षमता के कारण क्षत्रिय वर्णको द्वितीय स्थान प्राप्त था! ये लोग ब्राह्मणों के उपरोक्त उल्लिखित छह कार्यों में से तीन पढ़ना, दान देना, यज्ञ करना तो कर सकते थे, परंतु शेष तीन कार्यों को करने का अधिकार इन्हें नहीं था। तीसरा वर्ण वैश्यों का था जिसका प्रधान कर्म व्यापार करना था वैश्यों का समाज में अधिक ऊँचा स्थान न था। मनु तथा वशिष्ठ ने वैश्यों को नौकरों के साथ भोजन कराने का निषेध किया है।

---

1. श्रीमद्भागवत महापुराण, स्कन्ध द्वादश, अध्याय द्वादश, पृ. : 752–755. गीताप्रेस गोरखपुर, मूलगुट का तृतीय संस्करण, सं. 2037

अंतिम वर्ण में शूद्र आते थे और उनका कार्य उपयुक्त तीनों वर्णों की सेवा करना था। कुछ प्रमाणों से सिद्ध होता है कि गुप्त युग में शूद्रों की दशा उपेक्षाकृत अच्छी थी। चांडाल नाम एक अन्य जाति भी उस समय थी तथा उसका स्थान चारों वर्णों में नीचा था। चांडालों के विषय में फाह्यान लिखता है, कि वे नगर के बाहर रहते हैं, और नगर में जब आते हैं तो सूचना के लिए लकड़ी बजाते चलते हैं कि लोग जान जायें और बचकर चलें कहीं उनसे छू न जायें"। मछली मारने, शिकार करने और मांस बेचने के कार्य को केवल यही लोग किया करते थे ये शमशानों की रखवाली करते ओर शव के लिए कफन आदि देते थे। समाज में इनका स्थान बहुत नीचा था। गुप्तकालीन सामाजिक व्यवस्था में वर्ण–व्यवस्था के जटिल न होने के कारण ऐसे भी दृष्टांत मिलते हैं, जिसमें एक वर्ण में जन्म लेने वाले व्यक्ति ने दूसरे वर्ण के कार्यों को अपनाया था। फाह्यान ने अनेक ब्राह्यमण राजाओं का वर्णन किया है। आपत्ति काल में ब्रह्याण राजाओं का वर्णन किया है। आपत्ति काल में ब्राह्यमण राजाओं का वर्णन किया है। आपत्ति काल में ब्राहह्याण राजाओं का वर्णन किया है। आपत्ति काल में ब्राह्यण ने वैश्य वृत्ति को अपनाकर अपनी जीविका चलाई इसका भी उल्लेख मिलता है नाटकार शुद्रक 'मूच्छकटिक' नाटक में स्पष्ट लिखता है, कि चारुदत्त ब्राह्यण होते हुए भी वाणिक का कार्य करता था।[1]

## दास प्रथा

गुप्तकाल में दास प्रथा प्रचलित थी। यह प्रथा भारतीय समाज में गुप्तों के पूर्व से हीचली आ रही थी। याज्ञवलक्य तथा नारद स्मृति में दासों का उल्लेख किया गया है दास कई प्रकार के हुआ करते थे और मनु ने सात प्रकार के दासों का उल्लेख किया है। युद में जीता गया, आत्मदान द्वारा बना दास, दासों का पुत्र, खरीदा गया, दूसरे स्वामी का दिया हुआ। दास का वंशज तथा दंड रुप में जिसे दास बनाया गया हो। समाज में दासों के साथ दुर्व्यवहार नहीं किया जाता था। दासता से मुक्ति प्राप्त करने के लिए भी विधान था, ऋणी अपना ऋण चुकाकर दासता से मुक्ति पा सकता था। युद्ध बंदी अपने स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति की नियुक्ति करके दास प्रथा से छूट सकता था दासता से मुक्ति पाने की विधि बड़ी रोचक थीं। दासता से छुटकारा पाने के अवसर पर दास अपने कंधे पर जल से भरा हुआ घड़ा रखता था तथा स्वामी उस घड़े को फोड़ देता था। दास का सारा शरीर जल से भीग जाता था, दास स्वतंत्र हो जाता था। दास के साथ भी सद्व्यवहार

1. पाणडेय, बी. सी. भारत वर्ष का सामाजिक इतिहास पृष्ठ – 217–219

किया जाता था। ब्राह्मण को दास बनाना निषिद्ध था। हिन्दू समाज में सर्वप्रथम आत्मदान या आत्मसमपर्ण से ही दास–प्रथा की उत्पत्ति ज्ञात होती थी। केवल राजा, सामंत और गृहस्थ के यहां ही नहीं वरन बौद्ध मठों, वैष्णव, शैव और शाक्व मंदिरों में भी दास रहते थे। इस युग में दास प्रथा के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए धर्म शास्त्रों के अंतर्गत जैन ग्रंथों, शिलालेखों तथा विदेशी मंत्रियों के वृत्तांतों से भी जानकारी प्राप्त होती है। लेखपद्धति के एक लेख में 504 विषलप्रिय (चहमान राजा विषलदेव के नाम से प्रचलित एक सिक्के) में एक दासी की खरीद के संबंध में क्रयपत्र है, जिसमें यह बताया गया है कि इस क्रय की घोषणा सारे नगर में की गई। जैन ग्रंथ समराइच्छकहा तथा प्रबधचिंतामणि में दास व्यापार की अनेक कथाए है, जिनसे पता चलता है कि दास व्यापार नियमित रुप से चल रहा था। कहा जाता है कि दास व्यापार नियमित रुप से चल रहा था कहा जाता है कि वीरधवल के मंत्री तेजपाल ने नाविकों द्वारा मनुष्यों के अपहरण पर रोक लगा दी थी। लेखपद्धति के अनुसार वस्तुओं के विनियम में दासों का निर्यात समुद्री मार्ग से पश्चिमी देशों को होता था। लेखपद्धति से ही राजस्थान और गुजरात में प्रचलित दास प्रथा की जानकारी प्राप्त होती है।[1]

इस काल में नियामकों ने दासों के जान–माल के अधिकारों की रक्षा के लिए कोई नियम नहीं दिये है, जिससे स्पष्ट है कि उनकी दशा पूर्व काल की अपेक्षा अधिक गिरी हुई थी। त्रिषिएिष्शालाकाचरित में कहा गया है कि सामान्यः दासों को खच्चर की तरह पीटना चाहिए, उन्हें भारी बोझ ढोना चाहिए। और भूख–प्यास सहन करना चाहिए। लेखपद्धति से पता चलता है, कि दासियों को खरदीते समय उनसे यह स्वीकारोक्ति भी जाती थी कि भागने, चोरी करने, मालिक की निंदा करने अथवा मालिक और उसके संबंध्यिों की आज्ञा की अवहेलना करने पर स्वामी को उसे पीटने तथा बांधने का पूरा–पूरा अधिकार था।

## पारिवारिक जीवन

"समाज की इकाई संयुक्त परिवार था। इस युग के स्मृति–ग्रंथों में संयुक्त कुटुम्ब की प्रणाली को प्रशंसनीय बताया गया है। गुप्तकाल के अभिलेखों में संयुक्त परिवार प्रथा का उल्लेख मिलता है। परिवार का मुखिया पिता या वयोवृद्ध व्यक्ति

1. झा. नारायण दिजेन्द्र, श्रीमाली मोहन कृष्णा, प्राचीन भारत का इतिहास पृष्ठ 382–384

होता था, और वह परिवार के समाजिक तथा धार्मिक कार्य करता था और परिवार के हित में दान पुण्य करता था। परिवार पितृ प्रधान था तथा परिवार के सभी सदस्यों को उसकी आज्ञा का पालन करना पड़ता था। परिवारिक सम्पति पर पिता का अधिकार होता था। पिता की मृत्यु के पश्चात उसका छोटा भाई उसका स्थान ग्रहण करता था। पारिवारिक संयुक्त की निरंतरता इस भाँति बनी रहती थी। माता पत्नी, बहू तथा पुत्री के रुप में स्त्री परिवार में प्रमुख स्थान प्राप्त था।

## विवाह

समाज में विवाह का महत्वपूर्ण स्थान था। यद्यपि एक पत्नी प्रथा सर्वमान्य थी, किंतु धन संपन परिवारों ओर राजवंशों में बहुविवाह प्रथा प्रचलित थी। चंद्रगुप्त द्वितीय तथा कुमार गुप्त प्रथम की अनेक पत्नियां थी, परंतु धार्मिक यज्ञों एवं अनुष्ठानों में महारानी को ही भाग लेने का अधिकार था। विवाह का उद्देश्य सहयोग, साहचर्य तथा संतान प्राप्ति था। अन्तर्जातीय विवाह की प्रथा इस यगु में प्रचलित थी। उच्च वर्ण के पुरुष निम्न वर्ण की स्त्री से विवाह कर सकते थे। इस विवाह को अनुलोभ विवाह कहते थे। उच्च वर्ण की स्त्री निम्न वर्ण के पुरुष के विवाह को प्रतिलोभ विवाह कहा जाता था। शूद्र कन्याओं से भी विवाह किया जाता था। गुप्तकाल में भी बालविवाह का प्रचलन हो गया था। स्वयंवर की प्रथा भी प्रचलित थी, यह विलीन नहीं हो पाई थी। संभवता विधवा विवाह भी समाज में प्रचलित था। नारद और पाराशर ने भी अपने स्मृतियों में विधवा–विवाह को उचित बताया है। परंतु अन्य स्मृतिकारों ने विधवाओं के जीवन के लिए ब्रह्माचार्य और आत्मसंयम के जीवन को आवश्यक बताया है। चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ने अपने ज्येष्ठ भ्राता रामगुप्त की विधवा पत्नी ध्रुवदेवी से विवाह किया था अनमेल वृद्ध विवाहों का भी प्रचलन था।[1]

## स्त्रियों की दशा

गुप्तकालीन समाज में स्त्रियों की दशा विगत युगोंकी अपेक्षा अच्छी नहीं थी। पुत्री जन्म पर प्रसन्नता व्यक्त नहीं की जाती थी, बाल–विवाह की प्रथा प्रारम्भ हो जाने पर सामान्यता स्त्रियों के लिए उच्च शिक्षा का द्वार अवरुद्ध हो गया था। फिर भी स्त्री शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था।

---

1. झा. नारायण दिजेन्द्र, श्रीमाली मोहन कृष्णा, प्राचीन भारत का इतिहास पृष्ठ 382–384

सुखी और समृद्धिशाली परिवार की कन्याओं को साहित्यिक और सांस्कृतिक शिक्षा दी जाती थी। वे गायन, नृत्य, गृह कार्य आदि में दक्ष होती थी। स्त्रियों को इतनी ऊँची शिक्षा दी जाती थी कि वे संस्कृत ऋचाओं और श्लोकों को समझ सकती थी, और इनकी रचना भी कर सकती थी। अभिज्ञान शाकुन्तलम् के अनुसार अनुसुइया शकुंतला के छन्दोबद्ध प्रण्य संदेश का अर्थ समझ गई थी तथा वह चित्रकला में निपुण थीं गुप्तकालीन ग्रन्थ 'अमरकोष' में नारी अध्यापिकाओं तथा वैदिक मंत्रों की शिक्षा देने वाली नारियों का उल्लेख किया गया।

गुप्तकालीन साहित्य में तत्कालीन नारियों को ललित कला में निपुण तथा विभिन्न विषयों में कुशल बताया गया है। समाज में स्त्रियों को 'स्त्री धन' के रुप में स्मपति का अधिकार भी प्राप्त था। पर्दा प्रथा नहीं के बराबर थी। समान्यतः सत्रियां स्वतंत्रतापूर्वक भ्रमण करती थीं। समाज में नारी का स्थान इस युग में काफी अच्छा था। गुप्तकाल में शीला, भट्टारिका आदि महिलाएं कवित्रियों और लेखकों के रुप में विख्यात थी। कुछ प्रांतों में विशेष कर कन्नड़ प्रदेश में स्त्रियों प्रांतीय शासन और गांवों में मुखिया का भी कार्य करती थी। सामाजिक व धार्मिक कार्यों में पुरुष के साथ स्त्रियां सम्मिलित होती थी। राजवंश में स्त्रियां शासकीय कार्यों में सहयोग देतीं थीं गृहस्त जीवन में पत्नियों का स्थान समादर था, वे अर्धांगनी थीं। वे पतिव्रत धर्म का उच्चतम् आदर्श प्रतिष्ठित करतीं थीं। कभी–कभी गृहस्थी जीवन से उबकर स्त्रियां संन्यासिनी तथा तपस्विनी भी हो जाया करती थी।[1]

गुप्तकालीन समाज में कुछ साक्ष्यों द्वारा यदाकदा सती प्रथा[2] के उदाहरण भी प्राप्त होते हैं। 'मृच्छकटिक' में सती होने का वर्णन है। सामाजिक उत्सवों पर स्त्री–पुरुष समान रुप से विचरण करते और उल्लास मनाते थे।

## भोज पान (खान–पान)

"गुप्तयुग में शाकाहारी तथा मांसाहारी दोनों प्रकार के भोजनों का सेवन

---

1. गुप्त परमेश्वरी लाल – गुप्त साम्राज्य – पृष्ठ : 427 – 428
2. 510 ई. के भानुगुप्त के एरण अभिलेख में उसके मित्र सेनानी गोपराज की पत्नी के सती होने का उल्लेख है– CII, Vol.III p.91 वराहमितिर वृहत्संहिता, 74.16 वात्स्यायन, कामसूत्र, 6.3.53 शूद्रक, कात्यापन और वुहस्पति ने भी गुप्त काल में सती प्रथा का उल्लेख किया है। Position of women in Hindu civilization, p.123. Also see, Shukla, R.S. India as known to Haribhadra Suri, p.106.

देखिये : Shukla, R.S. some fresh hight on the custom of Sati (Sahamarana or Anumarana) Sacrifice as known from Ancient Indian Literature and Inscription. Bulletin of Museums and Archacology U.P. pp. 91-93 vol. June - Dec. 92. No. 47-50.

किया जाता था। स्त्रियां प्रायः शाकाहारी होती थी। भोजन में मांस मंदिरा का सेवन अच्छा नहीं माना जाता था। यदाकदा यज्ञ अथवा किसी विशिष्ट अतिथी के आगमन पर ब्राह्मण तथा ऋषि मुनी भी मांस का सेवन कर लेते थे। पर विशिष्ट अवसरों पर मांसाहार का उपयोग होता था। अतः स्मृतियों में श्राद्ध के समय मांस के प्रयोग का भी स्पष्ट विधान है। इससे सहज अनुमान होता है कि तत्कालीन समाज आभिष भोजी प्रधान था। लोग पशु–पक्षी के मांस और मछली खाते थे। नगरों में मांस की नियमित दुकानों (सूणा) थीं। धनिक लोग जंगली, सूअर, हिरण, नीलगाय और पक्षियों का शिकार करते और नका मांस खाते थे। मछली में लोग रोहित (रोहू) का प्रचार अधिक था। नागरिक जीवन में मांस की प्रधानता होते हुए भी ग्राम–जीवन में अन्न का ही प्रयोग अधिक होता रहा होगा। लोग गेहूं, जौ, चावल, दाल, चीनी, गुड़, दूध, घी, तेल का उल्लेख मिलता है। लंका अवतार सत्र में इन सबका उल्लेख स्वीकृत खाद्य के रुप में हुआ है पर अन्न के रुप में कालीदास के ग्रंथो ने केवल चावल के रुप में उन्होंने शालि–नीवार, कलम और श्यामाक का उल्लेख किया है। उनके उल्लेखों से ऐसा अनुमान होता है, कि गुप्त काल में धान और ईख की पैदावार बहुत थी। रघुवंश में शहद और चावल से बने अर्धनामक खाद्य पदार्थ का उल्लेख है। उनके अन्य ग्रन्थों में पयस, चारु, मोदक, शिखरिणी आदि दूध और चीनी से बनी वस्तुओं का उल्लेख मिलता हैं इनका प्रयोग कदाचित धानिक परिवारों में और दावतों के अवसर पर ही विशेष होता रहा होगा। मृच्छकटिक में चावल, गुड़, घी, दही, मोदक और पूप का उल्लेख हुआ है। गुड़विकार और मत्स्य खण्डिका नामक दो अन्य पदार्थों का भी उल्लेख तत्काल साहित्य में मिलता है।

मद्यपान गुप्तकाल में सामान्य रुप में प्रचलित था। स्त्री–पुरुष, गरीब–अमीर सभी मुक्त रुप से मद्यपान करते थे। कालिदास के ग्रंथ मद्यपान के उल्लेखों में भरे पड़े हैं। उन्होंने इसका मद्य, मदिरा, आसव, वारुणी, कादम्बरी ओर शोधु नाम से उल्लेख किया है। नारि केलासव का भी उन्होंने उल्लेख किया है। लोगों की धारणा है, कि वह नारियल से बनी शराब होगी, पर वह कदाचित ताड़ी का ही नाम था लोग महुक (महुआ) आदि के पुष्पों से भी शराब बनाते थे, जो पुष्पासव कहा जाता है। इस प्रकार की शराब का कदाचित सामान्य और मध्यम वर्ग के लोगों में प्रचार रहा होगा। धनी लोग सहकारमंजरी और पाटल की सुगन्धियुक्त शराब का प्रयोग किया करते थे शराब का पान चषक नामक पात्र में किया जाता था और सड़कों के किनारे स्थित शौण्डिृकापण में खुले आम शराब बिका करती थी। और लोग वहां बैठकर उसे पीते थे। धनिक लोग अपने घर अन्तःपुर के निकट स्थित पान भूमि में

उसका सेवन करते थे। मद्य की दुर्गन्ध को छुपाने के लिए लोग बीज पूरक का छिल्का चबाते थे, ताकि सांस में उसकी महक बस जायें उसी उद्देश्य से लोग पान सुपारी का प्रयोग करते थे।[1]

## वस्त्राभूषण

"गुप्तकालीन समाज के वस्त्राभूषण के विषय में तत्कालीन साहित्य ग्रन्थों तथा कलाकृतियों से प्रचुर ज्ञान प्राप्त होता है। जनता साधारण सूती वस्त्रों का प्रयोग किया करती थी। समृद्ध पुरुष ओर उच्च श्रेणी के लोग रेशमी तथा ऊनी वस्त्रों का प्रयोग करते थे अथवा धारण करते थे। गुप्तकाल में मलमल रेशम छींट और ऊन के वस्त्र अधिक उपयोग में लाये जाते थे। ऋतु के अनुसार विभिन्न प्रकार के वस्त्र धारण किये जाते थे।

सामान्यतः स्त्री और पुरुष केवल दो वस्त्र का उपयोग करते थे। एक का प्रयोग निम्न–भाग को और दूसरे का ऊपरी भाग को ढकने के लिए किया जाता था। ओर वे दुकूल –युग्म या क्षौम युग्म कहे जाते थे। पुरुषों के वस्त्र में ऊपरी वस्त्र उत्तरीय (दुपट्टा) होता था जो कदाचित् कंधों से होता हुआ कांध के नीचे से निकाल लिया जाता रहा होगा अथवा कंधे पर रख लिया जाता होगा।

उत्तरीय का प्रयोग लोग प्रायः अवसर विशेष अथवा स्थान पर ही करते थे। कटि के नीचे लोग धोती पहनते थे। लोग किस प्रकार धोती पहनते थे। इसके विविध रुप सहज ही गुप्त कालीन सिक्कों पर देखा जा सकता है उनसे यह भी अनुमान होता है कि राजा ओर प्रजा के वस्त्र धारण करने के ढंग में कोई अंतर न था। उस समय सिर पर पगड़ी बांधने का भी प्रचलन था। कालीदास ने अलग–वेष्ठन और शिरसा–विष्ठनशोभिना शब्दों के माध्यम से उसका उल्लेख किया है। सिक्कों को देखने से ज्ञात होता है कि राजाओं द्वारा सिर पर विविध प्रकार के मुकुट धारण किए जाते थे। कालिदास ने पादुका का उल्लेख किया है, जिससे अनुमान होता है कि उस समय जूतों का प्रचलन हो गया था। पर यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, कि वह चमड़े का होता था अथवा किसी अन्य वस्तु का।

पुरुषों की तरह स्त्रियां भी दो वस्त्र धारण करती थीं ऊपर का वस्त्र स्तनांशुक कहलाता था स्त्रियां साड़ी, पेटीकोट तथा चोली पहनती थी।

---

1. भगवत शरण उपाध्याय – गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, पृष्ठ : 210–212

अजंता की चित्रकारी में स्त्रियों को विविध प्रकार की चोलियां पहने हुए चित्रित किया गया है। सर्वसाधारण लोग सिर पर उष्णीय या पगड़ी पहिनते थे। गुप्तकाल में वस्त्रों की रंगाई, छपाई तथा कढ़ाई की कला भी विकसित हो गई थी।

स्त्री तथा पुरुष दोनों को श्रंगार और आभूषण में अधिक रूचि थी। केशों को विविध प्रकार से सजाने, मुख पर पराग ओर लाली लगाने तथा विविध प्रकार के आभूषण पहिन कर अपने सौंदर्य की वृद्धि करने में लोगों का अधिक ध्यान था। स्त्रियां कानो में वर्णफूल, गले में मोतियों तथा स्वर्ण से निर्मित मालायें, हाथों में रत्न जड़ित चूडियां, कंगन, कड़े उंगलियों में मुद्रिकायें तथा कमर में करधनी पहिनतीं थीं। अजंता के एक चित्र से पता चलता है कि, अब स्त्रियां मांग के बीचोंबीच टीका पहिनतीं थीं। स्त्रियां पैरों में पायजेब भी पहिनती थीं। यही इति नहीं पैरों में वे धुंधरूदार आभूषण तथा कलाइयों में बजने वाले कड़े पहिनतीं थीं। धार्मिक अनुष्ठानों में स्त्री तथा पुरुष द्वारा आभूषण धारण किया जाना शुभ माना जाता था। यज्ञोपवित के अवसर पर कटि में कटिबंध तथा उदरबन्ध पहनने की प्रथा थी। 'रघुवंश' से ज्ञात होता है कि स्वयंवर में आने जाने वाले राजा केयूर तथा अंगुलीयक पहनने हुए थे पुरुष प्रायः अंगूठियां तथा हार पहिनते थे। अाभूषण सोन, चांदी हाथी दांत तथा बहूमूल्य सामग्री द्वारा बनाए जाते थे।[1]

## श्रंगार प्रियता

रुप प्रसाधन तथा श्रंगार की विविध सामग्री का सुंदर प्रयोग गुप्तकाल में किया जाता था। स्त्रियां केश–विन्यास में पारंगत थी। गुप्तकाल के केश विन्यास के नमूने अजन्ता की चित्रकारी में दृष्टिगत होते है। जो बड़े ही आकर्षक तथा मनमोहक है।

महाकवि कालीदास ने अपने नाटकों में स्त्रियों के श्रंगार का रोचक वर्णन किया है। उनके अनुसार स्त्रियां अपने गीले केशों को सुखाने के लिए, सुगन्धित पदार्थों को जलाकर उनकी उष्णता को काम में लातीं थीं तथा बालों में सुगन्धित तेलों का लेप करतीं थीं। जूड़ा बांधकर उसे विभिन्नि पुष्पों से सजाया जाता था। मुख और ओठों की सुंदरता के लिए अनेक रंगों तथा पाउडरों का प्रयोग किया जाता था। प्रेमिकाएं अपने प्रिय से मिलन हेतु सुंदर श्रंगार करके उन्हें आकर्षित करती थीं। गुप्तकाल में पुरुष भी अधिक श्रंगार प्रिय थे, वे अपने वस्त्रों तथा शरीर

---

1. भगवत शरण उपाध्याय – गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, पृष्ठ : 214–218

पर सुगन्धित इत्रों का लोप करते थे स्त्रियां अपने केशों को लंबा तथा कलात्मक रुप से सजाने के लिए नकली वालों का प्रयोग करतीं थीं। कम बाल वाली स्त्रियां भी कृतिम बाल लगाती थीं।

## मनोरंजन के साधन

"गुप्तकालीन समाज में मनोरंजन के विविध रुपों का प्रचार था। स्त्री पुरुष शतरंज तथा चौपड़ की तरह कोई खेल खेलते थे। नाना प्रकार के पशु–पक्षियों का पारस्परिक युद्ध कराकर भी मनोरंजन किया जाता था। राजा तथा जनता दोनों ही आखेट प्रमी थे। कालिदास की रचनाओं में गुप्तकालीन मुद्राओं आदि से विदित होता है, कि मृगया (आखेट) राजा तथा उच्च पदाधिकारियों के मनोरंजन का मुख्या साधन था। धूत क्रीड़ा द्वारा भी मनोरंजन किया जाता था।

'मृच्छकटिक' में ध्रूत खेलने का विशद्र ओर मनोरंजक वर्णन मिलता है।अनेक नट, जादूगर, गायक, भाट तथा नाटकदल, व्यवसाय के रुप में जनता का मनोरंजन किया करते थे। तत्कालीन समाज में अनेक व्यक्ति वेश्यागमन तथा वेश्याओं के नृत्य–गायन द्वारा भी मनोरंजन किया करते थे। स्त्रियां तथा बच्चे (कुन्दक) गेंद खेलते थे विभिन्न नाटक गृहों का आयोजन किया जाता था। समाज में गोष्ठियों का भी प्रचलन था। इनमें एक ही स्तर तथा रुचि के लोग भाग लेते थे।

गुप्तकाल में उत्सवों में सम्मिलित होना, अथवा भाग लेना, सामाजिक शिष्टता का प्रतीक माना जाता था। फाह्यान के अनुसार लोग धर्मिक उत्सवों में बड़ा आनंद लेते थे। समय–समय पर रथ यात्राओं का आयोजन किया जाता था। तथा इन रथ यात्राओं में सहत्रों नर–नारी भाग लेते थे, तथा इन अवसरों पर सहभोज का आयोजन किया जाता था। इन अवसरों पर दीपक भी जलाए जाते थे। ऐसा पता चलता है, कि कुछ राष्ट्रीय उत्सवों का भी प्रचलन था। इन उत्सवों में सभी वर्गों के लोग सामूहिक रुप से सम्मिलित होते थे। कामसूत्र में सामूहिक यात्रा, समाजगोष्ठी, उद्यान भ्रमण तथा क्रीड़ा प्रमुख उत्सव बताए गए हैं।[1]

## नैतिक स्तर

गुप्तकालीन समाज का नैतिक स्तर उच्च था। नैतिक गुणो को श्रेष्ठ चरित्र का आधार माना जाता था। फाह्यान ने तत्कालीन नैतिक स्तर की श्रेष्ठता का उल्लेख किया है। आतिथ्य सत्कार, दानशीलता, सत्य भाषण, सदाचार, निष्ठ, आदरपूर्ण

---

1. पाण्डेय, आर.एन., प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृष्ठ : 255–258

व्यवहार आदि गुणों तथा विलासमयी जीवन का अद्भुत सांमज्य था। लोग धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के सिद्धांतों के अनुसार जीवनयापन करते थे। फाह्यान के अनुसार भारत के लोग आदर्श नागरिक थे, तथा वे अतिथि का बड़ा सत्कार करते थे, शिष्टाचार नैतिकता धर्म, कर्म तथा सहिष्णु में विश्वास करते थे।

## फाह्यान

चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्य–काल में चीनी यात्री फाह्यान ने भारत यात्रा की। वह स्थल मार्ग से भारत आया और समुद्री मार्ग से वापस गया। अपनी यात्रा में उसने 30 देशों में भ्रमण किया। भारत में उसने छह वर्ष सफर में ओर छह वर्ष अध्ययन में व्यतीत किए।

फाह्यन अपने कार्य में इतना दक्ष चित्त था, कि उसने तत्कालीन शासक चन्द्र गुप्त द्वितीय का नाम देने का भी कष्ट नहीं किया किन्तु उसने देश का बहुत अच्छा चित्र प्रस्तुत किया है। फाह्यन के अनुसार मथुरा से दक्षिण की ओर का प्रदेश 'मध्य प्रदेश' मालवा कहलाता था। यह प्रदेश ब्राह्मण–धर्म का दृढ केंद्र था। प्रशासन प्रबुद्ध तथा कार्य कुशल था। लोग खुशहाल थे। उन्हें अपनी गृहस्थी के विषय में लिखवाना नहीं पड़ता था, न न्यायधीशों के सामने उपस्थित होना पड़ता था, न ही उन्हें नियमों का पालन करना होता था। केवल वही लोग जो राज्य की भूमि में खेती करते थे, उन्हें प्राप्त लाभ का कुछ अंश देते थे। यदि वे जाना चाहते तो चले जाते थे, रहना चाहे तो रहते थे। प्राण–दण्ड या अन्य शारीरकि दंड के बिना ही राजा कार्य करता था। अपराधियों पर उनके अपराध की परिस्थितियों के अनुसार भारी या हल्का जुर्माना लगाया जाता था। बार–बार विद्रोह करने पर भी केवल उसका दाहिना हाथ काट दिया जाता था। राजा के अंगरक्षकों तथा परिचारिकों को वेतन दिया जाता था। सारे देश में लोग जीव–हत्या नहीं करते, न नशेदार पदार्थ पीते थे और प्याज या लहसुन भी नहीं खाते थे। केवल चाणाल ही ऐसा करते थे। क्रय–विक्रय में कौड़ियें प्रयोग करते थे।

फाह्यान यह वर्णन करता है, कि चाण्डाल लोग अन्य लोगों से अलग रहते थे। जब वे शहर या बाजार में जाते थे तो अपने आने की सूचना में उन्हें लकड़ी से आवाज करनी पड़ती थी। ताकि दूसरे लोग उनके साथ लगकर अपवित्र न हो जाएं, केवल वही दया के नियमों का उल्लंघन करते थे और वे ही शिकारी, मछियारे और कसाई होते थे।

राजाओं, वृद्धों तथा भद्र व्यक्तियों की रीति थी कि वे धार्मिक स्थान बनवाएं, भूमि, घर और बाग दान में दें और खेती के लिए बैल तथा अन्य आदमी भी दें। पक्के पट्टे लिख दिए जाते थे और बाद के राजा भी उनका उल्लंघन करने का साहस नहीं करते थे।

सरकार की आय मुख्यतः राज–भूमि के कर से प्राप्त की जाती थीं, सरकारी कर्मचारियों को निश्चित वेतन दिए जाते थे, और प्रजा से धन लेकर निर्वाह करने का उन्हें अवसर नहीं दिया जाता था।

दान–धर्म की कई संस्थाएं थी। सड़कों के किनारों पर या उनसे दूर लोग गृह बनवाते थे और यात्रा करने वाले भिक्षुओं तथा यात्रियों को वहां बिस्तर और भोज्य पदार्थ दिए जाते थे। किंतु वहां रहने का निश्िंचत समय प्रत्येक स्थान पर भिन्न था।

स्थायी निवासी और यात्री भिक्षुओं की बिस्तरों तथा चटाइयों और खाने तथा कपड़ों सहित रहने के लिए कमरे दिए जाते थे, सभी स्थानों में ऐसा ही होता था। सारीपुत्त, मोगालन तथा आनंद और अभिधम्म, विनय तथा सुत्तों के सम्मान में पगोडे बनाए जाते थे। भिक्षुओं की वार्षिक वापसी के पश्चात् उनके लिए विभिन्न वस्त्र थे, अन्य वस्तुएं जुटाने के लिए धार्मिक परिवार चन्दा इकट्ठा करते थे। भगवान बुद्ध के निर्वाण के समय से राजा, सरदार और गृहस्थ सभी ने भिक्षुओं के लिए बिहार बनवाए थे और उनके लिए खेत, घर, बाग, सेवक और पशुदान में दिए थे। ताम्र पात्रों पर लिखकर विहारों की सम्पत्ति उनके लिए आरक्षित कर दी जाती थीं, ये ताम्रपात्र एक राज्य के बाद दूसरे राज्य को दे दिए जाते थे और उन्हें रदद करने की किसी को भी हिम्मत नहीं थी। सभी स्थाई भिक्षु जिन्हें बिहारों में कमरे दिए जाते थे, उन्हें बिस्तर, चारपाईयां, खाना, पेयपदार्थ आदि भी मिलते है वे अपना समय दया–धर्म के कार्य करने, धार्मिक पुस्तकों का पाठ करने और आत्मचिंतन में व्यतीत करते थे। यदि कोई विदेशी यात्री किसी बिहार में आता था, वहां के उच्च पुरोहित उसे अतिथि गृह तक छोड़ने जाते थे और उसके वस्त्र तथा दानपात्र भी उठाते थे। वे पैर धोने के लिए पानी और मालिश के लिए तेल देते थे। और उनके लिए विशेष खाना बनाया जाता था। कुछ विश्राम के पश्चात् उससे उसकी धर्माचार्य की स्थिति में पद्रवी पूछी जाती थी। और उसके अनुसार उसे स्थान और बिस्तर दिया जाता था। वर्षा विश्राम के बाद मास में धार्मिक लोग पुरोहित अपना दान इकट्ठा करते थे और पुरोहित गण उक बड़ी सभा करते और धर्म प्रचार करते थे और जब पुरोहित अपना दान प्राप्त कर लेते थे तो गृहस्थ और ब्राह्मण उन्हें वस्त्र

तथा अन्य आवश्यक वस्तुएं भेंट देते थे, स्वयं पुरोहित भी एक दूसरे को उपहार देते थे और इस प्रकार जब से महात्मा बुद्ध इस पृथ्वी से सिधारे धर्माचार्यों के नियम निरंतर चलते आ रहे थे।[1]

"फाह्यन" से हमें ज्ञात होता है कि धनी लोगों ने अपनी राजधानियों में निःशुल्क औषधालय बना रखे थे और सभी निर्धन या असहाय रोगी, अनाथ, विधवाएं और पंगु वहां आते थे। वहां उनकी अच्छी देख–रेख की जाती थी, एक वैद्य उनकी चिकित्सा करता था और खाना तथा औषधियां उनकी आवश्यकतानुसार निःशुल्क दी जाती थी।

पाटलिपुत्र से और अशोक के महल से फाह्यान अत्यन्त प्रभावित हुआ। उसके विचार में कई भवनों वाला महल जो पत्थर पर पत्थर रखकर बनवाए गए थे। चित्रकारी की और देवी ढंग से उसमें मूर्तियां उत्कीर्ण की। अशोक के बनवायें एक स्तूप के निकट फाह्यान ने दो बिहार देखे जिनमें से एक महायान शाखा के और दूसरी में हीनयान शाखा के बौद्ध भिक्षु रहते थे।

फाह्यान बताता है कि गया शहर खाली और उजड़ा हुआ था। बोधगया के पवित्र स्थानों के चारों ओर जंगल बन गए थे। ईसा पूर्व पांचवी शताब्दी में पहाड़ की तराई में जहां धनी आबादी थी अब वहां बहुत कम जनसंख्या थी। श्रावस्ती में केवल 200 परिवार थे। कपिलवस्तु और कुशीनगर के पवित्र स्थान भी उजाड़ और खाली थे।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि फाह्यान ने सब कुछ बौद्ध दृष्टि से देखा उसे यह भी देखना चाहिए था, कि गुप्त राजाओं के संरक्षण में हिंदू–धर्म के पुनरुत्थान के कारण बौद्ध धर्म पृष्ठभूमि में आ गया था। फाह्यान के विवरण से यह नहीं पता चलता है, कि ब्राह्याण धर्म भारत में मुख्यतः प्रचलित था।[2]

"मौर्य सम्राज्य के पतन के पश्चात् लगभग पांच सौ वर्षों तक उत्तर भारत में किसी भी शक्तिशाली राज्य का पता नहीं चलता। मौर्यों के ह्रास के साथ देश अनेक राजतांत्रिक ओर जनतांत्रिक (गण और नगर) राज्यों के रूप में विघटित हो गया। उनकी घटती–बढ़ती शक्ति ही इस काल की विशेषता कही जा सकती है।

---

1. पाण्डेय, आर.एन., प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृष्ठ : 229–235
2. यदुनन्दन कपूर – हर्ष – पृष्ठ : 49–54

कुछ काल के लिए मध्यप्रदेश में शुंग सत्ताधारी हुए, पंजाब में विदेशी आक्रमण–यवन, पहलव और शंकों ने अपना अधिकार जमाया उनके बाद कुषाणों के सम्बंध में अनेक लोगों की धारणा है, कि उन्होंने एशियाई इतिहास में महत्तम सफलता प्राप्त की थी। कहा जाता है कि, उनका साम्राज्य पश्चिम में भारत की परिधि के बाहर दूर तक और पूरब और बंगाल की खाड़ी तक फैला था। किंतु इसकी सत्यता संदिग्ध है। वह संदिग्ध न भी हो तब भी यह सत्य है ही, कि कुषाण साम्राज्य एक शती से अधिक टिक न सका।

उत्तर–पश्चिम से निरंतर होने वाले आक्रमणों के कारण भारतीय जनता ने शीघ्र ही एक ऐसे शक्तिशाली शासन की आवश्यकता का अनुभव किया जो इस उपद्रव को रोकने में समर्थ हो। फलतः तीसरी शताब्दी ई. के उत्तरार्द्ध में देश के तीन कोनों से तीन शक्तिशाली राज्यों का उदय हुआ। मध्य देश के पश्चिमी भाग में नाग अथवा भारशिव उठे। उन्होंने अपने सत्त संघटित प्रयत्नों से भारत स्थित कुषाण–सम्राज्य को चूर–चूर कर दिया। उन्होंने गंगा तक फैली सारी भूमि को अपने अधिकार में कर लिया था और अश्वमेघ–यज्ञ किए गए।[1]

दक्षिण में वाकाटकों का उदय हुआ उन्होंने न केवल पठार में अपने राज्य का विस्तार किया, वरन विन्ध्य के उत्तर में भी काफी बड़े–भूभाग पर उनका प्रभाव था।

तीसरी शक्ति का उदय पूर्व में हुआ वह शक्ति गुप्तों की थी। वे पूर्वी उत्तर प्रदेश के एक कोने से छोटे से राज्य के रूप में उदित हुए और अपने युग की महत्तम् शक्ति कहलाने का गोरव प्राप्त किया उनके सम्राज्य के अंतर्गत विन्ध्य के उत्तर का सारा भू–भाग समाहित था और दक्षिण पर भी उन्होंने अपना प्रभाव डाल रखा था।

## गुप्तशासन और राज्य व्यवस्था

गुप्त सम्राटों के मूलतः राजतंत्रात्मक शासन प्रणाली को अपनाया। शासकों को असीमित अधिकार प्राप्त थे। तथा शासन की सम्पूर्ण सत्ता में ही केन्द्रित थी। गुप्त सम्राटों की उपाधियां 'परमदेवता, परम भट्टारक, एकाधिराज, महाराजधिराज, पृथ्वीपाल, परमेश्वर, चक्रवृत्तिन श्रीगुप्त, घटोत्कच तथा कुमार गुप्त प्रथम, शासकों को केवल 'महाराज' कहा गया। कालिदास द्वारा दी गई राजसी उपाधियां है –

---

1. लूनिया, बी.एन. प्राचीन भारतीय संस्कृति पृष्ठ : 488–501

राजन, नरपति, देव, भट्टारक, असयविक्रम, अप्रतिरथ, सम्राट आदि। चन्द्रगुप्त द्वितीय की रानी को 'महादेवी–ध्रुवदेवी' कहा गया है। कभी–कभी रानियों को 'परमभट्टारिका' (सम्मान की सर्वोत्तम अधिकारी) तथा 'परमभट्टारिकाराज्ञी महादेवी' कहा जाता है।

## सम्राट –

"राजा के देवत्व की कल्पना इस युग में अधिकाधिक लोकप्रिय हुई। 'लोकधाम्नः देवस्व' माने भूतल निासी देव कहकर समुद्रगुप्त का वर्णन किया गया है। किंतु देवत्व के कारण राजा को निरंकुश होने का अधिकार प्राप्त होता है, ऐसी धारणा नहीं थी। सम्राट अपने अधिकारों का उपयोग नैतिक नियंत्रणों में बद्ध रहकर ही करता था। अपने में देवतत्व होते हुए भी राजा के लिए वृद्ध सेवा करना व योग्य शिक्षा पाना अत्यंत आवश्यक था। शिलालेखों में अधार्मिक, प्रजापीडक, व अहमंत्र राजाओं की कड़ी आलोचना की गई है। राजा की निरंकुशता तथा स्वेच्छाचारिता पर भी पर्याप्त प्रतिबंध थे। अमात्यों के परामर्श, परम्परागत नियम तथा प्रजा के मनोबल एवं जनमत की उपेक्षा करने पर कोई भी सम्राट अपने पद का उपभोग करने का अधिकारी नहीं था। इस प्रकार सम्राट पर नैतिक नियमों तथा परंपरागत शासकीय सिद्धांतों द्वारा नियंत्रण रखा जाता था। कोई भी शासक लोक कल्याण तथा जनहति की उपेक्षा नहीं कर सकता था यही इति नहीं, संपूर्ण शासन शक्ति राजा के हाथों में केन्द्रित नहीं होने पाती थी, अपितु प्रान्तीय शासकों, सामंतों, नगर सभाओं, ग्राम पंचायतों तथा व्यापारिक श्रेणियों को भी अनेक शासकीय अधिकार प्राप्त थे।

फाह्यान के यात्रा–विवरण से भी विदित होता है कि साधारण जनता को अनेक व्यक्तिगत अधिकार प्राप्त होते थे तथा राजा, प्रजा के सम्बंध, पिता पुत्र के सम्बंध की भांति थे। गुपत राजाओं में दैवी तत्वों के आरोपण के बावजूद यह मानना गलत होगा कि कानूनी तौर पर वे स्वेच्छाचारी थे।[1]

---

डा. शर्मा भी इसे स्वीकार करते हैं कि सातवाहनों के विपरित गुप्तों के राज्य में राजकीय उत्तराधिकार विशुद्ध रुप से पैतृक था। गुप्त सम्राटौं ने अपनी माताओं के नामों का उल्लेख तो किया है, किन्तु प्रशासन में महिलाओं की कोई कारगर भुमिका नहीं थी।

डा. अल्त्रेकर ने भी लिखा है रानियाँ व राजकन्यायें राज्य संचालन में हाथ बंटाती हुई नहीं दिखतीं।

---

1. उपाध्याय भगवत शरण, गुप्त कालिन सांस्कृतिक इतिहास पृ. : 216–218

गुप्त युग में राजा का पद वंशानुगत होता था। प्रथम चन्द्रगुप्त की रानी कुमार देवी संभवत सहाधिकारिणी थी। किन्तु यद्यपि उसका नाम पति के नाम के साथ सिक्कों पर आता है, तथापि वह प्रत्यक्ष शासन करती हुई नहीं दिखती है। द्वितीय चन्द्रगुप्त की रानी भी ऐसा शासनकार्य नहीं करती थी। किंतु राजा नाबालिग हो, तो विधवा राजमाता राजसंचालन का भार संभालती थी, जैसे वाकाटकवंशीय रानी प्रभावती ने किया था, किंतु गुप्तों के राज्य में ऐसे उदाहरण नहीं मिलते परंतु ज्येष्ठधिकार, अर्थात अन्य पुत्रों को छोड़कर केवल ज्येष्ठ पुत्र को ही उत्तराधिकार सोंपे जाने का नियम सुस्थापित नहीं हो पाया था। कभी–कभी ज्येष्ठ पुत्रों के रहते कनिष्ठ पुत्र भी सिंहासन पर बैठते थे। राजा को सिंहासन पर बैठने के पहले पद की निष्ठा, निष्पक्षता आदि की शपथ ग्रहण करनी पड़ती थी। सर्वोच्च सेनानायक, न्यायपालिका का न्यायधिपति तथा कार्यपालिका का सर्वोच्च अधिकारी भी राजा भी था।

## राजा का अधिकार –

शासन–विषयक, सेना विषयक व न्याय–विषयक सब अधिकार राजा में केंद्रित थे। महत्व के युद्धों में राजा ही सेनापतित्व करता था। सिक्कों और अभिलेखों में गुप्त राजाओं को मुख्यतः योद्धा और सेनापति के रूप में चित्रित किया गया है। इन्हें शिकार और योद्धा और सेनापति के रूप में चित्रित किया गया है। इन्हें शिकार ओर युद्ध बहुत प्रिय थे। राजा मंत्रियों, सेनानायकों, क्षेत्रीयशासकों आदि की नियुक्ति करता था। वह केन्द्रीय शासनात्मक की देखभाल करता था व प्रांतपतियों को आदेश भेजता था। वह उत्तम राज संचालन के लिए या उत्कृष्ट ग्रन्थ या कला कार्य के लिए पारितोषिक या पदवी देता था इस काल की स्मृतियां व अभिलेख राजा को प्रजाहित व प्रजापालन के निमित्त सदैव प्रयत्नशील रहने के लिए सचेत करते है। गुप्त अभिलेखों से यह भी पता चलता है कि गौतमी पुत्र शातकीर्ण की तरह वर्णाश्रय धर्म की रक्षा करना गुप्त राजा का भी एक प्रमुख कर्तव्य था। राजा का दूसरा महत्वपूर्ण दायित्व प्रजा की रक्षा करना बताया गया। उसे हजारों मुद्राओं का दाता कहा गया है। सुरक्षा प्रदान करने के बदले राजा ग्रहण का अधिकारी था।

चीनी यात्री फाह्यान ने का है कि गुप्त सम्राज्य में लोग सुखी व समृद्ध थे, व सरकारी जुल्म के विषय में प्रायः उनकी शिकायतें नहीं रहती थी।

"गुप्त सम्राटों के शिलालेखों में मौर्य अधिकारियों के पदों का कोई चिन्ह नहीं है किंतु आज इस मत को स्वीकार नहीं किया जाता। यह बताया जाता है कि

गुप्त सम्राटों ने बहुत बड़ी सीमा तक अपने पूर्वजों के अधिकारियों के पदों को बनाये रखा कुमारमात्य, महादंडनायक और संविविग्रहक पदों का उल्लेख समुद्रगुप्त के इलाहाबाद स्तंभ शिलालेख में है। कौटिल्य को ज्ञान था। ग्रामिक, ग्राम, विष, नागरा, गोपा, मोगा, शुल्क, पुप्तप, गुल्म, अक्षपटल, दूत, सीमा और अधिकरण तकनीकी पद कौटिल्य को ज्ञात थे उन्होंने युक्त और उपयुक्त का उल्लेख किया है समुद्रगुप्त के इलाहाबाद स्तंभ शिला–लेख में आयुक्त पुरूषों का वर्णन है। गुप्त सम्राटों ने सुविधा की दृष्टि से कौटिल्य के सरकारी पदों को अपनाया था।[1]

मन्त्रि परिषद –

कालिदास ने तीन प्रकार के मंत्रियों का उल्लेख किया है जो विदेश नीति, वित्त और न्याय के अधिकारी थे। कालिदास के अनुसार, मंत्रियों को अपने–अपने कार्य में दक्ष समख जाता था। बहुधा उनकी पद्वी कलानुगत होती थी मंत्रियों की सभाओं को कार्यवाहियों को बहुत गोपनीय रखा जाता था।

## केन्द्रीय सरकार और प्रशासन के अधिकारी

केन्द्रीय शासन के विषय में हमें गुप्त–अभिलेख से विशेष जानकारी नहीं प्राप्त होती। पल्लव व वाकाटय शासन प्रणाली में शासनालय का एक सर्वाध्यक्ष रहता था। वैसी ही प्रथा गुपत–सम्राज्य में भी रही होगीं शासनालय में अनेक

---

*गुप्तवंश के अभिलेखों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ऊपर से नीचे तक प्रशासंनीय विभाग का एक क्रम था। साम्राज्य के कई नाम थे, जैसे राज्य, राष्ट्र देश मण्डल, पृथ्वी और अवनी इसे प्रांतों में बांटा गया था जिन्हें 'मुक्ति' प्रदेश ओर 'भोग' कहा जाता था। ऐरिकिन प्रदेश, नगर भुक्ति, वीर भुक्ति, पण्डवध्रन भुक्ति, उत्तरमण्डल–भुक्ति आदि का उल्लेख मिलता है। प्रान्तों को 'विषयों' में बांटा जाता था जिनके शासन 'विषयपति कहलाते थे। 'विषयपति' अपने विषय में एक 'अधिकरण' की सहायता से राज्य करता था, जिसमें चार प्रतिनिधि होते थे, नगर 'श्रेष्ठिन', सार्थवाह, 'प्रथम कुलीक' ओर 'प्रथम कायस्थ', 'नगर श्रेष्ठिन' शहर के व्यापारियों की श्रेणी का प्रतिनिधि था। 'सार्थवाह' सभी व्यापारियों का प्रतिनिध था। 'प्रथम कुलीक' शिल्पियों का प्रतिनिध ा था। प्रथम कायस्थ लेखकों का प्रतिनिधि था। 'विषय' के एक भाग को 'विथि' कहा जाता था। ग्रामों के संघ को 'पेठक और 'शान्तक' कहा जाता था। छोटी इकाइयों या ग्राम के भागों को 'अग्रहार और 'पट्ट' कहा जाता था।* [2]

---

1. बनीर्जी आर.डी. द. एज ऑफ इम्पीरियल गुप्ताज पृ. 60
2. बनीर्जी आर.डी. द. एज ऑफ इम्पीरियल गुप्ताज पृ. 211–213

विभाग रहते थे। प्रत्येक की अपनी मुद्रा या मुहर रहती थी, जिससे संदेश अंकित किये जाते थे। कुमारमात्य, दंडनायक, बलाधिकृत, युवराज इत्यादि के दफ्तरों के मुहरें प्राप्त हुई हैं।

साधारण बातों का निर्णय अकेला मंत्री करता था। महत्व के विषद् मंत्री परिषद के समक्ष रखे जाते थे, जिसका अध्यक्ष राजा था। सरकारी आज्ञाएं प्रायः लिपिबद्ध रहती थी। यदि राजा दौरे पर हो तो उसे कभी–कभी मौलिक आदेश देने पड़ते थी। सेना विभाग का विशेष महत्व था वह राजा अथवा युवराज के अधीन रहता था। सेना में अनेक 'महासेनापति' रहते थे जो साम्राज्य के विभिन्न भागों में रहकर सैन्य संचालन में सम्राट की सहायता करते थे। उनके नीचे 'महादंडनायक' रहते थे। सम्भव है कि उनका स्थान (दर्जा) आजकल लेपिफ्टनेन्ट जनरल के समान रहा हो। सैन्य के रण–भांडागरिक भी थे, उनकी मुहरें मिली है। सेना के पादचारी सैकिन दल, अश्वदल तथा हस्तिदल होते थे अवश दल के अधिकारियों को अश्वपति व महाश्वपति तथा हस्तिदल के अधिकारियों को 'पीलूपति' व 'महापीलुपति' कहते थे। अभिलेखों में चिकित्सा पथक का उल्लेख नहीं है परंतु वह सेना में अवश्य रहता होगा। गुप्तकालीन सेना विभाग स्थूल रूप से मौर्यकालीन सेना विभाग के समान ही था।

## महासंधिविग्राहक –

विदेश – विभाग का मंत्री था जो सैन्स विभाग के परामर्श से अपना कार्य करता था। किन राजाओं के राज्य को साम्राज्य मे मिलाना आवश्यक है इसका निण्रय मंत्री, राजा व सेनापति से विचार–विमर्श के बाद करते थे। महासंधिविग्राहक के अन्दर अनेक सन्धि विग्राहक कार्य करते थे। गुप्त सिक्कों और अभिलेखों से सिर्फ सेना की रचना के विषय में थोड़ा बहुत अनुमान लगा सकते हैं। यद्यपि कुछ गुप्त राजाओं को उत्कृष्ट और अद्वितीय रथी कहा जाता है लेकिन उनके सिक्कों पर प्रायः घुडसवारों की आकृयिां ही मिली है। सिक्कों पर धनुविद्या और अश्वारोहियों का महत्व प्रकट होता है। इनमें अश्वपति, महापति, महाश्वपति, भराश्वपति का उल्लेख मिलता है।

---

*डा. अल्तेकर – पूर्व गुप्त राजाओं के अधिन इस पद का कोई विशेष महत्व था या नहीं सेना के अन्य अंगों के सेनापतियों के क्या–क्या पद नाम थे इसकी जानकारी अभी तक अभिलेखों से नहीं मिल सकी है महाबलाधिकृत, महाप्रतिहार और गौल्मिक कुछ अन्य सैनिक अधिकारी हैं अन्तिम झो के नाम प्राग्गुप्त अभिलेखो में भी मिलते हैं पर पहला कोई नया सैनिक अधिकारी है जिसका उल्लेख पहली बार इस काल में मिलता है।*

गुप्तों को कोई विशाल कर्मचारी वृंद नहीं था, इसलिए उन्हें उतने करों की आवश्यकता नहीं थी जितनी की मौर्यों की थी जमीन कर प्रायः नगद में नहीं लिया जाता था, इसे अनाम के रूप में लेते थे। कारीगरों को भी कुछ महसूल देने पड़ते थे और व्यापारियों से उनके माल पर सीमा शुल्क लिए जाते थे, जिनका आरोपण और संग्रह सीमा–शुल्क अधिकारी करता था। इस अधिकारी को शायद साहूकारों, सौदागरों और कारीगरों के निगमों से भी व्यवहार रखना पड़ता था! दूसरा महत्वपूर्ण कर चुंगी थी, जो नगद या माल के रूप में ली जाती थी। कपड़ा, तेल, इत्यादि वस्तुओं पर उत्पादन कर लगाया जाता था। जंगल, खानों इत्यादि पर स्वामित्व सरकार का था तथा उनसे भी आय होती थी। जमीन की खरीद बिक्री से सम्बन्ध रखने वाले जिला या विषय स्तर के अधिकारियों को पुस्तपाल कहा जाता था जो जमीन की बिक्री का लेखा रखता था। भूमिदान पत्रों में उल्लिखित अधिकांश राजस्व अध्किारी भू–राजस्व के आरोपण और संग्रह से सबन्ध' प्रतीत होते हैं। भूमि के आलेख 'ग्रामाक्षपटलाधिकृत' या 'देशाक्षपलाधिकृत' या देशाक्षपलाधिकृ' रखते थे ये लेखाकार और पटवारी का काम करते थे। लिपिक का कार्य करने वाले दिविर, करणिक, कायस्थ आदि मुख्यतः राजस्व कार्यालय में ही रखे जाते थे।[1]

राजस्व मुख्यतः जिलों में वसूल किया जाता था। धनी किसान सम्भवतः नगद अदायगी करते थे, क्योंकि इस काल को स्वर्ण मुद्राएं अधिक संख्या मे मिलती है और जमीन खरीदने में इनका उपयोग तो होता ही था। नगद कर वसूल करने वाले अधिकारी को हिरण्य सामुदायिक कहा है। ऐसा भासित होता है, व्यापार की वस्तुओं पर लगे शुल्कों की उगाही करने से सम्बन्धित एक मात्र अधिकारी शौल्किक था, यद्यपि बंगाल में एक ऐसे अधिकारी का भी उल्लेख मिलता है, जिसका संबंध व्यापार

*भट्टाचार्य का मत है – 'उपरिक' नगरों के गवर्नरों का अध्यक्ष था।*
*डा. छावड़ा के अनुसार – 'स्पष्ट है कि 'उपरिक' को दो प्रकार की न्यायिक और प्रशासनिक –शक्तियां दी गई थी। अतः उसकी तुलना एक न्यायाधीश से की जा सकती है।''*
*डा. सेलटारे – ऊपर से नीचे तक गुप्त प्रशासन के सभी कर्मचारी एक अधिकरण कार्यालय के अध्यक्ष के अधीन कार्य करते थे। प्रतीत हाता है कि 'कुमारामात्य', 'भण्डागार' 'दण्डपाशिक' और 'उपरिक' का अपना – अपना अधिकरण था। सम्भवतः अधिकरण में भूमि का भाव तथा न्यायिक प्रश्नों का निर्णय किया जाता था।*
*कालिदास ने धर्मस्थान का उल्लेख किया है। सम्भव है कि कालिदास के समय में सम्राट राजधानी में ऐसे एक न्यायालय में उपस्थित हुआ करता था। कालिदास ने 'धर्माधिकारों' का भी उल्लेख किया है। उन्हें धर्म की पुस्तकों का ज्ञान प्राप्त करना पड़ता था और नगर में व्यवस्था रखनी होती थी। उनका यह भी कर्तव्य था कि जंगलों में ऋषियों की तपस्या में बाधा न पड़ने दें।*

1. मिश्र जयशंकर, प्राचीन भारत का इतिहास पृष्ठ : 180–182

अमात्य, कुमारमात्य, आदि असैनिक अधिकारी सैनिक कार्य करते थे या इनकी पदोन्नति करके इन्हें ऊँचे सैनिक ओहदों पर नियुक्त किया जाता था। पुलिस विभाग के मुख्याधिकारी के पद का नाम निर्दिष्ट नहीं किया गया है। पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट पद केअधिकार शायद 'दण्डपाशिक' कहे जाते थे। उनमें से अनेक की मुहरें वैशाली में मिली है। सिपाही चाट व भट नामों से विदिति थे।[1]

माल विभाग कर वसूली का कार्य करता था। कुछ कर नगद में और कुछ कर अन्नधान्यादि के रूप में दिए जाते थे अनेक जगहों पर सरकारी गल्ले का संग्रह करना आवश्य हो जाता था। माल विभाग ही जंगलों और खानों का प्रबन्ध करता रहा होगा। ग्राम व नगरों की सीमा में जो परती जमीन थीं, उस पर स्वामितव ग्राम या नगर का होता था न कि केंद्रीय व प्रांतीय का।

## राजस्व विभागः कर व्यवस्था –

गुप्तों की कर व्यवस्था उतनी विस्तृत ओर संगठित नहीं थी जितनी मौर्यो की थी!

ग्रामीण लोग कुछ परंपरागत पावने भुगतान किया करते थे, जिन्हें नापा या तौला जा सकता था, वे हिरण्य भी अदा करते थे। समकालीन वाकाटक व कदम्ब राज्यों में जो कर वसूली किए जाते थे, वे प्रायः गुप्त साम्राज्य में भी थे, करों में जमीन कर, या मलागुजारी मुख्य थी। उसको कई स्थानों में 'भागकर' व कई स्थानों से 'उद्रंग' कहते थे। लोगों को अनाज का छठें से चौथे भाग तक सरकार को कर के रूप में देना पड़ता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में जितनें करों का उल्लेख हुआ है इनकी संख्या गुप्तअभिलेखों उल्लिखित करों की अपेक्षा बहुत बड़ी है। गुप्तकाल में कर भार कम हो गया था। इस काल में गुप्त काल के विधिग्रंथों से पाता चलता है कि राज्यवंश पैदावार के छटे हिस्से से अधिक नहीं होता था।

---

*ऐसा प्रतीत होता है कि राजस्व उगाहने तथा पुलिस के कार्यों को पूर्णतः अलग–अलग नहीं किया गया था। इन विभागों के मुख्य कर्मचारी थे 'उपरिक, दशापराधिक, चौरीद्धरणिक, दण्डिक, दण्डपाशिक, गौल्मिक, क्षेत्रप्रांत पाल, कोट्टपाल, अंगरक्षक और आयुक्तक–विनियुक्त, राजुक इत्यादि।*

*'उपरिक' शब्द के विद्वानों ने विभिन्न अर्थ लगाए है। स्कन्दगुप्त के बिहार शिला स्तंभ अभिलेख में उपरिक शब्द को 'कुमारगुप्त' शब्द से पहले प्रयुक्त किया गया है। कुछ अभिलेखों में 'उपरिक दूतक' का कार्य करता दिखाई देता है।*

---

1. मिश्र जयशंकर, प्राचीन भारत का इतिहास पृष्ठ : 172–173

विभाग से था। छठीं सदी के पूर्वार्ध में कुछ ऐसे क्षेत्रों मे जो गुप्तों के अधीनस्थ राजाओं के शासन थे, 'और्णस्थानिक' नामक एक अधिकारी का उल्लेख मिलता है। उसका सम्बन्ध बंगाल के ऊन बाजार के नियंत्रण से था। इसी युग में गुजरात में 'द्रग्रिक' कहे जाने वाले अधिकारी का उल्लेख मिलता है, जिसका काम समीवर्ती नगरों में सीमा शुल्क वसूल करना था अनेक अभिलेखों से यह स्पष्ट होता है कि द्रंगिक वाणिज्य उद्योग विभाग का अधिकारी था। मार्ग, धर्मशाला, नौकायन इत्यादि विषय भी इस विभाग के उत्तरदायित्व में थे।

राज्य में अट्ठारह प्रकार के करों से होती थी। 'उद्रड्ग', उपरिक, वट, भूत, धान्य, हिरण्य, वैष्टिक, भोग, भाग आदि प्रमुख कर थे। आय का प्रमुख स्रोत्र भूमि कर था। गुप्त अभिलेखों में चुंगी का वर्णन मिलता है। व्यापार, वाणिज्य तथा व्यवसायों पर भी कर लगता था। कुछ अभिलेखों से पता चलता है कि कुछ ग्रामों को 'अंकरदायी' (कर मुक्त) कर दिया गया था।

## पुलिस अधिकारी

साम्राज्य की आंतरिक शान्ति के विषयों से निपटने तथा अपराधियों की छान–बीन, नियंत्रण आदि के लिए पुलिस विभाग का संगठन किया गया था। फाह्यान के विवरण से पता चलता है कि देश में शांति थी। लंबी यात्रा सुरक्षित थी। पुलिस विभाग के पदाधिकारियों तथा कर्मचारियों के अनेक पदों के नाम थे। 'उपरिक, दशापराधिक, चौरीद्वरणिक, दण्डिक, दण्डपाशिक, गौल्मिक, क्षेत्रप्रांतपाल, कोट्टपाल, अंगरक्षक और आयुक्तक–विनियुक्तक, राजुक इत्यादि।

पुलिस के लिए 'भट' तथा गुप्तचर विभगा के कर्मचारियों के लिए 'दूत' शब्द प्रयुक्त किया जाता था।

'उपरिक' शब्द के विद्वानों ने विभिनन अर्थ लगाए हैं। स्कन्धगुप्त के बिहार शाला स्तम्भ अभिलेख में 'उपरिक' शब्द को 'कुमारामात्य' शब्द से पहले प्रयुक्त किया गया है। एक अन्य अभिलेख में इस शब्द को 'कुमारामात्य', और 'राजस्थानीय' के बाद प्रयुक्त किया गया है। कुछ अभिलेखों में 'उपरिक' 'दूतक' का कार्य करता दिखाई देता है।[1]

## न्याय प्रशासन –

अभिलेखों में 'महादण्डनायक' 'महाक्षपटलिक' आदि न्यायिक अधिकारियों को

---

1. श्रीवास्तव कृष्णचन्द्रा प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति पृ. 170

उल्लेख मिलता है। सम्भवतः 'महादण्डनायक'' एक न्यायाधीश तथा एक सेनानी के कार्य करता था। 'महाक्षपटलिक' सम्भवतः रिकार्ड का मुख्य रक्षक था।

न्याय विभाग का निर्देश नारद व बृहस्पिति स्मत्रतियां, जो इस काल विभाग में लिखी गई  थी, यह स्पष्ट दिखाती है कि इस समय अनेक सरकारी व पंचायती अदालतें (न्यायालय) अच्छी तरह से न्यायदान करती थी। प्रार्थी किस तरह आवेदन पत्र भेजता था, उसका प्रतिपक्षी उसे कैसे उत्तर देता था, गवाही के नियम कैसे थे पुनः निर्णय कब नहीं किया जाता था इत्यादि विषयों पर नारद और बत्रहस्पिति के नियम अर्थशास्त्र की अपेक्षा अधिक विस्तृत व स्पष्ट है। राजधानी में मुख्य न्यायाधीश (प्राड्.बिवाक) काम करता था, प्रान्तों व नगरों के अधिकारी उसके अधीन काम करते थे। अदालत के लिए इस समय न्यायाधिकरण, धर्माधिकरण, धर्मशासनधिकरण इत्यादि शब्द रूढ़ थे। नालंदा वैशाली में उनकी अनेक मुहरें मिली है।

गुप्त प्रशासन में न्याय व्यवस्था का समुचित प्रबन्ध था। सम्राट सर्वोच्च, न्यायाधिपति था, परंतु वह सभी मामलों का निपटारा स्वयं अकेला नहीं कर सकता था, अतः न्याय व्यवस्था का विकेन्द्रीयकरण कर दिया गया था। केन्द्र से लेकर ग्रामों तक अनेक न्यायालय थे गुप्त अभिलेखों में दण्डनायक, महादण्डनायक सर्वदण्डनायक तथा महासर्वदण्डनायक, नाम न्यायिक पदाधिकारियों के मिलते हैं। नारद स्मृति के अनुसार न्यायालय के चार वर्ण थे।

1– कुरू
2– श्रेणी
3– गज
4– राजकीय

धर्माधिकारी का कार्य ऋषियों की तपस्या में बाधा उत्पन्न करने वालों को दण्ड देना था।[1]

## अपराध का दण्ड –

फाह्यन के अनुसार दण्ड विधान अत्यंत ढीला था। 'प्राण–दण्ड'' या अन्य शारीरिक दण्ड़ के बिना ही राजा राज्य करता था। अपराधियों पर उनके अपराध के अनुसार भारी या हल्का जुर्माना किया जाता था। बार–बार विद्रोह करने पर भी केवल उनका दाहिना हाथ काट दिया जाता था। किंतु फाह्यान का यह कथन स्वीकार नहीं किया गया। गुप्तकाल में दण्ड काफी सख्त थे। कालिदास के अनुसार

---

1. श्रीवास्तव कृष्णचन्द्रा प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति पृ. 172

यदि कोई चोर पकड़ा जाए तो उसे 'रक्षिणा' नामक प्रहरियों को सौंप दिया जाता था। वे उसकी जांच करते और चोर से प्रश्नोत्तर करते थें। चोर को नगद द्वार के निकट कैद में रखा जाता था। यदि अपराधी ने राजवंश का अपराध किया होता तो सम्राट को सूचित किया जाता था।

जिस अपराधी को मृत्युदण्ड दिया जाता उसके 'मृत्यु के फूल' शब्द लिखकर पट्टी बांध दी जाती थी। 'मुद्राराक्षस' में विशाखदत्त ने गुप्त काल में फांसी चढ़ाने के ढंग का वर्णन किया है। प्राण दण्ड़ व्यक्ति को एक जुलूस में फांसी चढ़ाने के स्थान पर ले जाया जाता था जिसे 'वध्यस्थान' कहा जाता था। रास्ते में कई स्थानों पर घोषणा की जाती थी जिससे जनता को अपराधी के अपराध के विषय में बताया जाता था। उनमें से एक घोषणा इस प्रकार थी : 'श्रेष्ठ लोगों', सुनों। यह श्रेष्ट चेरूदत्त सागर दत्त का पुत्र और व्यापारी विनयदत्त का पौत्र। यह गणिका वसन्तसेना को 'पुष्पकरण्ड' बाग में ले गया और वहां छोटी सी बात पर उसका गला घोंट कर उसकी हत्या कर दी। यह लूट की वस्तुओं के साथ पकाड़ा गया।

इसे अपना अपराध स्वीकार कर लिया। अतः हम राज्य पालक की आज्ञा से इसका वध करने जा रहे हैं। यदि कोई अन्य व्यक्ति ऐसा ही अपराध करें, इस संसार में तथा अगले संसार में उसे अभिशाप लगे, राजा पालक उसे यही दण्ड देंगे। 'प्रतीत होता है कि जनता को अपराधी का अपराध बताने की चेष्ठा की जाती थी। किन्तु अपराधी को छूटने की कुछ सम्भावना थी यदि कोई व्यक्ति बंदी को बचाने के लिए कुछ धन अर्पित करें, या राजा के पुत्र उत्पन्न हो या हाथी भाग जाए और बंदी को मुक्त कर दे। बाण कवि ने भी "लाल चदंन रस के टुकड़ों का उल्लेख किया है जिससे अपराधियों को सजा दी जाती थी।" दण्डित व्यक्ति के शरीर पर लाल चदंन लगाया जाता था। उसे लाल कपड़े और आभूषण पहनाए जाते थे। लाल हार भी प्रयोग किये जाते थे। शरीर पर आटा लगा दिया जाता था। और पिसी हुई सुगन्धि भी लगाई जाती थी।[1]

गुप्त काल में प्राणदण्ड देने का अत्यंत क्रर ढंग था हाथियों से कुचलवा देना। विशाखदत्त के अनुसार अर्थपाल को एक व्यापारी के घर से चोरी करते समय रंगे हाथ पकड़ लिया गया। उसे प्राणदण्ड दिया गया। उसे एक लम्बे दांत वाले मस्त हाथी के सामने लाया गया। उस हाथी को मृत्यु–विजयी कहा जाता था और वध करना उसका खेल था। वह हाथी अपराधी की ओर लपका और अपनी घष्टियों की

1. गुप्त परमेश्वरी लाल – गुप्त साम्राज्य पृ. 300–302

टन–टन और जन समूह के शोर के बीच उसने अपराधी की कुचल दिया। यह सब जन–समूह की उपस्थिति मे किया जाता था।

एक अन्य निर्दयी दंड या देशद्रोही की आंखें निकलवा देना बिशेष कर बाह्मणो के लिये कहा गया है कि उच्च अधिकारियों को भी नहीं छोड़ा जाता था। यदि वे राजा की हत्या का षड़यंत्र रचते। दंडिन् के अनुसार द्रोह का अर्थ था। राज्य करने वाले सम्राट को जहर देना, राजा के विरूद्ध षड़यंत्र करना और राजा की हत्या के उद्देय से राज्यकर्मचारयिों से गुप्त भेंट करना।

गुप्त काल में चोर और डाकू वेश्याओं के घरों, मदिरालयों, जूआ–स्थानों रोटी वालों की दुकानों, उपवनों, संन्यासिनों की कुटियों, खाली मन्दिरों, बाजारों, मण्डी के दालानों तथा वर्गों में बहुत जाया करते थे। संदेह वाले व्यक्ति को पकड़ लिया जाता था। और उनसे प्रश्नोत्तर किए जाते थे। सड़कों तथा कब्रिस्तान में घूमने का अर्थ था। एकदम कैद होना, हथकड़ी लगाना और बंदी बना दिया जाना। यदि कोई शराबी सड़क पर पाया जाए, तो उसे गिरफ्तार किया जा सकता था।

स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ शिलालेख में यन्त्राणा का उल्लेख है। कहा गया है, कि उसके राज्य में अपराधियों को अधिक यंत्रणा नहीं दी जाती थी, किन्तु सम्भव है, कि उसके पूर्वाधिकारियों के समय में यन्त्रणा का अधिक प्रयोग किया जाता हो?

"किसी व्यक्ति को दोष या र्निदोष सिद्ध करने के लिए चार प्रकार की परीक्षाओं को प्रयोग किया जाता था। 'ये परीक्षाएं पानी, आग, तौल और जहर से की जाती थी। पानी परिक्षा में अभियुक्त को एक थैले में डाल दिया जाता था और एक पत्थर को दूसरे थैले में। फिर दोनों थैलों को बांध कर एक गहरी नदी में फेंक दिया जाता था। यदि पत्थर वाला थैला तैरता रहे और दूसरा डूब जाए तो दोष सिद्ध हो जाता था।

अभियुक्त को घुटने टेकने और गर्म लोहे पर चलना पड़ता था। उसे हाथ में उठाना पड़ता था और चाटना पड़ता था। यदि वह निर्दोष हो तो उसे कोई आघात नहीं पहुंचता यदि वह जल जाये तो वह दोषी था। तौल परीक्षा में अभियुक्त को एक पत्थर से तौल लिया जाता था। यदि पत्थर हल्का हो तो वह निर्दोष था अन्यथा दोषी था। जहर परीक्षा में एक मेष की पिछली दाहिनी टांग काट दी जाती था और उसका जो भाग अभियुक्त को खाने के लिए दिया जाता था उसमें जहर मिला दिया जाता था। यदि अभियुक्त निर्दोष हो तो वह जीवित रहता था, अन्यथा जहर अपना प्रभाव करता था।

प्रतीत होता है, कि सख्त सजाओं का उद्देश्य यह था कि लोग कम अपराध करें। उन्हें सुधारने का कोई विचार नहीं था।[1]

## सैन्य व्यवस्था –

गुप्त साम्राज्य की विशालता का आधार उसकी सैन्य व्यवसथा (शक्ति) थी। गुप्त सेना शक्तिशाली, कर्तव्यनिष्ठ, कुशल तथा सुसंगठित थी। गुप्त अभिलेखों में सेना के पदाधिकारियों के नाम निम्नलिखित मिलते हैं – सेनापति, महासेना, बलाधिकृत, महाबलाधिकृत, दण्डनायक, सन्धि–विग्रहिक, महासन्धि–विग्रहिक तथा गोप्त आदि। कौमुदी महोत्सव में प्रत्यान्तपाल तथा कालिदास ने अन्तपाल नामक सैनिक पदाधिकारी का वर्णन किया है। समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में हरिषेण, तिलभट्टक तथा ध्रुवभूति नामक 'महादण्डनायकों'' का नाम मिलता है। सेना के चार प्रमुख अंग है – पदाति, स्थारोही, अश्वरोही तथा गजसेना। पदाति सेना की छोटी टुकड़ी को 'चमूय' गजसेना के नायक को 'कटुक' तथा अश्वारोही सेना से प्रमुख की 'भट्टाश्वपति' कहा जाता था। मरूस्थलीय प्रदेशों में ऊँटों तथा जल प्रधान क्षेत्र में नौसेना का संगठन किया गया था।[2]

## प्रशासन के अधिकारी तथा पद –

गुप्तकालीन केन्द्रीय प्रशासन के विभिन्न पदाधिकारियों के नाम निम्नलिखित हैं :–

### महाबलाधिकृत –

यह साम्राज्य की सेना का सेनापति था। सेना संचालन, देख–रेख तथा युद्ध प्रणाली एवं शस्त्रादि के विषय में उत्तरदायी था।

### महादण्ड़नायक –

यह पद युद्ध तथा सैन्य सक्रियता से सम्बन्धित था। प्रतीत होता है कि महादण्डनायक का पद मूलतः कुषाण तथा तेलगु शासन प्रणाली से लिया गया था।

### महाप्रतिहार –

इसका कार्य सम्राट के राजप्रसाद से सम्बन्धित विषयों की देख–रेख करना था। इसके अधीन अनेक प्रतिहार होते थे।

---

1. गुप्त परमेश्वरी लाल – गुप्त साम्राज्य पृ. 303–304
2. गुप्त परमेश्वरी लाल – गुप्त साम्राज्य पृ. 308–310

## महासन्धि विग्रहक तथा सन्धि विग्रहक –

यह पद नया युद्ध तथा सिन्ध के विषयों से सम्बन्धित था।

## दण्डपाशिक –

यह पुलिस विभाग का सर्वोच्च अधिकारी था। इसके अंतर्गत चौरोद्वाणिक दूत तथा पुलिस के कर्मचारी थे। इसका कार्य नागरिक जीवन की सुरक्षा तथा शान्ति बनाए रखना था।

## भाण्डागाराधिकृत –

यह राज्य का कोष का अधिकारी था।

## महापक्षपटलिक –

राज्य की आज्ञाओं, निर्णय तथा लेखा विभाग का सर्वोच्च अधिकारी होने के साथ – साथ यह राजकीय आय–व्यय का लेखा–जोखा रखता था।

## विनय स्थिति स्थापक –

इस विभागाध्यक्ष के नाम की प्राप्ति वैशाली से प्राप्त एक मुहर द्वारा हुई, ऐसा प्रतीत होता है कि यह धर्म विभाग का भी अध्यक्ष था।

## सर्वाध्यक्ष –

यह अधिकारी समस्त केन्द्रीय विभागों का निरीक्षण करता था।

## महाश्वपति –

यह अश्वारोही सेना तथा अश्वों का निरीक्षक तथा नियंत्रक था।

## महामहीपीलुपति –

यह गज सेना का नियन्त्रक तथा संचालक था।

## युक्त पुरूष –

युद्ध आदि में प्राप्त हस्तगत की गई सम्पत्ति का लेखा–जोखा रखता था।

## विनय सुर –

यह विभिन्न आगन्तुकों को सम्राट के समक्ष प्रस्तुत करता था।

## खाद्यात्पाकिका –

राजप्रसाद के रसोई घर तथा भोजनालय का निरीक्षण तथा नियन्त्रक था।

उपरोक्त पदों तथा विभागों के अतिरिक्त अन्य महात्वपूर्ण किंतु अपेक्षाकृत छोटे पदाधिकारियों में ध्रुवधिकरण, पुस्तपाल, गौल्पिक, अग्रहारिक, शाल्किक, कर्णिक तथा गोप आदि थे।[1]

## गुप्त काल में शासन –

पद्धति में अनेक परिवर्तन हुए। परन्तु सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन अनुदान भोगियों को दी गई राजस्विक तथा प्रशासनिक छूटों और सामन्त कहे जाने वाले विजित राजाओं के साथ स्थापित किए गए सम्बन्धों के सन्दर्भ में हुए। द्वितीय प्रवरसेन वाकाटक के समय (पांचवी सदी ) से लेकर आगे के काल तक जो भी अनुदान दिये गए उन सबमें राजा, गोचर भूमि, चर्म, काष्ठाकगार, नमक की खान, बेगार ओर समस्त भू–गर्भस्थ सम्पदा, अर्थात राजस्व के प्रायः सभी स्रोतों पर अपने अधिकार का परिहार कर देता था। चौथी और पांचवीं सदियों के कुछ अनुदान–पत्रों के अनुसार, ब्राह्यामणों को गांव की भू–गर्भस्थ निधियों और सम्पदाओं के उपयोग का भी अधिकार प्रदान किया गया था।

"गुप्तकाल में इस बात के बहुत उदाहरण मिलते हैं, कि मध्य भारत के बड़े–बड़े सामंत राजाओं ने ब्राह्मणों को स्पष्ट आबाद गांव अनुदान में दिए, और शिल्पियों तथा कृषकों सहित समस्त ग्रामवासियों को अनुदान भोगियों को न केवल सभी परम्परागत कर देने, वरन उनके आदेशों का पालन करने का भी स्पष्ट निर्देश दिया।

दान–पत्रों को देखने से ज्ञात होता है, कि भूमि अनुदानों के बदले पुरोहितों को दाताओं या उनके पूर्वजों के आध्यात्मिक कलयाण के लिए पूजा–प्रार्थना करनी पड़ती थी। इनके सांसारिक कर्तव्यों का निर्देश कदाचित् ही कहीं किया गया हो। इसका एकमात्र उदाहरण वाकाटक राजा द्वितीय प्रवरसेन का चम्मक ताम्रपत्र है। इसमें एक सहस्त्र ब्राह्मणों को एक गांव दान दिया गया है। और उसके लिए कुछ कर्तव्य भी निर्धारित किए गए हैं। उन्हें चेतावनी दी गई, कि वे राजा और राज्य के विरूद्ध द्रोह नहीं करेंगे, चोरी और व्याभिचार नहीं करेंगे, ब्रह्य हत्या नहीं करेंगे और

---

1. शुक्ल, देवी दत्त – प्राचीन भारत में जनतंत्र पृ. : 12–15

राजा को अपथ्य अर्थात विष नहीं देंगे। इसके अतिरिक्त वे अन्य गांवों से लड़ाई नहीं करेंगे और न उनका कोई अनिष्ट करेंगे। ऐसा मानना स्वाभाविक ही है। ब्रह्माणों ने अपने उदार दाताओं से जितना पाया, बदले में उन्हें उनसे अधिक ही दिया। ब्राह्मणों ने अपने–अपने अधीनस्थ क्षेत्रों में शांति एवं व्यवस्था कायम रखी। प्रजा को वर्ण धर्म के निर्वाह का पवित्र कर्तव्य समझाया तथा उनके मन में राजा के प्रति आज्ञापालन करना पुनीत कार्य समझने की भावना जागृत की। अतः दाताओं की आकांक्षा जो भी रही हो, ऐसा मानना गलत होगा कि इन अनुदानों से सिर्फ धार्मिक उद्देशों की पूर्ति होती थी।

गुप्त काल में अधिकारियों की सैनिक और प्रशासनिक सेवाओं के लिए भूमि–अनुदान देने का कोई पुरालेखीय साक्ष्य नहीं मिलता पर हो सकता है कि ऐसा प्रचलन रहा हो। राजस्विक अधिकारियों का वेतन के रूप में भूमि अनुदान देने की मनु की व्यवस्था को गुप्तकालीन स्मृतिकारों ने दुहराया है।[1]

गुप्त काल के कुछ अभिलेखों से ज्ञात होता है कि धर्म कर्म में लोग हुए पुरोहितों और पंडितों के अतिरिकत गृहस्थों को भी अनुदान स्वरूप गांव दिए जाते थे किन्तु ये लोग उन गांवों से होने वाली आय का उपयोग धार्मिक प्रयोजनों के लिए करते थे।

गुप्त–काल के प्रशासनिक अधिकारियों के कुछ पदनामों तथा प्रशासनिक इकाइयों की कुछ संज्ञाओं से भी प्रकट होता है, कि सरकारी कर्मचारियों को भू–राजस्व अनुदान के रूप में वेतन दिया जाता था। भोगिक तथा भोगपकि, इन दो पदनामों से प्रतीत होता है, कि इन अधिकारियों के दो मुख्यतः रराजस्व का उपयोग करने के लिए ही दिए गए थे। और प्रजा पर राज सत्ता का प्रयोग करना तथा उसके कल्याण के लिए कार्य करना इनका गौण दायित्व था। कभी–कभी भौगिक आमात्य भी हुआ करता था। क्या पता कि उस अवस्था में उसे भौगिक का पद सामान्यता वंशानुगत हुआ करता था, क्योंकि भौगिक का पद सामान्यता वंशानुगत हुआ करता था क्योंकि भौगिक की कम से कम तीन पीढ़ियों का उल्लेख तो कई स्थानों पर मिलता है। इन सबके परिणामस्वरूप भौगिक स्वभावतः शक्तिशाली सामान्य प्रभु हो गया होगा, जिस पर केन्द्रीय सत्ता का अंकुश अपेक्षाकृत बहुत कम रह गया होगा।

---

1. शुक्ल, देवी दत्त – प्राचीन भारत में जनतंत्र पृ. : 26–28

## प्रान्तीय शासन तथा पदाधिकारी –

प्रान्तीय शासन के प्रमुख को कई नामों से पुकारा जाता था। जैसे 'उपरिक', 'गोप्ता', 'भौगिक', 'मोगपति', और 'राजस्थानीय'। कभी–कभी राजा के पुत्र या 'राजपुत्र' को भी गवर्नर नियुक्त किया जाता था। राजवंश से समबन्धित गर्वनर का सहचर मंत्री 'कुमारमात्य' कहलाता था।

गुप्त–साम्राज्य अनेक प्रान्तों में विभक्त था और ऐसा किया जाना शासकीय प्रखरता तथा बुद्धिमत्ता को स्पष्ट करता है। प्रान्तों को 'भुक्ति' कहा जाता था। प्रान्तों को 'प्रदेश' तथा 'भोग' भी कहा जाता था। दामोदरपुर लेख तथा गुनाई गढ़ अभिलेख में क्रमशः पुण्ड्रवर्द्धन भुक्ति, और वीर भुक्ति तथा उत्तरामण्डल भुक्ति का उल्लेख मिलता है।

गुप्तकाल में प्रांत का नाम देश या मण्डल भी था। सौराष्ट्र, मालवा व अंतर्वेदी इन तीन प्रान्तों का निर्देश अभिलेखों में आया है। पांचाल, कोशल, काशी, मगध, वंग इत्यादि दूसरे प्रांत भी गुप्त साम्राज्य में होंगे। जूनागढ़ के शिलालेख से मालूम होता है कि स्वयं सम्राट प्रांत पालों की नियुक्ति करता था। प्रान्त में शान्ति व्यवसथा रखना, कर वसूलना, परचक्र से प्रजा का संरक्षण करना, उनके प्रधान कार्य थे। प्रान्तीय शासकों में उपरिक महाराज गोप्त, भोगिक, भोगपति तथा राजस्थानीय भी थे। जिनकी नियुक्ति सम्राट ही करता था। वैशाली सील में प्रान्तीय पदाधिकारियों के अन्य अनेक नाम मिलते है।[1]

प्रानतीय शासकों तथा पदाधिकारियों के कार्य तथा उत्तरदायित्व केन्द्र के शासकीय पदाधिकारियों के ही समान थे। बाह्य आक्रमण से तथा आन्तरिक विद्रोहों को निपटाने के लिए वे सैनिक कार्यवाही करने के लिए स्वतंत्र थे। अपने

---

*प्रान्तीय प्रशासन के कई कर्मचारियों के नाम दिए गए है। 'बलाधिकरणिक' सैनिक कोष का अधिकारी था। 'महादडनायक' सर्वोच्च न्यायाधीश था। 'विनयस्थितिस्थापक' विधि एवं व्यवस्था मंत्री था। 'भटाश्वपति' पैदल और घुड़सवार सेना का अधिपति था। 'महापिल्लुपति' हाथी सेना का अधिकारी था। 'साधनिक' का उल्लेख भी मिलता है जो ऋण और जुर्माने का कार्य सम्भालता था। मल्लासरूल ताम्रपत्र अभिलेख में 'कर्तकृतिक', 'भोगपतिक', 'हिरण्यसमुधिक', (मुद्रा अधिकारी) 'तदयुक्तक' (कोषाधिकारी) 'औद्रगिक' (उद्रंग कर का संग्रहकर्ता) और्णा–स्थानिक (रेशम के कारखानों के पर्यवेक्षक) 'अग्रहारिक'' (अग्रहारों के पर्यवेक्षक) 'चौरोद्धरणिक' (पुलिस मुख्य निरीक्षक) आदि का उल्लेख किया गया है।*

---

1. विशुद्धानंद पाठक, उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास, पृष्ठ : 100–117

अधीनस्थ पदों पर नियुक्ति के विषय में वे स्वतंत्र थे। शासकीय कार्य को सुचारू रूप से संचालित होने के लिए प्रान्तीय शासक के अन्तर्गत एक विशेष सभा अथवा 'मण्डल' का गठन किया जाता था। प्रांतीय शासक के समस्त कार्यों का उत्तरदायित्व प्रान्तीय शासक को होता था।

## विषय जिले अथवा जनपद का शासन –

प्राप्त में अनेक मुक्तियां (कमिश्नरियां) रहती थी। प्रत्येक मुक्ति में प्रायः दो या तीन विषयक (जिले ) होते थे। भुक्तियों के मुख्याधिकारी 'उपरिक' थे, जिनकी नियुक्ति सम्राट करता था। उपरिकों की कभी–कभी महाराज पदवी होती थी। हो सकता है, कि ऐसे उपरिक भूतपूर्व राजवंश के वंशज होंगे। विषयपतियों की नियुक्ति कभी सम्राट करने थे कभी उपरिक।

भुक्तियों एवं विषय के अनेक अधिकरणों (दफ्तर) की मोहरें प्राप्त हुई है। युक्त, नियुक्त, व्यापुत, अधिकृत इत्यादि नामो के अधिकारी विषपति के नीचे के पदों पर काम करते थे, वे प्रांतों का ग्रमों से सम्बन्ध स्थापित करने में सहायता देते थे।

'विषय' का सर्वोच्च शासकीय पदाधिकारी विषयपति होता था। विषयपति को प्रशासनिक सहायता देने के लिए महत्तर, ग्रामिक, शौल्किक, गौल्मिक, अग्रहारिक, अष्टकुलाधिकरण, ध्रुवाधिकरण, भण्डागारधिकृत, शलवटक तथा पुस्तपाल आदि पदाधिकारी होते थे। विषयपति को परामर्श देने के लिए एक सभा या परिषद का भी गठन किया जाता था, इसके सदस्यों की संख्या 30 होती थी। यह इस बात का परिचायक है, कि विषय के प्रशासन में लोकमत भी प्राप्त किया जाता था।

जिले के प्रलेखाकार को 'अक्षपटल' कहा जाता था जो 'महाक्षपटलिक' के अधिन था। इस विभाग में कई लिपिक थे, जिनका काम था, प्रलेखों तथा पत्रों का लिखना और उनकी नकलें करना, उन्हें 'लेखक' और दिविर' कहा जाता था। प्रलेखों के अधिकारी को करणिक कहा जाता था। और उनका मसविदा बनाने वाला 'शासयिता' या 'कर्ता' कहलाता था। इनके अतिरिक्त 'सर्वाध्यक्ष' (सामान्य अधीक्षक) भी थे। 'कुलपुत्र' उनके अधीन काम करते थे और उनका काम दुराचार रोकना था।[1]

---

*डा. शर्मा का अभिमत है कि विधि प्रबन्ध समिति जैसामण्डल उन दिनों काम करता था और भूमिदान पाने वाले लोग तथा सैनिक पदाधिकारी उसके सदस्य होते थे, जिनका कुछ सम्बन्ध शायद शान्ति एवं व्यवस्था कायम रखने तथा स्थानीय विवादों के निबटारे से भी था।*

---

1. विशुद्धानंद पाठक, उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास, पृष्ठ : 118–120

## कार्य तथा उत्तरदायित्व –

विषयपति अनेक विषय (जिले) की शान्ति सुव्यवस्था तथा सुरक्षा के लिए उत्तरदायी होता था। विषयपति की नियुक्ति प्रायः पांच वर्ष के लिए होती थी। विषयपति का प्रधान कार्यालय 'अधिष्ठापन' कहलाता था। सम्भवतः पुलिस जंगल, वाणित्य इत्यादि विभागों के अधिकारी विषयपति की देखभाल में अपना काम करते थे।

दामोदर के अभिलेख से पता चलता है, कि विषयपति के दफ्तर का प्रबन्ध सुचारू रूप से चलता था। वहां एक पुस्तपाल रहता था, जो आदेश, लेख इत्यादि को ठीक तरह से सुरक्षित रखता था, जिससे मकान इत्यादि के मालिक कौन–कौन हैं तथा किस प्रकार का अन्न बोया जा रहा है? परती जमीन के कभी बेचने के समय केन्द्रीय सरकार को विषयपति के अधिकरण से पूछ–ताछ करनी पड़ती थी। कभी–कभी ताम्र पात्रों पर विषय अधिकरण की मुद्रा भी पाई जाती है। यह शायद इस कारण से होगा कि दान देने में उसकी सहमति का होना आवश्यक था।[1]

विषयों की संख्या की जानकारी नहीं मिलती है। आरंभ में यह विषय कुमारामात्य के अधीन था, लेकिन बाद में विषयपति को इसका प्रधान बनाया गया। बंमाल और बिहार में सामान्यतः विषयपति विषय का प्रधान होता था और स्थानीय अधिकरण की सहायता से शासन चलाता था। परंतु पश्चिमी उत्तर प्रदेश में एक विषयपति भाग नामक प्रशासनिक इकाई का प्रधान था। संभवतः विषय में एक सशक्त सैनिक टुकड़ी रखी जाती थी जो आवश्यकता पड़ने पर सिविल अधिकारियों की सहायता करती थी।

विषय 'वीथियों' में विभक्त था। बिहार में हमें एक वीथि की जानकारी मिली है। यह भी नंदवीथि जिसका मुख्यालय मुंगेर में पड़ता था।

---

*'विषयपति' के कार्य में 'महत्तर' (ग्राम वृद्ध), 'ग्रामिक' (ग्राम प्रमुख या मुखिया) 'शौल्किक (चुंगी के संग्रहकर्ता), 'गौल्मिक' (जंगलों और किलो के अधिकारी), 'अग्रहारिकं, 'अष्टकुलाधिकारणिक' (जो सम्भवतः सीनीय क्षे; के आठ 'कुलों' या परिवारों के अधिकारी थ), 'ध्रुवधिकरणिक' (भूमि कर के अधिकारी, 'भाण्डाराधिकृत') (कोषाध्यक्ष), 'रालवटक' (लेखापाल या मुनीम) 'पुस्तपाल' आदि उसके सहायक थे।*

---

1. वासुदेव उपाध्याय, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, पृष्ठ : 220–221

## स्थानीय (नगर) प्रशासन –

अभिलेखों से ज्ञात होता है, कि सुव्यवस्थित प्रान्तीय और स्थानीय प्रशासन का विकास सबसे पहले गुप्त राजाओं ने ही किया। गुप्तकालीन प्रशासन की प्रमुख विशेषता 'स्थानीय प्रशासन' के रूप में परिलक्षित होता है। गुप्तकाल में अनेक वैभवशाली तथा विशाल नगरों का विकास हो चुका था। एक विषय जिले के अन्तर्गत एक या दो नगर होते थे।

नगर अथवा स्थानीय शासन के मुख्य अधिकारी को 'पुरपाल' या नगर रक्षक कहा जाता था। एक अन्य कर्मचारी 'पुरपाल' उपरिक का भी उल्लेख मिलता है। 'अवस्थिक' नामक कर्मचारी धर्मशालाओं के पर्यवेक्षक के रूप में कार्य करता था। नगरों का प्रबन्ध करने के लिए नगरपालिका के समान परिषद का गठन किया जाता था। इस परिषद में नगर के विभिन्न वर्गों के व्यक्ति प्रतिनिधित्व कर पाते थे। इसके प्रमुख को 'नगरपति' कहा जाता था। दशपुर के प्रमुख को 'दशपुर–पाल' कहा जाता था। 'अवस्थिक' एक विशेष अधिकारी था जो धर्मशालाओं के पर्यवेक्षक के रूप में काम करता था।

## कार्य तथा उत्तरदायित्व –

इस प्रशासन का मुख्य कार्य राजस्व वसूल करना और शान्ति व्यवस्था कायम रखना था। नगर की स्वच्छता, स्वास्थ्य, भवन निर्माण आदि के नियमों का पालन करने के लिए 'नगरपति' उत्तरदायी था। यदि कोई नागरिक नियमों का उल्लंघन करता था तो उसे अर्थ–दण्ड देना पड़ता था।

## ग्राम प्रशासन –

विथि गांव में बंटी हुई थी। सबसे छोटी प्रशासनिक ईकाई गांव ही था। गुप्त अभिलेखों और मुहरों में कई गांवों का उल्लेख हुआ है, गांव के मामले की व्यवस्था का मुख्य भार ग्रामिक पर और महत्तम, महत्तर या महत्तक कहे जाने वाले बड़े वृद्धों पर था। 'ग्रामिक' ग्राम प्रशासन का मुखिया था। उसकी सहायता के लिए

---

*ग्रामिक ग्राम का प्रमुख था किन्तु उसके बाद कुछ अन्य कर्मचाकरी भी थे जैसे 'दूत' सीमा–कर्मकार (सीमा बनाने वाले) गड़रिये, 'कर्ता', 'लिपिक', 'दण्डिक' (दण्ड देने वाला) 'चौरोद्धरणिक' और 'शतभट', 'परिषद' या ग्राम सभा का उल्लेख भी प्राप्त होता है। यह संस्था बाण कवि के समय में भी विद्यमान थी, जिसने 'पंचकुल' का उल्लेख किया है।*

'दूत' सीमा कर्मकार गड़रिये, कृत, लेखक, दण्डिक, चौरोद्धरणिक तथा शात–भात नामक कर्मचारी कार्य करते थे। परिषद का भी उल्लेख मिलता है। इस परिषद को 'पंच–मण्डली' अथवा 'जनपद' भी कहा जाता था। दामोदर ताम्रपत्र संख्या तीन के अनुसार ग्राम परिषद के सदस्यों के नाम महत्तर अष्टकुलाधिकारी, ग्रामिक तथा कुटुम्बिन थे। गाम परिषद द्वारा सुवधिानुसार कई उपसमितियों का संगठन भी किया जाता था।

ग्राम सीमा का निर्धारण, करों की वसूली, कृषि, सिंचाई उद्यान, मन्दिर, न्याय आदि की व्यवस्था करने में ग्राम प्रशासन को पर्याप्त अधिकार प्राप्त थे। ग्राम प्रशासन का निरीक्षण राजकीय पदाधिकारी द्वारा किया जाता था।[1]

उत्तर बिहार में ग्राम प्रधान का जिसे महत्तर कहा जाता था। इनका अधिक महत्व था, कि उसकी अपनी मुहर भी होती थी। महत्तर से ही महतो उपाधि व्युत्पन्न हुई है। यह उपाधि बिहार के कई हिस्सों में आज भी प्रचलित है और कुछ क्षेत्रों में अब भी इस उपाधि को गांव के प्रधान के अर्थ में लिया जाता है।

बंगाल के भुमि अनुदान पत्रों से महत्तरों के स्थान के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। साधारणतः वे ब्राह्मणों और महत्तरों को अलग–अलग सम्बोधित किया गया है। उत्तर बंगाल में महत्तरों की अनुमति के बिना धार्मिक प्रयोजनों से भी जमीन नहीं बेची जा सकती थी। स्वयं कुछ महत्तरों द्वारा इस प्रयोजन से अपनी जमीन बेचे जाने का उल्लेख मिलता है।

जनपद अपनी मुहरें और अपने सिक्के भी चलाते थे। इन मुहरों से उनके निगमित स्वरूप का भी प्रमाण मिलता है। बड़े–बड़े जनपदों की व्यवस्था के लिए पंचमंडली के गठन की सिफारिश की गई है, और जान पड़ता है, इसका चलन गुप्तकाल के पूर्व ही प्रारंभ हो चुका था। वैशाली के सन्निकट शहरों व गांवों में एक प्रकार की परिषदें भी काम करती थी उदाहरण के लिए एक परिषद उदानकूप में थी। परंतु यह कहना दुष्कर है, कि यह गांव की समस्याओं से निबटने वाली कोई पंचायत थी या धर्मशास्त्रों में विहित नियमों की व्याख्या करने वाली विद्वान ब्राह्मणों की कोई समिति!

"गुप्त प्रशासन का एक महत्वपूर्ण पहलू ग्राम प्रशासन का बढ़ता हुआ क्षेत्र है। इस नई प्रवृत्ति का कारण यह था, कि राज्य ने न तो इतने अधिक कर लगाये कि

---

1. मुखर्जी, आर.के. – गुप्ता एम्पायर, पृष्ठ : 38–40

उनकी आय से अधिकारियों का एक बड़ा संगठन कायम रखा जा सकता है, और न ही उसके पास इतनी ताम्र मुद्राएं थी। कि वह छोटे–छोटे अधिकारियों को सुविधा पूर्वक वेतन दे सकता था। स्वभावतः किसी समय केन्द्रीय सरकार द्वारा सम्पादित किए जाने वाले बहुत से कार्यों का दायित्व ग्राम प्रशासन पर आ गया, जिस पर किसी एकताबद्ध ओर समत्ववादी समुदाय का सामूहिक नियंत्रण नहीं था, बल्कि जिसमें भू–स्वामियों तथा अन्य प्रभावशाली लोगों का बोलबाला था।

अधिकारियों को जब तब जो भूमि अनुदान मिलते रहते थे, उनके कारण उनका पद वंशानुगत और अधिक शक्ति संपन्न होता जा रहा था। गुप्त शासकों ने ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में सबसे पहली बार ऐसे व्यवस्थित प्रांतीय तथा स्थानीय शासन का शुभारंभ किया। जिसमें भू–स्वामियों, सैनिकों तथा पेशेवर लोगों के प्रतिनिधियों को स्थान दिए गए। इस काल में ग्राम प्रशासन को सहसा बहुत अधिक सत्ता प्राप्त हो गई। न्याय व्यवस्था में भी स्थनीय तत्वों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और ऐसा जान पड़ता है, कि प्रशासन का यह अंश अब पहले की अपेक्षा बहुत अधिक सुसंगठित हो गया था।[1]

## राजस्व के साधन –

अभिलेखों के अध्ययन से राज्य के राजस्व के साधनों का पता चलता है। उनमें से कुछ थे 'उद्रग' या भूमिकर 'उपरिक' जो फ्लीट के विचार में उन कृषकों से लिया जाता था, जिनका भूमि पर कोई स्वामित्व अधिकारी नहीं था। 'वट', 'भूत', 'धान्य', हिरण्य' (सोना), 'उदेय', 'वैष्टिक' या अनिवार्य श्रम 'दशापराध' या दस अपराधों के लिए जुर्माना, 'भोग', 'भाग' आदि। कुछ अभिलेखों में ऐसे प्रसंग है कि

---

*डा. शर्मा "कि इस संस्थाओं के अस्तित्व का अर्थयह नहीं लगाया जाना चाहिए, कि ग्रामीण लोग, प्रशासन में लोकतांत्रिक रीति से भाग लेते थे। इसका मतलब ज्यादा से ज्यादा यही हो सकता है, कि थोड़ी बहुत सत्ता का उपयोग राज्य कर्मचारियों से इतर वर्ग के ऐसे लोग भी करते थे। जिनके समर्थन के बिना प्रशासन नहीं चल सकता था। समकालीन ग्रन्थों में प्रयुक्त ग्रामाधिपति और ग्राम स्यधिपति शब्दों से ऐसा जान पड़ता है, कि ग्राम प्रधान को गांव का अधिपति माना जाता था।*

*डा. अल्टेकर के अुनसार केन्द्र तथा प्रान्तों में गुप्त प्रशासन सुव्यवस्थित था। केन्द्रीय सचिवालय कार्य कुशल था, और वह जिलों तथा ग्रामों में होने वाली घटनाओं की सूचना प्राप्त कर सकता था। गुप्त प्रशासन ने काफी लम्बे समय तक प्रजा को विदेशी आक्रमणों तथा आन्तरिक उपद्रवों से सुरक्षित रखा। दंड–विधान का प्रशासन न्याय तथा मानवीय का सुंदर समन्वय था। सरकार प्रजा के सांसारिक तथा अध्यात्मिक हितों की रक्षा करती थी। प्रशासन के विकेन्द्रित होने के कारण जनता का भी शासन में हाथ था, और स्थानीय संस्थाओं को बहुत से अधिकार प्राप्त थे।*

---

1. मुखर्जी, आर.के. – गुप्ता एम्पायर, पृष्ठ : 42–45

ग्रामों को कर–मुक्त कर दिया गया था। एक अभिलेख के शब्दों में, इसने कर नहीं देने है (अकरदायी) इसे सेना या पुलिस (भट) या उद्वैध (गात) तंग नहीं करेंगे, इसे अपनी गाय और बैल नहीं देंने होंगे, न ही फूल, दूध, चरागाह, खाल और ईंधन देने होंगे, न ही नमक या गीले नमक, क्रय या विक्रय या खनिज पदार्थों पर टैक्स देने होंगे, इसे अनिवार्य परिश्रम नहीं करना होगा, ना ही अपने छिपे हुए कोष और पदार्थ 'कलृप्त' और 'उपक्लृप्त' देने होंगे।" एक अन्य अभिलेख में राजा द्वारा दी गई इन युक्तियों का उल्लेख है सैनिक (भट) ओर राजा के छत्र–धारियों (छत्र) द्वारा उत्पीड़न से मुक्ति, चारागाह, खालों, ओर 'अंगार' या ईधंन का अधिकार समर्पण न करना, औषधियां और खनिज खालों और 'अंगार' या ईंधन का अधिकार समर्पण न करना, औषधियों और खनिज पदार्थ शुद्ध करने का अधिकार न छोड़ना, जानवरों की वृद्धि न देना, बलि के लिए जानवर न देना, फूलों या दूध या छिपे हुए धन और पदार्थों का भाग न देना था।[1]

## गणतंत्र –

गुप्तकाल में राजतंत्र ही प्रशासन का प्रचलित रूप था। किंतु पंजाब तथा राजपूताना में कुछ गणतंत्र अभी स्थित थे। केन्द्रीय पंजाब में मद्रों का राज्य था। कांगड़ा–घाटी में कुणिन्दों का, दक्षिण–पूर्वी पंजाब में यौवेयों का, आगरा–जयपुर प्रदेश में अर्जुनायनों का और केन्द्रीय राजपूताना में मालवों का राज्य था। मध्य भारत में प्रार्जुनों, सनाकानीकों, काकों तथा अमीरों के गणतंत्र थे। लगभग 400 ईस्वी के पश्चात् ये सब गणतंत्र समाप्त हो गए।

## राजतंत्र –

गुप्तकाल में राजाओं के देवत्व का सिद्धान्त अत्यन्त लोकप्रिय था। समुद्रगुपत को देवता कहा गया है, जो पृथ्वी पर रहने के लिए आया था। कुछ शासकों को पंचमलोकपाल या दैवी रक्षक कहा गया है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है, कि गुप्त शासकों ने अपने देवत्व के कारण अपने को सर्वथा निर्दोष मानने का दावा किया हो। राजा को वृद्धों की सलाह लेने, प्रशासन कला सीखने और न्याय परायणता की भावना फैलाने की आवश्यकता थी। अक्खड़, अधर्मी और अत्याचारी राजाओं की निंदा की जाती थी। एक आदर्श राजा को अपना शरीर इस प्रकार बनाना पड़ता था, कि वह अपने उच्चपद के कर्तव्यों को पूर्ण कर सके। ज्येष्ठ पुत्र को प्रायः 'युवराज' चुना जाता था। उसका अपना अलग नागरिक तथा सैनिक कार्यालय था। राजा की अनुमति से वह प्रांतीय सरकारों के प्रमुखों को आदेश भेज सकता था। यदि राजा

---

1. राय, उदयनारायण, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, पृष्ठ : 72–75

वृद्ध होता था, तो अधिकांश राज्य कार्य उसी के हाथ में आ जाता था। रानियां तथा राजकुमारियां प्रशासन से अधिक भाग नहीं लेती थी। यद्यपि कुमार देवी को बहुत ऊँचा स्थान दिया गया था, फिर भी उसने अपने पति चंद्रगुप्त प्रथम के प्रशासन में कोई भाग नहीं लिया। चंद्रगुप्त द्वितीय की रानी ध्रुवदेवी ने भी ऐसा ही किया।

गुप्त सम्राटों की उपाधियां 'परमदेवता', परमभट्टारक', 'एकाधिराज', 'महाराजधिराज, 'पृथ्वीपाल', परमेश्वर', 'सम्राट', एकाधिराज और 'चक्रवर्तिन थी। श्रीगुप्त, घटोत्कच, कुमारगुप्त प्रथम तथा जैसे शासकों को केवल 'महाराज' कहा गया। कालिदास द्वारा दी गई राजसी उपाधियां है 'राजन', 'नरपति', 'देव, 'भट्टारक' ''असह्वविक्रम, 'अप्रतिरथ', 'सम्राट' आदि। चन्द्रगुप्त द्वितीय की रानी को 'महादेवी' ध्रुवदेवी' कहा गया है। कभी–कभी रानियों को 'परमभट्टारिका' (सम्मान की सर्वोच्च अधिकारी) तथा 'परमभट्टारिकाराज्ञी' महादेवी कहा जाता है।

गुप्त शासकों को बहुत विस्तृत शक्तियां प्राप्त थीं। वे शक्तियां राजनीतिक, प्रशासनिक, सैनिक तथा न्याययिक क्षेत्रों में फैली हुई थीं। बहुधा वे स्वयं ही अपने सेनापति भी होते थे। समुद्रगुप्त चंद्रगुप्त द्वितीय और स्कन्दगुप्त नेअपनी सेनाओं का स्वयं नेतृत्व किया। गुप्त सम्राट सभी गर्वनर, मुख्य सैनिक तथा नागरिक कर्मचारी नियुक्त थे। वे सब सम्राट के प्रति उत्तरदायी थे। गर्वनर तथा उनके कम्रचारी सम्राट के आदेश तथा पथ प्रदर्शन में काम करते थे। उसी प्रकार केन्द्रीय सचिवालय भी सम्राट की देखरेख में काम करता था सम्राट ही सब प्रकार की उपाधियां तथा सम्मान प्रदान करता था। देश की सारी भूमि सम्राट की सम्पत्ति थी और वह उसे किसी को भी दे सकता था। वह बांध बना सकता था, विदेशियों को

---

*गुप्त सम्राटों के शिलालेखों में मौर्य अधिकारियों के पदों को कोई चिन्ह नहीं है। किंतु आज इस मत को स्वीकार नहीं किया जाता। यह बताया जाता है कि गुप्त सम्राटों ने बहुत बडी सीमा तक अपने पूर्वजों के अधिकारियों के पदों बनाए रखा। कुमारगुप्ता, महादंडनायक और संधिविग्रहक पदों का उल्लेख समुद्रगुप्त के इलाहाबाद सतम्भ शिलालेख में है।*

*ग्रामिक, ग्राम, विष, नागरा, गोपा, भोगा, शुल्क, पुप्तप, गुल्म, अक्षपटल, दूत, सीमा और अधिकरण तकनीकि पद कौटिल्य को ज्ञात थे। उसने युक्त और उपयुक्तक का उल्लेख किया है, समुद्रगुप्त के इलाहाबाद स्तंभ शिलालेख में आयुक्त पुरूषों का वर्णन है।*

*ऐसा दिखाई देता है कि गुप्त सम्राटों ने सुविधा की दृष्टि से कौटिल्य के सरकारी पदों को अपनाया था। इसी प्रकार से शातवाहनों के महासेनापति, सेनापति भडारिक, महादंडनायक, लेखक, गुलमिक, गणपाक, नायक, भोजक, महत्तर तथा शतभट नामक अधिकारी गुप्त प्रशासन में मिलते हैं। रज्जुक, लेखक, मतिसचिव, आमात्य, दंडनायक, महासेनापति ओर ग्रामिक कुषाण अफसरों के नाम गुप्तकाल में भी पाये जाते हैं।*

आश्रय दे सकता था, रेवल लगा सकता था, माफ कर सकता था इकट्ठा कर सकता था और न्याय प्रदान कर सकता था। यदि किसी सम्पत्ति का कोई स्वामी नहीं होता था, तो वह सम्राट को मिल जाती थी।[1]

यह कहना ठीक नहीं है, कि गुप्त सम्राट निरंकुश शासक थे। मंत्रियों तथा अन्य उच्च कर्मचारियों के साथ उनके अधिकार बंटे हुए थे। ग्राम पंचायतों तथा नगर परिषदों आदि स्थानीय संस्थाओं को बहुत से अधिकार दे दिए गए थे। प्रजा की इच्छाओं का आदर करके तथा उनका हित साधन करके सम्राट को जनता में लोकप्रियता प्राप्त करनी पड़ती थी।

जनता से संपर्क रखने के लिए सम्राट देश का दौरा किया करता था। दंडिन बताता है ''प्रशासन का वृक्ष – जिसकी पांच जड़ें उत्तम योजना है, जिसकी दोहरी पुष्टि उसका मान है, जिसकी चार शाखाएं शक्ति है, जिसकी 72 पत्तियां उसके परामर्शदाता है, जिसकी छः टहनियां उसके छः साधन है, जिसका फूल सत्ता है और फल सफलता हैं। उसे शासक के लिए लाभप्रद होना चाहिए कालिदास बताते हैं, कि राजपद धूप से बचाने के लिए छत्र के डण्डे की तरह है, जिसे अपने ही हाथ से उठाया जाता है। महाराजा हस्तिन् को गांयों, हाथियों, घरों, सोने और बहुत सी धरती का दान देने वाला कहा गया है, जो (अपने) आध्यात्मिक आचार्य तथा माता पिता को सम्मानित करने का इच्छुक था, और देवताओं तथा ब्राह्मणों के प्रति अत्यंत श्रद्धा रखता था।

गुप्त सम्राट सामान्यतः अपने उत्तराधिकारी मनोनीत करते थे। चंद्रगुपत प्रथम ने समुद्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। चंद्रगुप्त द्वितीय को भी अपने पिता ने मनोनीत किया था। और उसका प्रमाण 'तल्परिगृहीत' शब्द के प्रयोग से मिलता है। प्रतीत होता है, कि गुप्त वंश की प्रणाली हर्षवर्धन के समय में भी अपनाई गई।[2]

---

*काइलहॉर्न ने अन्य कई संघ रुपी संदर्भों का भी उल्लेख किया है के समयपी संदर्भों का भी उल्लेख किया है! उनके अन्य अभिलेखों में 'राजा', 'सामान्त', 'भोगिक', विषयपति', 'ग्राममहत्तार', 'आधिकारिक,' आदि का उल्लेख किया गया है। 'भोग' 'विषय', 'उद्रंग', 'उपरिकर', 'शतभट', और भूमि छिद्रन्याय' का भी उल्लेख मिलता है।*

---

1. राय, उदयनारायण, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, पृष्ठ : 76–78
2. सालेतोर, आर.एन. लाइफ इन द गुप्ता एज, पृष्ठ : 97–98

## गुप्त प्रशासन का प्रभाव–

गुप्त साम्राज्य के अन्त के पश्चात् भी गुप्त प्रशासनिक पदवियां प्रचलित रहीं! पूर्वकालीन कालचूरियां पर सर्वप्रथम गुप्त प्रशासन प्रणाली का प्रभाव पड़ा। उनके राजा शंकरगान को 595 ई. के अभिलेख में ऐसा व्यक्ति बताया गया है, ''जिसका संसार में कोई समान प्रतिद्वन्द्वी न था। जिसकी शक्ति धनद, वरूण, इन्द्र और अंतक के बराबर थी। जिसने अपनी भुजाओं के पराक्रम से शक्तिशाली राजाओं का भाग्य प्राप्त किया, जिसका विशाल और उच्च मन समपर्ण से ही प्रसन्न होता था।

उसी प्रकार बादामी के चालुक्यों मलखेद के राष्ट्रकूटों और कल्याणी के पशिचमी चालुक्यों को भी गुप्त प्रशासन ने प्रभावित किया। राष्ट्रकूट अभिलेखों के परमभट्टारक महाराधिराज परमेश्वर 'राष्ट्रपति', 'विषयपति', 'ग्राम कुल' (ग्रामों का प्रमुख) 'अंधिकारम् आदि का उल्लेख'मिलता है। फ्लीट के अनुसार कटक के सोमवंशी राजाओं ने भी गुप्त उपाधियाँ धारण की। उनके शासकों ने 'परमभट्टारक' महाराजाधिराज परमेश्वर उपाधि धारण की। 'संहर्त्ता' ''सन्धिाता 'नियुक्तक', 'आधिकारक' 'दण्डपाशिक', 'शतभट' और 'राजपुत्र' का उल्लेख भी प्राप्त होता है।[1]

## चन्द्रगुप्त द्वितीय की विजयें

चन्द्रगुप्त द्वितीय की सबसे बड़ी सैनिक सफलता यह थी, कि उसने साम्राज्य को अरब सागर तक बढ़ाया और सौराष्ट्र या काठियावाड़ प्रायद्वीप को विजित किया। स्मिथ के अनुसार कि जाति, धर्म और रीति रिवाज की विभिन्नता के कारण चन्द्रगुप्त द्वितीय को पश्चिमी क्षत्रपों के राज्य को विजित करने का विशेष कारण

---

*रैप्सन की मान्यता है कि 'अन्तिम महाक्षत्रपों के सिक्कों की तरह जिनसे वे धातु और शैली की दृष्टि से बहुत कुछ मिलते जुलते है, उनके मुख भाग पर राजा के सिर के पीछे तिथि भी दी गई है, जिसके साथ 'वर्ष' का कोई तुल्यार्थ शब्द भी है, और यूनानी अक्षरों में पुराने मुद्रा लेख के कुछ कुछ अवशेष भी है, और पृष्ठ भाग पर गुप्त चिन्ह (मोर) के स्थान पर चैत्य, चन्द्र और तारे को अंकित कर दिया गया है।*

*2. स्मिथ के अनुसार 'सौराष्ट्र और मालवा के साम्राज्य में मिल जाने से केवल असाधारण सम्मति और उपज वाले प्रान्त ही प्राप्त नहीं हुए बल्कि पश्चिमी तट के बन्दरगाहों का रास्ता भी सर्वोच्च शक्ति के लिए बिना किसी रोक टोक के खुल गया। इस प्रकार मिस्र के रास्ते यूरोग के साथ समुद्री व्यापार के द्वारा चन्द्रगुप्त द्वितीय का सम्बन्ध स्थापित हो गया और उसके दरबार तथा प्रजा पर भी उन यूरोपीय विचारों का प्रभाव पड़ने लगा जो अलेग्जेण्डिया के व्यापारियों के माल के साथ भारत में आये।*

---

1. सालेतोर, आर.एन. लाइफ इन द गुप्ता एज, पृष्ठ : 90–92

दिखाई दिया। उस का उद्देश्य कुछ भी रहा हो। उसने सत्यसिंह के पुत्र क्षत्रप रूद्रसेन पर आक्रमण किया। उसे सिंहासन से उतारा और उसका वध किया। तत्पश्चात उसने उसका राज्य भी गुप्त साम्राज्य में मिला लिया। युद्ध अवश्य ही बहुत लम्बा रहा होगा। उस प्रदेश के विलीन किए जाने का प्रमाण सिक्कों से मिलता है। अभिलेखों से नहीं किन्तु वीरसेन शाब के उदयगिरि गुफा अभिलेख में कहा गया है, कि 'वह (शाब) यहाँ (पूर्वी मालवा) आया, उसके साथ स्वयं राजा (चन्द्रगुप्त) ही था, जो समस्त संसार पर विजय पाने का अभिलाषी था।' यह विचार प्रकट किया गया। कि शाब पाटलिपुत्र का निवासी था और ओर वह चन्द्रगुप्त द्वितीय का 'सचिव' या मंत्री बना। वह युद्ध तथा शान्ति विभाग का अधिकारी था। जब चन्द्रगुप्त द्वितीय ने पश्चिमी क्षत्रपों को परास्त करने का निश्चय किया तो वह भी उसके साथ गया। शकों के विरूद्ध चन्द्रगुप्त के अभियानों का केन्द्र पूर्वी मालवा था। सांची तथा उदयगिरि के अभिलेखों से प्रतीत होता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने मंत्री, सेनानी और सामन्त पूर्वी मालवा में विदिशा के स्थान पवर या उसके निकट एकत्र किए। बाण ने भी पश्चिमी क्षत्रपों के पतन का उल्लेख किया है। किन्तु चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा चलाए गए चांदी के सिक्कों का प्रमाण तो निर्णायक है।[1]

महरौली स्तम्भ अभिलेख में कहा गया है, कि राजा चन्द्र ने बंग देश में राजाओं के एक संघ का सामना किया। कालिदास की मान्यता है कि 'वंग' शब्द का अर्थ गंगा की दो शाखाओं भागीरथी और पदमा के बीच की भूमि है; इलाहाबाद स्तम्भ अभिलेख में कहा गया है, कि समतट जिसमें वग का कुछ भीग भी सम्मिलित था, उसके 'प्रत्यान्त' या सीमावर्ती राज्य था। जो समुद्रगुप्त की प्रभुता को स्वीकार करता था। संभव है, कि कुछ राजाओं ने चन्द्रगुप्त द्वितीय को मान्यता न दी हो। और उसे उनके विरूद्ध युद्ध करना पड़ा हो। सम्भव है कि वंग विजय चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्य काल के अन्त में हुई हो। घटना का उल्लेख मिलता है। चन्द्रगुप्ता द्वितीय ने वाहलीक को भी विजित किया जिसे बल्ख या बेक्ट्रिया समझा गया है, सम्भव है, कि जिन कुषाण शासकों ने समुद्रगुप्त की प्रभुता को स्वीकार किया था उन्होंने विद्रोह कर दिया हो और इसलिए उन्हें दबाने की फिर आवश्यकता पड़ी हो।

यह भी सम्भव है, कि चन्द्रगुप्त द्वितीय अपनी शक्ति बढ़ाना चाहता हो और इसलिये उसने इस अभियान का आयोजन किया हो।

---

1. मजूमदार, आर.सी. तथा अहटेकर ए.एस० () द वाकाटक गुप्त एज पृष्ठ : 251–252

## मुख्य नगर

'यही स्वीकार किया जाता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में भी पाटलिपुत्र गुप्त साम्राज्य की राजधानी थी 402 ई. से चन्द्रगुप्त द्वितीय ने एक निवास स्थान मालवा में भी बना लिया था, पहले बिदिशा और फिर उज्जैन में चन्द्रगुप्त द्वितीय को 'श्रेष्ठतम् नगर उज्जैन का स्वामी' और सर्वश्रेष्ठ नगर पाटलिपुत्र का स्वामी कहा गया है। वसुबन्धु की जीवन कथा के लेखक ने अयोध्या को विक्रमादित्य की राजधानी कहा गया है। एलन के अनुसार, 'चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा चलाए गए तांबे के सिक्के प्रायः अयोध्या में और उसके निकट पाए गए है। इससे हमें ज्ञात होता है, कि अयोध्या भी एक राजधानी थी, और उसमें एक टकसाल थी।

सम्भवतः उज्जैन और उत्तरी भारत के बीच मुख्य मार्ग पर स्थित कौशाम्बी को भी राजा ने अपना निवास स्थान बनाकर सम्मानित किया।[1]

## कुमारगुप्त प्रथम 415–455 ई.

"यह लगभग निश्चित है, कि कुमारगुप्त प्रथम 415–455 ई. तक राज्य किया। 415 ई. उसके बिलसाड़ अभिलेख पर अंकित है। उसके चांदी के सिक्कों से उसकी अंतिम तिथि 455 ई. प्राप्त होती है। इस प्रकार उसका 40 वर्ष का लम्बा राज्य काल था।

कुमारगुप्त प्रथम की दो पत्नियां और दो पुत्र थे। पुरूगुप्त अनन्तदेवी का पुत्र था और स्कन्द्रगुप्त सम्भवतः देवकी का पुत्र था। यह नाम स्कन्दगुप्त के लिये अभिलेख के आधार पर सीवैल ने प्रस्तावित किया है।

कुमारगुप्त प्रथम के कई नाम थे, जैसे 'श्री महेन्द्र,''अजीत महेन्द्र', 'सिंह महेन्द्र', 'अश्वमेघ महेन्द्र', 'महेन्द्र कर्म','महेन्द्र कल्प', 'श्री महेन्द्र सिंह', 'महेन्द्र कुमार', 'महेन्द्र आदित्य,' आदि। "

उनके अभिलेख में कहा गया है, कि चरिदत्त पुण्डवर्धन भुक्ति का गर्वनर था, जो उत्तरी बंगाल है। उसी प्रकार राजकुमार घटोत्कच्छ गुप्तएरण प्रान्त या पूर्वी मालवा का वाइसराय था। एक अन्य वाइसराय बन्धुवर्मा दशपुर में शासन करता था। 436 ई. के एक अभिलेख में कहा गया है कि कुमारगुप्त बहुत बड़े साम्राज्य पर शासन करता था, जो उत्तर में सुमेर और कैलास पर्वत से दक्षिण में विन्य वनों तक

1. मजूमदार, आर.सी. तथा अहटेकर ए.एस0 () द वाकाटक गुप्त एज : पृष्ठ 253–255

और पूर्व तथा पश्चिम में सागर के बीच में फैला हुआ था जिसके बीच में उसका राज्य मेखला की भांति झूम रहा था।"[1]

देश में धार्मिक सहिष्णुता थी। इसका प्रमाण यह तथ्य है कि लोग अपनी इच्छानुसार विभिन्न देवी देवताओं की पूजा करते थे। विभिन्न धर्म साथ साथ प्रचलित थे। विष्णु, शिव, शक्ति, जिन, बुद्ध, सूर्य और कार्तिकेय की पूजा के लिये दान के अनेक उल्लेख प्राप्त हुए है। ब्राह्मणों की सहायता के लिये विशेष दान दिये जाते थे। ताकि वे अपने धार्मिक संस्कार सुगमतापूर्वक कर सकें।

कुमारगुप्त प्रथम ने विभिन्न प्रकार के सिक्के चलाए। धनुर्धर, प्रकार, तलवार धारी प्रकार, अश्वमेघ प्रकार, धुड़सवार प्रकार, सिंह–धातक प्रकार, चीता ध ातक प्रकार, मोर प्रकार, प्रताप प्रकार और हाथी सवार प्रकार। पश्चिमी भारत में प्रचलन के लिये कुमारगुप्त ने चांदी के सिक्के चलाए। उन्होंने तांबे के सिक्के भी चलाए। अश्वमेष प्रकार के सिक्के, अश्वमेघ यज्ञ के उपलक्ष्य में ही चलाए गए होंगे। इन सिक्कों के मुख भाग का मुद्रा लेख 'जयति दिवस् कुमार' है और पृष्ठ भाग का मुद्रा लेख भी 'अश्वमेघ महेन्द्र है' उनके सिक्कों से उनके साम्राज्य का विस्तार ज्ञात होता है। सतारा जिले में पाए गए 1395 सिक्कों से दक्षिण की ओर फैलने का संकेत मिलता है।

ऐसा प्रतीत होता है, कि कुमारगुप्त प्रथम का राज्य शान्तिपूर्ण और समृद्धिशाली था। किन्तु उसके राज्य के अन्त में एक आक्रान्ता ने शान्ति भंग कर दी। बाण भी मगध के एक राजा की कथा सुनाता है जिसे मेकल के राजा के मंत्री उठा कर ले गए।

'जूनागढ़ अभिलेख में गुप्त साम्राज्य के आक्रमण का उल्लेख इन शब्दों में किया गयाहै: "इसके बाद महाराजाधिराज सदैव विजयी हों," जिनके साथ धन और शोभा की देवी आलिंगन कर रही है। जिन्होंने अपनी भुजाओं (की शक्ति) से पराक्रम प्राप्त किया, और जिन्होंने गरूड़सम (अपने स्थानीय प्रतिनिधियों की शक्ति

---

1. *फ्लीट का विचार था कि गुप्त साम्राज्य पर पुष्यमित्रों ने आक्रमण किया।*
2. *कुछ विद्वानों के अनुसार भिटारी स्तम्भ अभिलेखों में 'पुष्यमित्र' ठीक से नहीं पढ़ा गया क्यों कि उसमें इस शब्द का द्वितीय अक्षर पूर्ण नहीं है।*
3. *एच. आर. दिवेकर ने 'पुष्यमित्रों' के स्थान पर 'युध्यमित्रशं' पढ़ने की चेष्टा की है।*

---

1. मुखर्जी आर.के. गुप्त एम्पायर 60–64

प्राप्त की) (और प्रयुक्त की) और घमण्ड तथा उदण्डता से अपने सिर उठाते हुए सर्प सम (शत्रु) राजाओं के विरूद्ध उसे प्रयोग किया; जब (उन) पिता से अपनी कीर्ति से देवताओं का मित्र बनने की क्षमता प्राप्त कर ली थी (अर्थात वह दिवंगत हो चुका था) तो राज गुण युक्त तथा शोभा युक्त स्कन्दगुप्त ने अपने शत्रुओं को झुका दिया, और चारों समद्रों तक फैली हुई (सारी) पृथ्वी को अपने अधिकार में कर लिया, (और) उसकी सीमाओं पर समृद्ध देश बसे हुए थे।" इससे स्पष्ट है कि अपने पिता की मृत्यु से कुछ समय पहले स्कन्दगुप्त ने 'सर्प सम (शत्रु) राजाओं से युद्ध किया। यह उल्लेख पुष्यमित्रों के साथ किये गये युद्ध का है।[1]

कुमारगुप्त प्रथम ने 'व्याघ्र – बल – पराक्रम' उपाधि धारण की जिसका अर्थ है चीते की शक्ति और पराक्रम वाला। इसका यह अर्थ निकला है कि कुमारगुप्त प्रथम ने नर्मदा से पार चीतों से भरे प्रदेश को हस्तगत करने की चेष्टा की। कुमारगुप्त प्रथम ने त्रैकुटक मुद्रा से मिलते सिक्के चलाये। इन सिक्कों से अनुमान लगाया गया है कि कुमारगुप्त प्रथम ने उस दिशा में कुछ प्रदेश विजित किए।

"कुमारगुप्त के राज्य को प्रायः महत्वशून्य समझा जाता है। लेकिन उसके चरित्र और कार्यो का ठीक मूल्यांकन करते समय हमें उन महत्वपूर्ण विवरणों को उपयुक्त महत्ता देनी चाहिए। उस समय के अनेक अभिलेखों में केवल एक सैनिक अभियान का उल्लेख है, जो उसके राज्य काल के अन्त में भेजा गया। इसके अतिरिक्त अरब सागर से बंगाल की खाड़ी तक उसकी अपनी देख–रेख में एक शान्तिमय और सुस्थिर प्रशासन का पता चलता है। इतने बड़े साम्राज्य को केवल एक सशक्त और उपकारी शासक ही इस प्रकार नियंत्रण से रख सकता था। उसकी मृत्यु के शीघ्र पश्चात ही हूणों तथा अन्य शत्रुओं की पराजय से राज सेना की कुशलता का प्रमाण मिलता है।[2] कुमारगुप्त के लिये यह श्रेय की बात थी, कि लगभग 40 वर्ष तक शान्तिपूर्ण समय में भी राज सेना को सुरक्षित रखा गया । यह असम्भव नहीं कि आधुनिक इतिहासकार कुमारगुप्त के प्रशासन और व्यक्तिगत को जितना श्रेय प्रदान करते हैं, उससे अधिक श्रेय उसे देना चाहिए।

---

4. *'विष्णु पुराण ' में 'पुष्यमित्र' नामक एक जाति का उल्लेख है।*
5. *'कल्प सूत्र' में 'पुष्यमितक कुल का उललेख है।*
6. *पुराणों में ''पुण्यमित्रों'' को नर्मदा के स्त्रोत के निकट मेकल प्रदेश से संबंधित किया है।*

---

1. मुखर्जी आर.के. गुप्त एम्पायर पृ. 65–66
2. महाजन, विद्याधर, प्राचीन भारत का इतिहास पृ. 55–59

# कुमारगुप्त प्रथम के पश्चात उत्तराधिकार की समस्या

कुमारगुप्त प्रथम के पश्चात् उत्तराधिकार की समस्या काफी जटिल है। स्मिथ, पन्नालाल, रायचौधरी तथा अन्य विद्वानों का विचार था कि स्कन्दगुप्त ही कुमारगुप्त प्रथम का तात्कालिक उत्तराधिकारी था। किन्तु कुमारगुप्त की भिटारी मोहर के अनुसार, पुरूगुप्त कुमारगुप्त प्रथम का पुत्र तथा उत्तराधिकारी था। समस्या केवल यह है, कि पहले पुरूगुप्त ने राज्य किया या स्कन्दगुप्त ने। हॉनल, एलन, स्मिथ और रायचौधरी जैसे विद्वानों का विचार है, कि स्कन्दगुप्त निस्सन्तान मर गया और उसके बाद उसका भाई या वैमात्रेय भाई पुरूगुप्त राजा बना। डी.आर. भण्डारकार जैसे विद्वानों ने पुरूगुप्त को स्कन्दगुप्त ही माना है। कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार पुरूगुप्त और स्कन्दगुप्त ने साम्राज्य का विभाजन कर लिया। बसक का मत है, कि कुमारगुप्त प्रथम की मृत्यु के पश्चात् साम्राज्य को दो भागों में विभाजित कर दिया गया। एक शाखा में स्कन्दगुप्त, कुमारगुप्त द्वितीय, बुधगुप्त, और भानुगुप्त थे। और दूसरी शाखा में पुरूगुप्त नरसिंहगुप्त और कुमारगुप्त तृतीय थे। एलन को एक अन्य शाखा में भी विश्वास था जो भिटारी मुहर द्वारा निश्चिवत वंशावली वाली शाखा के समानान्तर चलती थी। डा. आर.डी. मजूमदार को भी यह सन्देह हुआ कि गुप्त राजवंश की दो शाखाएं बन गई जो बुद्धगुप्त के साथ एक हो गई।

1. कुमारगुप्त द्वितीय के पश्चात् गुप्त साम्राज्य के विभाजन के सम्बन्ध में आर. जी. बसक का विचार है कि स्कन्दगुप्त सारनाथ अभिलेख के कुमारगुप्त द्वितीय का उत्तराधिकारी था और उसके बुद्धगुप्त राजा बना, जो ऐरण अभिलेख तथा दामोदरपुर ताम्रपत्रों का बुद्धगुप्त है। बुद्धगुप्त का उत्तराधिकारी भानुगुप्त था। बसक के अनुसार स्पष्ट है, कि पुर (?) गुप्त से चलने वाली गुप्त वंश की शाखा सारनाथ अभिलेख और दामोदरपुर पत्रों द्वारा स्थापित वाली शाखा के समान्तर चलती थी।

2. डा. मजूमदार के अनुसार भिटारी स्तम्भ अभिलेख के अनुसार स्कन्दगुप्त कुमारगुप्त प्रथम का उत्तराधिकारी था। स्कन्दगुप्त के बिहार शिला स्तम्भ अभिलेख में स्कन्दगुप्त को तथा कुमारगुप्त की भिटारी मुहर के स्कन्दगुप्त तथा पुरूगुप्त दोनों को ही कुमारगुप्त के प्रति 'तत्पादानुध्याता' कहा गया है। इस प्रकार पुरूगुप्त तथा स्कन्दगुप्त एक है।"[1]

---

1. महाजन, विद्याधर, प्राचीन भारत का इतिहास पृ. 60–63

यह भी कहा गया है। कि परमार्थ के विक्रमादित्य का, जो वसुबन्धु का आश्रय दाता था, तककुशु ने स्कन्दगुप्त बताया है, और उसका युवराज बालादित्य पुरूगुप्त का पुत्र नरसिंहगुप्त ही था। इस प्रकार स्कन्दगुप्त और पुरूगुप्त एक ही सिद्ध होते है।

3. एन.के. भट्टसाली का मत है, कि स्कन्दगुप्त के पश्चात् सारनाथ अभिलेख में कुमारगुप्त राजा बना और उसके बाद लगभग 476 ई. में बुद्धगुप्त सिंहासनारूढ़ हुआ।

4. पन्ना लाल का विचार है, कि स्कन्दगुप्त का राज्य 467 ई. में समाप्त हुआ और उसके बाद पुरूगुप्त (467—69) नरसिंह गुप्त (469—73) कुमार गुप्त द्वितीय (473—77) और बुद्धगुप्त राजा बने।

5. बी.सी. सेन का कथन है, कि इन विषम कल्पनाओं के बीच में कुमारगुप्त के उत्तराधिकारियों के विषय में प्राप्त सामग्री के साथ पन्नालाल का विचार ही सर्वाधिक संगत है, कि पुरू (?) की शाखा ही स्कन्दगुप्त उत्तराधिकारी बना।

6. डा. वी.पी. सिंन्हा ने अपनी महान कृति मगध साम्राज्य का पतन में यह विचार प्रस्तुत किया, कि यद्यपि स्कन्दगुप्त कुमारगुप्त प्रथम का पुत्र था। तथापित वह महादेवी का नहीं दूसरी रानी का पुत्र था। कुमारगुप्त प्रथम तथा महादेवी के पुत्र या पुत्रों के सम्मुख स्कन्दगुप्त के सिंहासन प्राप्त करने का कोई वैध अधिकार नहीं था। सिंहासन पर उत्तराधिकार के लिए वैध अधिकार की अनुपस्थिति के कारण ही कुमारगुप्त प्रथम को कभी 'पादानुध्याता' नहीं कहा गया है। पुरूगुप्त की माता महादेवी अनन्तदेवी थी और स्कन्दगुप्त की माता का नाम सम्भवतः देवकी था। यह कल्पना करना स्वाभाविक है, कि कुमारगुप्त प्रथम की मृत्यु के पश्चात वही राजा बना होगा, लेकिन उसके अधिक योग्य सौतेले भाई स्कन्दगुप्त ने शीघ्र ही उसे सिंहासन से उतार दिया।

## स्कन्दगुप्त 455—467 ई.

स्कन्दगुप्त और हूण आक्रमणों के सम्बन्ध में अधिकांश सामग्री भिटारी स्तम्भ अभिलेख से प्राप्त होती है। भिटारी गांव गाजीपुर जिले में सैयदपुर से पांच मील

---

*"आर्य मंजुश्री मूलकल्प" के अनुसार महेन्द्र या कुमारगुप्त प्रथम के पश्चात सकर या स्कन्दगुप्त राजा बना। स्कन्दगुप्त के बाद बालादित्य राजा बना। पुरूगुप्त के पश्चात नरसिंह बालादित्य राजा बना इसलिये स्कन्दगुप्त और पुरूगुप्त एक ही व्यक्ति के दो नाम है।"*

उत्तर पूर्व की ओर स्थित है। गांव से बहार लाल पत्थर का एक स्तम्भ और उस पर उन्नीस पंक्तियों का एक लम्बा अभिलेख है, और उसका अधिकांश भाग अब भी सुरक्षित है । इसी अभिलेख से ज्ञात होता है, कि अपने पिता के समय में अपने वंश का भाग्य पुनः स्थापित करने के लिये हूणों के साथ युद्ध में स्कन्दगुप्त ने एक रात जमीन पर गुजारी।

' जिसने अपने परिवार के ग्रस्त भाग्य को जगाने के लिये एक रात जमीन पर गुजारी और पुष्यमित्रों को परास्त करके जो बहुत धनवान और शक्तिशाली बन गये थे उनके राजा के ऊपर अपना बांया पैर रखा।[1]

जूनागढ़ शिलालेख से ज्ञात होता है, कि "इस प्रकार सारी पृथ्वी को विजित करके और शत्रुओं का अभिमान भंग करके सभी प्रान्तों में गर्वनर नियुक्त करके साम्राज्य की व्यवस्था करने में जुट गया और नव विजित सौराष्ट्र प्रदेश के प्रशासन के लिये उपयुक्त कर्मचारी ढूढ़ने के लिये उसे बहुत सोच विचार करना पड़ा। पर्णदत्त को इस प्रदेश का राज्य करने के लिये नियुक्त किया।

कहा गया है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के समय की बनाई गई सुदर्शन झील स्कन्दगुप्त के समय में 450 ई. में टूट गई और उसने उस झील को फिर से ठीक करवाया। वह अपने नगर के सुख के लिये सदैव तत्पर रहता था। उसने बांध की मरम्मत करवाई। यह बांध एक सौ हाथ लम्बा और 68 हाथ चौड़ा था और उसकी ऊँचाई सात आदमियों के बराबर थी।

स्कन्दगुप्त ने धार्मिक सहिष्णुता की नीति का अनुसरण किया। स्कन्दगुप्त स्वयं भागवत या कृष्ण विष्णु का उपासक था, किन्तु उसने अपने कर्मचारियों तथा प्रजाजनों के धर्म में हस्तक्षेप नहीं किया भगवान गोविन्द के उपासक के रूप में गिरिनगर में एक मन्दिर बनवाया। बिहार स्तम्भ अभिलेख में एक प्रसंग है, कि मन्दिरों के एक चक्र का निर्माण किया जो स्कन्द देवता और ब्राह्मी, महेश्वरी,

---

*जिसने अपनी सेनाओं से (अपनी) वंशावली को (पुनः) स्थापित किया। जिसे लगभग उन्मूकित कर दिया था। ........ (और) अपनी दो भुजाओं से पृथ्वी को अधिकार में किया (और) कष्ट में फंसे लोगों पर दया की। (लेकिन) घमण्डी, अक्खड नहीं बना। यदपि उसकी शक्ति दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। (और) जिसको भाटों ने अपने गीतों तथा प्रसन्नता से सम्मानित किया।*

*जिसने हूणों के साथ घमासान युद्ध करके भंवर (जैसा आन्दोलन) उत्पन्न करके अपनी दो भुजाओं से पृथ्वी को कम्पित कर दिया।*

---

1. श्रीवास्तव के.सी. प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति पृ. 458–461

कौमारी, वैष्णावी, महेन्द्री, वाराही, चामुण्डा, चण्डी और चार्चिका नामक दैवी माताओं की उपासना के लिये बनवाये गये थे सविता या सूर्य के एक मन्दिर का निर्माण दो क्षत्रिय व्यापारियों ने करवाया। काहौम स्तम्भ अभिलेख में एक उल्लेख है कि ब्राह्मणों के प्रति आसक्त एक व्यक्ति ने जैन मूर्तियां बनवाई।[1]

धनुर्धर प्रकार, राजा तथा लक्ष्मी प्रकार और घुड़सवार प्रकार चांदी के सिक्के पश्चिम और मध्य भारत में प्रचलित थे। कुमारगुप्त प्रथम के राज्य के अन्तिम वर्षो में सोने और चांदी के सिक्कों के भार में कमी आ गई थी, उसे स्कन्दगुप्त ने फिर पूरा करा दिया। किन्तु हूण युद्ध के पश्चात उसे सोने और चांदी के साथ मिश्रित धातु का प्रयोग करना पड़ा।

'आर्य मजुश्रीमूलकल्प' में दी गई जानकारी के आधार पर स्कन्दगुप्त को 'श्रेष्ठ', 'बुद्धिमान' और 'धर्म वतसल राजा कहा जाता है।

डा. जायसवाल स्वयं भी उसे सबसे महान् गुप्त सम्राट मानते हैं। एशिया और यूरोप में वही एकमात्र नायक था जिसने हूणों को उनके उद्‌भव के समय परास्त किया। उस समय वह युवक था।[2]

## स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकारी

पुरूगुप्त 467–73 "डा. रायचौधरी का मत है, कि स्कन्दगुप्त की मृत्यु के पश्चात गुप्त साम्राज्य का पतन आरम्भ हो गया। स्कन्दगुप्त के निकटतम उत्तराधिकारी उसका भाई पुरूगुप्त था। जिसने 467 ई. से 473 ई. तक राज्य किया। वह कुमारगुप्त प्रथम और उसकी रानी अनन्त देवी का पुत्र था। सिंहासनारोहण के समय पुरूगुप्त अवश्य वृद्ध पुरूष रहा होगा। इसलिये इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं, कि लगभग छः वर्ष राज्य करने के बाद ही उसका स्वर्गवास हो गया। उसकी रानी का नाम विभिन्न विद्वानों ने 'श्री वत्सदेवी', 'श्री वैन्यदेवी' और ' श्री चन्द्रदेवी' पढ़ा। वह नरसिंह बालादित्य की माता थी।

---

1. *चन्द्रगुप्त द्वितीय ने देवगुप्त उपाधि धारण की थी और उसे देवगुप्त प्रथम भी कहा जाता है।*
2. *विष्णुगुप्त प्रथम भिटारी मुहर में उल्लिखित कुमारगुप्त द्वितीय का पुत्र था। उसने सम्भवत 510–554 की अवधि में कुछ समय तक राज्य किया।*

---

1. सत्य केतु विध्यालंकार, भारत का सांस्कृतिक इतिहास पृ. 152–153
2. पाण्डे आर.एन. प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास पेज. 230–231

पुरूगुप्त ने केवल एक प्रकार से सोने के सिक्के चलाय जो धनुर्धर प्रकार के थे, पुरूगुप्त महान बौद्ध प्रचारक वसुबन्धु से भी सम्बन्धित रहा। कहा गया है, कि उसने वसुबन्धु को अपनी रानियों तथा युवराज बालादित्य का गुरू नियुक्त किया था। उसके राज्य में गुप्त साम्राज्य का ह्रास हुआ। सौराष्ट्र पर उसका अधिकार सुदृढ़ नहीं था। पुरूगुप्त के चांदी के सिक्के नहीं थे क्योंकि सौराष्ट्र पर इसका अधि ाकार नहीं था वहां उन सिक्कों की आवश्यकता थी।[1]

## नरसिंह बालादित्य 472 ई.

डा. राय चौधरी मानते है, कि पुरूगुप्त के पश्चात् सम्भवत उसका पुत्र नरसिह बालादित्य राजा बना। उसका तादाम्य उस बालासदित्य से स्थापित किया गया है। जिनके विषय में ह्नोनसांग ने कहा है कि उसने मिहिरकुल को कैद किया डा. रायचौधरी बताते हैं, कि मिहिरकुल पुरूगुप्त का पुत्र नहीं बल्कि एक अन्य व्यक्ति था।[2]

## कुमारगुप्त द्वितीय 473–476 ई.

नरसिंह गुप्त बालादित्य के पश्चात् उसकी रानी मित्रदेवी से उत्पन्न पुत्र कुमारगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य राजा बना। भिटारी मुहर के कुमारगुप्त द्वितीय थे धनुर्धर प्रकार के कुछ सिक्कों में वर्णित विक्रमादित्य माना गया है। उसने न केवल धनुर्धर प्रकार के सिक्के चलवाये बल्कि वह महाराज हस्तिन् को अपना सामन्त मानता था।

सारनाथ बुद्ध मूर्ति पर अंकित अभिलेख में गुप्त संवत् का वर्ष 154 दिया गया है जो 473 ई. के बराबर है कुमारगुप्त द्वितीय का राज्य 476–77 ई. के लगभग समाप्त हुआ।

## बुद्धगुप्त 477–495 ई.

"बुद्धगुप्त ने 477 ई. 495 ई. तक लगभग 20 वर्ष तक राज्य किया कई अभिलेखों में उसका वर्णन पाया जाता है । उनमें से एक अभिलेख में बुद्धगुप्त को 'परमदेवता परमभट्टारक महाराजधिराज श्री पृथ्वीपति' कहा गया है। 484 ई. के ऐरण से प्राप्त एक अभिलेख में महाराज सुरश्मिचन्द्र को बुद्धगुप्त के सामन्त के रूप में

---

*'आर्यमंजुमूलकल्प' में कहा गया है कि बालादित्य और उसके उत्तराधिकारी कुमार गौड़ (उत्तरी बंगाल का पश्चिमी भाग) सहित 'पूर्व देश (पूर्वी भारत ) तक राज्य किया।*

---

1. मनराल पी.डी. प्राचीन भारत का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास प. 365–366
2. दिनकर,, आर.एन. सिविलाइजेशन ऑफ द गुप्ता एज पृ. 123

कालिन्दी तथा नर्मदा के बीच राज्य करते बताया गया है। बुद्धगुप्त ने चांदी के सिक्के चलाए जिन पर उसके नाम के साथ उसकी उपाधि 'अवनीपति' दी गई।"[1]

## तथागतगुप्त और बालादित्य गुप्त

ह्वेनसांग की जीवनी के अनुसार बुद्धगुप्त के पश्चात तथागुप्त राजा बना। वह सम्भवतः वैन्यगुप्त सम्बन्धित था। तथागतगुप्त के पश्चात् बालादित्य द्वितीय राजा बना। इस समय में गुप्त वंश की प्रभुता को हूण नेता तोरमान ने मध्य भारत में चुनौती दी। बालादित्य तोरमान और मिहिरकुल को बन्दी बनाने में सफल हुआ था। डा. राय चौधरी के अनुसार 'बालादित्य एक 'विरूद्ध' या 'गौरवशाली' भानुगुप्त, सारी पृथ्वी पर सबसे अधिक वीर पुरूष, एक महान राजा, पार्थ – सम' की गौण उपाधि थी। मध्य भारत के कुछ भागों से हूणों को पूर्णतः खदेड़ दिया गया था।

## कृष्णगुप्त, हर्षगुप्त और जीवितगुप्त प्रथम

"डा. राय चौधरी के अनुसार कि कुमारगुप्त तृतीय और उसके तीन उत्तराधिकारी कृष्णगुप्त, हर्षगुप्त, तथा जीवितगुप्त को 510 ई. और 554 ई. के बीच रखना होगा। 510 ई. भानुगुप्त की तिथि है, और 554 ई. ईषानवर्मा की तिथि है। कृष्णगुप्त के विषय में लगभग कुछ भी ज्ञात नहीं है। एक अभिलेख में उसे वीर पुरूष बताया गया है। जिसने सिंह की तरह अपनी भुजाओं से अभिमानी शत्रुओं के हाथियों के माथों को खरोंच दिया और असंख्य शत्रुओं पर अपने पराक्रम से विजय प्राप्त की। उसने यशोधर्मन के विरूद्ध भी युद्ध किया। जीवितगुप्त प्रथम देवश्री हर्षगुप्त का उत्तराधिकारी था।"[2]

## कुमारगुप्त तृतीय

" जीवित गुप्त प्रथम के पश्चात कुमारगुप्त तृतीय राजा बना। उसे बहुत सी कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। गौड़ों, आन्ध्राों तथा शूलिकों ने विद्रोह कर दिया। उसने आन्ध्रों शूलिकों तथा गौड़ों पर विजय का दावा किया। सर्वप्रथम उसने 'महाराजधिराज' उपाधि धारण की। सम्भवतः इसलिये कुमारगुप्त तृतीय के साथ उसका संघर्ष हुआ। यह भी बताया गया है, कि कुमारगुप्त तृतीय की दाह क्रिया प्रयाग में की गई जो उसके सम्राज्य का एक भाग था।"[3]

---

1. गोयल, श्रीराम, गुप्त साम्राज्य का इतिहास पृ. 517–18
2. वही पृ. 519–520
3. गुप्त,पी.एल. द इम्पीरियल गुप्ताज पृ. 316–318

## दामोदर गुप्त

कुमार गुप्त तृतीय के पश्चात् दामोदर गुप्त राजा बना। उसने मौखरियों के साथ युद्ध किया और अन्त में वह स्वर्गवासी हुआ। "शान के साथ आते हुये शक्तिशाली हाथियों की पंक्ति को विच्छिन्न करके जिन्हें 'मौखरियों' में हूणों की सेना को कुचलने के लिये छोड़ा था, वह मूर्छित हो गया (और युद्ध में उसकी मृत्यु हो गई)।

## महासेन गुप्त

"दामोदर गुप्त के बाद उसका पुत्र महासेन गुप्त राजा बना। सम्भवतः यही वह मालवा नरेश है, जिसका नाम बाण कृत 'हर्षचरित्र' में दिया गया है। कुमारगुप्त और माधवगुप्त को उनके पिता ने राज्यवर्धन और हर्षवर्धन से मिलने के लिये भेजा। महासेनगुप्त की मित्रता के कारण मौखरियों का भय रहा हो।

## देवगुप्त द्वितीय

महासेन गुप्त के पश्चात देवगुप्त द्वितीय राजा बना। दो अभिलेखों में कहा गया है, "कि दुष्ट घोड़ों से तुलना किए जाने वाले राजाओं में देवगुप्त द्वितीय सर्वाधिक प्रसिद्ध था। उन सबको राज्यवर्धन ने दण्ड दिया।" देवगुप्त द्वितीय ही मालवा नरेश था, जो गृहवर्मा मौखरी के वध के लिये उत्तरदायी था और जो स्वयं राज्यवर्धन द्वारा परास्त हुआ। देवगुप्त द्वितीय सम्भवतः महासेनगुप्त का ज्येष्ठ पुत्र था और कुमारगुप्त तथा माधवगुप्त का बड़ा भाई था।"[1]

## माधवगुप्त

देवगुप्त द्वितीय के पश्चात् माधवगुप्त राजा बना जो महासेनगुप्त का छोटा पुत्र था। वह हर्षवर्धन का अधीनस्थ मित्र बना रहा। वह हर्षवर्धन के दरबार में भी रहा।

## आदित्यसेनः

माधवगुप्त के पश्चात आदित्यसेन राजा बना, जिसमें विशिष्ट पराक्रम और

---

*अफ्साड अभिलेख के अनुसार 'सुयोग्य सुस्थितवर्मा पर विजय प्राप्त करने वाले महासेनगुप्त की महान कीर्ति का गान अब भी लौहित्य नदी के तटों पर किया जाता है।*

---

1. सरला–कौशल, गुप्ता सिविलाइजेशन पृ. 224–225

योग्यता थी। उसने कई अश्वमेघ तथा अन्य यज्ञ किए। उसने गौड़ों तथा मौखरियों से अपने सम्बन्ध पुनः स्थापित किये। एक गौड़ सरदार सूक्ष्मशिव को अपनी सेवा में लिया। एक मौखरी सरदार भोगवर्मा, सम्भवतः उसका अधीनस्थ मित्र बन गया। आदित्यसेन ने महाराजाधिराज तथा परमभट्टारक उपाधियाँ धारण की। एक अभिलेख से ज्ञात होता है, कि आदित्यसेन 672–73 ई. में भी राज्य कर रहा था।

## देवगुप्त तृतीय, विष्णु गुप्त द्वितीय

आदित्यसेन के पश्चात् उसका पुत्र देवगुप्त तृतीय राजा बना। उसके बाद उसका पुत्र विष्णुगुप्त द्वितीय राजा बना। जीवितगुप्त द्वितीय गुप्त वंश का अन्तिम शासक था। इन सब राजाओं ने राजसी उपाधियाँ धारण की। सम्भवतः गौड़ों ने अन्तिम रूप से गुप्त साम्राज्य को समाप्त किया। गौंड अत्यधिक बलशाली हो गये थे। कन्नौज के राजा यशोवर्मा के समय मगध के सिंहासन पर एक गौंड राजा आरूढ़ था।

गुप्त वंश के गौंड, शासक बारहवीं तथा तेरहवीं शताब्दी तक राज्य करते रहे। इस प्रकार धीरे–धीरे गुप्त वंश लुप्त हो गया।

## अध्याय – 2

# प्रारम्भिक पौराणिक साहित्य में वर्णित वैष्णव धर्म

# अध्याय – 2

# प्रारम्भिक पौराणिक साहित्य में वर्णित वैष्णव धर्म

साहित्य स्रोतों में सर्वप्रथम पुराण उल्लेखनीय है। भविष्य वाणी की शैली में लिखित पुराणों को इतिहास कारों ने पहले कपोलकल्पित घटनाओं का संग्रह मानकर उन्हें अश्रद्वेय घोषित कर दिया था, परन्तु विद्वान अब क्रमशः उन्हें ऐतिहासिक मान्यता देने लगे हैं। पुराणों के अनुसार उनका पाचवां लक्षण 'वंशानुचरित' 'राजवंश वर्णन' हुआ करता था। गुप्त वंशीय इतिहास की संरचना की दृष्टि से विष्णु पुराण, वायु पुराण तथा ब्रह्माण्ड पुराण निश्चित रूप से उपयोगी प्रमाणित हुए है। इनके द्वारा गुप्तों के प्रारंभिक इतिहास एवं उनकी आदि राज्य सीमा के ज्ञान लाभ में सहायता उपलब्ध होती है, तथा साथ ही समाज एवं संस्कृति के विविध पक्षों पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार इक्ष्वाकु नामक सक पराक्रमी एवं धार्मिक नरेशों को अलम्बुषा नामक अप्सरा के गर्भ से विशाल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। इसी प्रतिभा सम्पन्न सम्राट ने विशाला (वैशाली) की नींव डाली थी। 'विष्णु पुराण, वायु पुराण' में भी विशाल को ही इस नगर का जन्मदाता स्वीकार किया गया।[1]

## पुराणों में विष्णु

ब्राह्मण धर्म त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव) में ब्रह्मा को प्रथम स्थान दिया गया है। पौराणिक युग में त्रिदेवों की मान्यता के पीछे सृष्टि के उद्‌भव और प्रलय की बातों का विचार किया गया था। देवता से ही स्फुरित होकर जगत प्रलय काल में उन्हीं में मिल जाता है। ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव में से कौन पुज्यतम् है, इस समस्या का समाधान पौराणिक काल में ही हो गया था। साधारणतः विष्णु को सर्वोच्च देव मान लिया गया (पद्म पुराण उत्तर खण्ड अध्याय 282 भागवत् 10,89,15 में विष्णु की श्रेष्ठता का उल्लेख है। विष्णु पुराण के अनुसार भगवान् ब्रह्मा रूप से विश्व की रचना करते हैं। विष्णु रूप पालन करते हैं तथा शिव रूप से संहार करते हैं। वायु पुराण में त्रिदेवों के पारस्परिक सम्बन्ध की मनोरम गाथा मिलती है। इसके अनुसार प्रलय काल में केवल एक देव विष्णु की ही सत्ता रहती है।

---

1. राय यू.एन. गुप्त 'सम्राट और उनका काल' पृ. 31।

वैदिक साहित्य में इस देवता के विभिन्न रूप का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद केदशम मण्डल तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में ब्रह्मा को प्रजापति कहा गया है। मन्त्रों में यह सभी जीवों का उत्पादक के रूप में उल्लखित है तथा उसे पालक भी कहते है शतपथ ब्रह्मामण में प्रजापति (ब्रह्मा) ने मत्स्य, कच्छप, वराह का रूप धारण किया था। किन्तु महाभारत तथा पौराणिक युग में ब्रह्मा तथा शिव दोनों ही परमात्मा (विष्णु) में विराजमान है, त्रिदेवों में विष्णु को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। अतः इस पुराण में ब्रह्मा के द्वारा विष्णु के पद प्रक्षासन का उल्लेख है। यही जल गंगा जल के रूप में प्रवाहित हुआ जिससे शिव ने अपने मस्तक में धारण किया था।[1]

## देव विष्णु

देव विष्णु को महत्वपूर्ण स्थान मिला जो वैदिक युग से आज तक समाज में श्रद्धा एवं भक्ति सहित पूजित होते हैं। मानव की धार्मिक भावना तथा भक्ति के प्रदर्शन निमित्त ही विष्णु की प्रतिमा तैयार की गई। वैदिक युग से वर्तमान काल तक विष्णु के स्वरूप में एक रूपता नहीं मिलती। वैदिक देवताओं में विष्णु की प्रमुखता है, तथा विष्णु सौर देवता माने गए हैं। संसार को रश्मियों द्वारा व्याप्त करने के कारण सूर्य विष्णु के नाम से अभिहित होता है। इसी कारण हम आज भी सूर्य नारायण कह कर सूर्य देव को सम्बोधित करते हैं। ऋग्वेद का कथन है, कि विद्धान विष्णु के परमपद को आकाश में वितत सूर्य के समान देखते है।

वैदिक संहिता में विष्णु सम्बन्धी सब से महत्वपूर्ण घटना तीन डगों का मापना समझते हे। उसी में समग्रह संसार को विष्णु ने नाप लिया। इस विशिष्टता का प्रतिपादक यह मंत्र नितांत प्रसिद्ध है।

इस मंत्र की व्याख्या विभिन्न रूप से की जाती है। विष्णु के तीन क्रम का सम्बन्ध तीनों लोक पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा आकाश से है। दूसरे मत में तीन डगों का सम्बन्ध सूर्य की दैनदिन परिक्रमा उदय स्थान मध्य बिन्दु तथा अन्तस्थान से है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है, कि विष्णु का तृतीय पद आकाश में ऊँचे पर स्थित है।

---

*ततश्चालम्बुषा नाम वराप्सरास्तृणविन्दु भेजे !*
*तस्यामप्यस्य विशालों यज्ञेयः पुरी विशालां निर्मसे*
*विष्णु पुराण 4,1,4,9*

*तद्र विष्णोंः परम पदं सदा पश्यन्ति सूरयः*
*ऋग्वेद 1,22,20*

*इदं विष्णुविचक्रमें त्रेधानिदधे पदम् समूठमस्य पांसुरे ऋग्वेद–1,22,17*
*शतपथ (4,2,11) तथा तैतरीय ( ) 7,15*

---

1. मित्र, लाल राजेन्द्र, वायुपुराण, पृष्ठ 24–30

परमपद सूर्य रश्मियों के सृदश ऊँचाई पर से चारों ओर चमकता है, इन्हीं मन्त्रों के आधार पर अवान्तर कालीन वैष्णवमत के अनेक सिद्धान्त अवलम्बित है।[1]

यज्ञ संस्था विकास क्रमशः होता गया, और विष्णु की एकता यज्ञ के साथ इतनी घनिष्ट हो गई (यज्ञों वै विष्णुः) कि समस्त देवताओं में विष्णु श्रेष्ठ तथा पवित्रतम देव स्वीकार किये गये। इस प्रकार वैदिक साहित्य के अनुशीलन से स्पष्ट हो जाता है, कि पुराणों में वर्णित विष्णु अवतारों की कथा वेदों से ली गई है।

शनपथ (4,2,11) तथा तैतरिय (7,15) ब्रह्माण में वामन, वराह, एवं मत्स्यवतार के कथानक मिलते हैं। शतपथ ब्राह्मण में देव तथा असुरों में यज्ञ भूमि के लिये विवाद का वर्णन आता है। असुरों ने वामन के शरीर के बराबर भूमि देने की वार्ता स्वीकार की। उसी समय वामन पृथ्वी पर लेट गये और शरीर को इतना बढ़ाया कि सारी पृथ्वी ढक गयी।

इसी तरह वाराह तथा मत्स्य का प्रजापति से सम्बन्ध विच्छेद कर विष्णु से जोड़ दिया गया। महाभारत से सर्वश्रेष्ठ तथा मोक्ष का दाता देव, विष्णु को मानव का रक्षक बतलाया है, और कालान्तर में त्रिदेवों – ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश में विष्णु की प्रधानता मान ली गई। अधिकतर लोग विष्णु के पुजारी हो गये। विष्णु मत की प्रधानता का कारण यह भी था कि इसमें तीनों आलौकिक पुरूषों का समिश्रण पाते है। सात्वत् वंशी क्षत्रियों का अगुवा वासुदेव (कृष्ण) माने गए है। जिनसे भागवत धर्म की उत्पत्ति का वृतांत सम्बन्धित हैं। उसमें वासुदेव के साथ वैदिक देवता विष्णु तथा विश्व के परम तत्व नरायण का समिश्रण पाया जाता है। वासुदेव कृष्ण लोगों के आराध्यदेव थे। जिनकी भक्ति से मानव का कल्याण होना था। पांचरात्र ग्रन्थों का कथन है, कि भागवत धर्म से ही सम्बन्ध है। पांचरात्र का सम्बन्ध एकायन शाखा से था तथा इसी मत को कालान्तर में वैष्णव मत (धर्म) का नाम दिया गया जो पांचरात्र या भागवत धर्म के नाम से विख्यात हुआ।[2]

## अवतारवाद

वैष्णमत में अवतारवाद का सिद्धान्त प्रमुख माना जाता है। 'अवतार' शब्द का अर्थ पाणिनि के सूत्र (3,3,120) द्वारा स्पष्ट हो जाता है, जो ऊँचे स्थान से नीचे उतरने की क्रिया का द्योतक है। पुराणों में आविर्भाव शब्द भी इसी अर्थ में प्रयुक्त मिलता है। अवतार की सिद्धि दो दशाओं में मानी जाती है।

---

1. गुप्त मुनि लाल, विष्णु पुराण, पृष्ठ 172–180
2. गुप्त मुनि लाल, विष्णु पुराण, पृष्ठ 110–115

1. रूप का परिवर्तन (अपना रूप त्याग कर कार्य वश नवीन रूप ग्रहण करना)।
2. नवीन जन्म ग्रहण करना

पुराणों तथा इतिहास में अवतार की कल्पना का विकास चार प्रकार से व्यक्त किया गया है।

1. भगवान् अपनी दिव्यमूर्ति की परित्याग कर जन्म धारण करते है।
2. भगवान् एक अंश ही धरातक पर अवतीर्ण होता है।
3. अवतार कार्य भगवान् के अर्ध भाग का विलास है आधीमूर्ति समुद्री शय्या से उठकर कार्य के अनुकूल आर्विभूत होती है।
4. चौथा मत विशेष रूप से विकसित हुआ जिसमें यह व्यक्त किया गया, कि भगवान की मूर्ति का विभाजन चार रूप से होता है। निर्गुण मूर्ति वासुदेव तथा सगुण मूर्ति संकषर्ण प्रद्युम्न तथा अनिरूद्ध के नाम से विख्यात है। जब – जब धर्म की ग्लानि होती है, तथा अधर्म का उदय होता है तब – तब भगवान विश्व में पैदा होते हैं[1] इसी को अवतार कहा जाता है।

ज्ञान का वितरण ही भगवान के अवतार का प्रयोजन है, और जीव का मोक्ष प्रदान करना ही अवतार का मुख्य उद्देश्य है। अवतार की कल्पना का बीज ऋग्वेद संहिता में पाया जाता है। प्रजापति ने ही मत्स्य, कूर्म, वराह का अवतार लिया था, ऐसा शतपथ ब्राह्मण का स्पष्ट कथन है। वराह रूप धारण करने की कथा तैतिरिय ब्राह्मण (1,1,5) में मिलती है। रामायण में भी (रामा. 2,110) वराह अवतार का वर्णन है। कहने का तात्पर्य यह है, कि अवतारों का सम्बन्ध प्रधानता तथा विश्व के रक्षक होने के कारण ये सभी अवतार विष्णु के साथ जोड़ दिये गये हैं। वामनावतार का मूल सम्बन्ध विष्णु से था, जिसकी कथा शतपथ ब्राह्मण (1,2,5,1) में वर्णित है।

भागवत सम्प्रदाय के उदय होने पर बलराम कृष्ण की भक्ति उद्बोधित हुई और तभी अवतारवाद का उत्कर्ष हुआ। वैष्णव ग्रन्थों में वासुदेव कृष्ण का नारायण

---

1. *यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत अभ्युत्थानमधर्मस्य*
*तदात्मान सृजाम्यहम्*
*परित्रणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम् धर्मसस्थापनार्थाय*
*संभवामि युगे–युगे गीता (4,3,4)*

(विष्णु) के साथ ऐक्य स्थापित हो जाने पर पूजा प्रकार का समावेश समाज में हो गया।

## अवतार संख्या

अवतार वाद का सिद्धान्त मान्य होने पर भी अवतार की संख्या सम्बन्धी विचार महाभारत एवं पुराणों में विभिन्न रूप में मिलते है। यों तो अवतारवाद का मौलिक तथ्य गीता की देन है, तथापि एक ही पुस्तक में विभिन्न संख्याएं उल्लिखित है। नारायणीय पर्व (शांति पर्व अध्याय 339) में केवल छः अवतार निदिंष्ट किये गये है। वराह, नरसिंह, वामन, भार्गवराम, दाशरथीराम तथा कृष्ण। इसी अध्याय में (शा. प. 339, 103, 40) दशावतार के नाम मिलते हैं।

जिसमें बुद्ध का अभाव है। साधारणतः स्वीकृत दशावतार का निर्देश पुराणों में उपलब्ध है।

सर्वत्र भगवान् के अवतारों की संख्या का एक सा निर्देश नहीं मिलता यानी मतैक्य नहीं है। श्री भागवत के प्रथम स्कन्दध में अवतारों की संख्या 22 दी है।

साधारणतयाः भगवान के चौबीस अवतार प्रसिद्ध हैं। उपरिलिखित पहले के बाईस नामों में हंस तथा हयग्रीव का नाम द्वितीय स्कन्दध में जोड़ दिया गया है। इस तरह चौबीस अवतार हो जाते हैं। जिनके अध्ययन से ऐसा मालूम पड़ता है, कि अवतारों की गणना (तरल रूप में होने के कारण) घटाई बढ़ाई जा सकती है।

---

*1. पद्म पुराण 6,4,3,13,15*

*2. शान्ति पर्व अध्याय 339*

*3. शतपथ 339, 103,40*

*1. वराह पुराण 4,2,48,17,22*

*2. मत्स्य पुराण 285,286*

*3. अग्नि पुराण 2,16*

*4. नारद वतार*

*5. नारायण*

*6. कपिलावतार*

*7. दत्तात्रेय*

*8. यज्ञ*

*9. ऋषगदेव*

*10 पृथु*

*11. कच्छप*

*12. धन्वन्तरि*

*13. मोहिनी*

*14. नरसिंह*

*15. वामन*

*16. परशुराम*

*17. वेदव्यास*

*18. रामचन्द्र*

*19. बलराम*

*20. कृष्ण*

*21. बुद्ध*

*22. कलिक*

यों तो धार्मिक क्षेत्र में भगवान् के असंख्य अवतार मानते हैं। किन्तु आजकल भगवान् के दश ही प्रचलित अवतार माने जाते है। अग्निपुराण (2,16) का क्रम तथा संख्या वाराह, मत्स्य तथा पद्म पुराणों में भी मिलती है।

अवतारों के नामोल्लेख ईसा पूर्व सहस्रों वर्ष में मिले है। किन्तु इस संख्या का नियमन गुप्त काल से ही हुआ। वास्तव में यह अनुशीलन का विषय है। परन्तु बारहवीं सदी तक तो पूर्णरूपेण दशावतार का नियनन हो चुका था। यही कारण है, कि जयदेव ने 'गीतागोविन्द' के प्रथमसर्ग में इसी दशावतार की स्तुति की और क्षेमेन्द्र ने 'दशावतार चरित्र' महाकाव्यों में अवतारों का विस्तृत चरित निबन्ध किया था।

दशावतार की कल्पना में बुद्ध का समावेश किस समय हुआ यह प्रायः निश्चित नहीं है। परन्तु इसका अनुमान लगाया जा सकता है। अष्टम शती के विद्धान कुमारिल ने तंत्रवार्तिक (जेमिनी सूत्र 1,3,6) में लिखा है, कि पुराणों में धर्म का लोप करने वाले शाक्य गौतम का चरित वर्णित है। क्षेमेन्द्र के (1066 ई.) दशावतार चरित्र में तथा अपरार्क (याज्ञवल्क के टीकाकार 1100 ई.) द्वारा मत्स्य पुराण (अ. 285 श्लोक 7) के उद्धरण में दश अवतारों का नाम स्पष्ट रूप से उल्लिखित है। इन सभी स्थानों पर बुद्ध अवतार के रूप में वर्णित है। अतएव विभिन्न पुराणों में उपलब्ध बुद्ध संवलित दशावतार की कल्पना (मत्स्य, कच्छप, वाराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलराम, बुद्ध तथा कल्कि) एकादश शती तक स्वीकृत हो चुकी थी।

सृष्टि के विकास का क्रम लघुकाय जीवों से हुआ आरम्भ होता है। ओर क्रमशः दीर्घकाल प्राणियों में आविर्भूत होता है। सृष्टि की रचना जल से आरम्भ हुई। जिसका प्रतीक मत्स्य है। इसके अनन्तर स्थलीय जीवों का विकास हुआ। जमीन पर रहने वाले प्राणी का प्रतीक वराह (शूकर) माना गया है। विशुद्ध मानव की उत्पत्ति से पूर्व प्राणी में पशुतत्व तथा मनुष्यत्व दोनों का मिश्रण रहता है। वहीं नरसिंह अवतार है। नरसिंह के पश्चात् लघुकाय वामन मानव का प्रतिनिधि है। दशरथी राम हमारे मर्यादा पुरूषोत्तम राम हैं जिसमें हम मानव के जीवन की समग्र मर्यादाओं का विकास पाते हैं। बलराम के ऊपर बल का अधिक आग्रह रखते हैं, तो

---

1. *मत्स्यः कूर्मो पराहश्च नरसिंहोऽथवामन।*
*रामों रामश्चकृष्णश्च बुद्धः कल्किश्र्च ते दशा।*
*अग्नि पुराण (2,16)*

बुद्ध में बल का प्रयोग न होकर करूणा मैत्री एवं कृपा की अधिकता पाते है। इन सभी बातों से एक व्यक्ति दूसरे को अपने वश में कर लेता है।[1]

साहित्य के आधार पर यह कहा जा सकता है, कि विष्णु के आद्य पांच अवतार स्रोत वैदिक साहित्य में मिलता है। अन्तिम दो बुद्ध तथा कल्कि अवतारों का स्रोत वेदों में नहीं है। बीच के तीन परशुराम, राम, कृष्ण या बलराम अवतारों के सम्बन्ध में वेदों में पर्याप्त पोषक सामग्री उपलब्ध नहीं है। महाबलिपुरम् (मद्रास) के एक खंडित लेख में भी निम्न वर्णन मिलता है।

** नरसिंहद्श्च वामन्!

इन सभी आधार पर वर्तमान दशावतार

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | मत्स्यवतार | 2. | कच्छपातार |
| 3. | वराहातार | 4. | नरसिंह वतार |
| 5. | वामनावतार | 6. | परशुरामावतार |
| 7. | रामावतार | 8. | बलरामावतार |
| 9. | बुद्धावतार | 10. | कल्कि |

में बुद्ध की गणना नवम् शती में अश्वयमेव हो चुकी थी। समाज में विष्णु के दस अवतारों की प्रतिमा निर्माण का यही साहित्यिक आधार था। बुद्ध मूर्ति का उल्लेख अग्नि पुराण (49,8) में इस प्रकार से किया गया था, जैसी प्रतिमा गान्धार में निर्मित होती रही।[2]

---

1. *शान्तात्मा लम्बकर्णश्रच गौराङ्ग्श्रचाम्बराकृतः।*
   *ऊर्ध्व पद्य स्थितों बुद्धों वरदाभयदायक।। अग्नि पुराण*

---

1. भाष्यशंकर, विष्णु शहस्त्र नाम, पृष्ठ 206–213
2. भाष्यशंकर, विष्णु शहस्त्र नाम, पृष्ठ 217–218

## 1. वैष्णव धर्म का उद्भव और विकास

वैदिक काल में भारतीय धर्म का स्वरूप भिन्न भिन्न रूप में प्रस्तुत हुआ है। आर्यो ने देवत्व के दर्शन प्रकृति के विभिन्न रूपों में किये थे। जल, वायु, अग्नि, अंतरिक्ष, सरिता आदि सभी देवता के रूप में पूजे जाने लगे। इन्में वरूण जल देवता के रूप में उपासना के केन्द्र बने तथा इन्द्र अन्तरिक्ष के एवं अग्नि पृथ्वी के देवता हुए। सूर्य जगत की आत्मा बने गये।

ऋग्वेद के अध्ययन से ज्ञात होता है, कि अन्य देवताओं के साथ इस काल में यज्ञादि कार्यो के साथ अन्य देवताओं की आराधना एवं स्मरण वर्जित माना गया था। इस प्रकार आर्यो ने सर्वप्रथम आकाश व पृथ्वी की उपासना की, और फिर सूर्य, सविता, अग्नि, सोम, इन्द्र, विष्णु, अदिति और देवताओं की उपासना की। वरूण के लिये ऋग्वेद का सातवां मण्डल भरा पड़ा है। इसमें उपासक की भक्ति भावना उन्मुक्त हो कर बह रही है। वस्तुतः कालान्तर के भक्ति मार्ग का बीज इन्हीं स्रोतों में भरा पड़ा है। भक्ति मूलक वैष्णव धर्म भागवत धर्म का प्राचीनतम आधार ऋग्वेद के वरूण स्रोतों में ही मिलेगा। ऋग्वेद में हमें विष्णु की चर्चा भी विष्णु सूक्त में प्राप्त होती है।[1]

जिसमें विष्णु को संसार का संरक्षक कहा गया है। ऋग्वेद में कहा गया है, कि विष्णु उपासनों की अर्चना सुनकर सदैव आ जाते हैं। ऋग्वेद में विष्णु के तीन पदों का उल्लेख है, जिसमें वह समस्त ब्राह्माण्ड का अतिक्रमण करते हैं। मनुष्य उनके दो पदों को तो देख सकता है, परन्तु तृतीय पद उसकी दृष्टि से बाहर ही है। इस प्रकार वैदिक काल से ही आर्यो के उपासक, अनेक देवी देवताओं की सूची प्राप्त होती है, जिसमें विष्णु का भी नाम मिलता है। ऋग्वेद में तो विष्णु के नाम का उल्लेख कई बार हुआ है।

संस्कृत साहित्य में विष्णु शब्द का बहुत प्रचार देखा जाता है। वेद, उपनिषद, इतिहास, पुराण संहिता और काव्य सभी जगह विष्णु शब्द का विपुल व्यवहार दिखाई पड़ता है। कतिपय विद्वान विष्णु की तुलना वैदिक साहित्य में अनेकशः वर्णित इन्द्र और कुछ विद्वान आदित्य से करते हैं, क्योंकि वे तीन स्थानों में पद

---

1. पाण्डे विमल चन्द्र, प्राचीन भारतीय इतिहास पृष्ठ 125–126

धारण करते हैं, जिसमें प्रथम पद पृथ्वी में, द्वितीय अंतरिक्ष में एवं तृतीय ध्रुवलोक में है। पृथ्वी पर सभी पदार्थों में अग्नि रूप में अन्तरिक्ष में विद्युत रूप में एवं ध्रुवलोक में अवस्थान के समय रहते हैं। और्णावाभ आर्चाय कहते हैं, कि उनका एक पद समारोहण (उदयगिरि) पर दूसरा विष्णु पद पर (मध्य गगन) एवं तीसरा गया सिर (अस्ताचल) पर पड़ा था। और्णावाभ आदि भाष्यकारों ने विष्णु को सूर्य कहा है। तथा कुछ विद्धानों ने सूर्य को ही दूसरे नाम से ऋग्वेद में विष्णु कहा गया है।

वाजसनेय संहिता तथा अन्य संहिताओं के प्रकारान्तर से यही बात कही गई है। इस प्रकार आर्यो के काल में ही विष्णु के नाम का उल्लेख इन्द्र, वरूण, रूद्र, सोम और मरूत के साथ प्राप्त होता है।

ऋग्वेद काल के बाद उत्तर वैदिक काल में इन देवताओं का महत्व घटता बढ़ता दिखाई देता है। जिसमें विष्णु का महत्व प्रजापति और रूद्र के साथ दिखाई देता है। इस काल में इन्द्र, वरूण आदि का महत्व कम हो गया और विरूणु सभी देवताओं में अधिक सम्माननीय और श्रेष्ठ माने जाने लगे।[1]

ऋग्वेद के बाद सामवेद व अन्य वेदों में विष्णु की स्तुति की गई। इसकी महत्ता इतनी बढ़ गई थी, कि प्रत्येक संस्कार मे उसका नाम लिया जाने लगा था। और उसके बिना कोई भी प्रतिस्थापना नहीं होती थी। इन भावनाओं को महाकाव्यों और पुराणों में और भी विकसित किया गया। विष्णु उपासकों के इष्टदेव के रूप में उभर कर सामने आए और लागों ने इष्टदेव की भक्ति और उपासना में ही मुक्ति का मार्ग ढूढ़ा।

धर्म के इस नये रूप में वैष्णव धर्म का नाम ग्रहण कर लिया था। वैष्णव धर्म विष्णु ही जिसके आराध्य देव हों अर्थात जो विष्णु का भजन करते हैं, अतः वैष्णव धर्म के प्रधान देव विष्णु है जिनका वैयक्तिक विकास ही वैष्णव धर्म है। धीरे–धीरे विष्णु के व्यक्तित्व विकास में वासुदेव, नारायण, गोपाल कृष्ण समाहित हो गये तब वैदिक विष्णु तीन नामों को आत्मसात् करते हुये उत्तर भारत के प्रमुख देवता बन गयें है।[2]

उत्तर वैदिक काल में वासुदेव का उल्लेख प्राप्त होता है, तथा इस काल में उसके सम्प्रदाय का भी उदय हो चुका था। वासुदेव के परम मित्र अर्जुन को देवत्व

---

1. ऋग्वेद 6, 69, 6, 99।
2. ऋग्वेद 1, 12, 15, 4।

मिला एवं वासुदेव सम्प्रदाय के अन्तर्गत उसकी भी उपासना होने लगी थी। जिससे वासुदेव के उपासक वासुदेवक तथा अर्जुन के उपासक अर्जुनक कहलाये। इस प्रकार वासुदेव की उपासना प्रारम्भ हो गई जो वैदिक देवता नहीं थे।

महाकाव्य काल में ब्रह्मा सृष्टि का सृजन करता और विष्णु सृष्टि का पालन करता तथा इस प्रकार विष्णु जो वैदिक काल में एक गौण देवता थे, उत्तर दैविक काल में उसकी महत्ता इतनी बढ़ गई कि भारतीय आर्यो के वह एक प्रमुख देवता बन गये। इतना प्रमुख देवता कि किसी भी याज्ञिक अथवा वैवाहिक संस्कारों के समय में विष्णु की प्रतिमा अथवा प्रतीक रखना आवश्यक माना जाने लगा। गुप्तकालीन अनेक ग्रन्थों में वैष्णव धर्म की ही प्रधानता के लक्षण मिलते हैं। विद्वानों ने बहुत से पुराणों को गुप्तकालीन माना है। सर्वविदित है कि पुराणों (समस्त) में वैष्णव पुराणों की अधिकता एवं प्रधानता है। इन सब बातों से स्पष्ट है, कि गुप्त काल में विष्णु तथा उनसे सम्बन्धित वैष्णव धर्म अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच चुका था।[1]

## 2. वैष्णव धर्मः राज्याश्रय प्राप्ति

गुप्त काल में वैष्णव धर्म का पुनरूद्धार हुआ और गुप्तों के संरक्षण में वैष्णव धर्म का खूब प्रचार हुआ। वैष्णव धर्म की प्रबलता हुई, जिसके कारण गुप्तों ने उसी पर ध्यान केन्द्रित किया। गुप्त काल में आते–आते वैष्णव धर्म की महत्ता अधिक बढ़ गई थी और महत्ता बढ़ जाने के कारण गुप्त नरेशों ने वैष्णव धर्म को स्वीकार किया। गुप्त नरेशों के व्यक्तिगत धर्म के रूप में ग्रहण करने के कारण जिस प्रकार अशोक ने बौद्ध धर्म को राज्याश्रय प्रदान किया है। उसी प्रकार गुप्त नरेशों ने भी वैष्णव धर्म को राज्याश्रय प्रदान करने का मूल कारण उसका अपना स्वरूप था, जिसमें सभी प्रकार के लोक विश्वासों का एकीकरण था, उसमें तर्क और बुद्धि की अपेक्षा विश्वास का प्राबल्य था, जो लोगों को अपनी और आकृष्ट करता था। इसमें सभी वर्ग के लोगों की धार्मिक आवश्यकता की पूर्ति होती थी। संक्षेप में वैष्णव भक्ति तत्कालीन सामाजिक दृष्टिकोण के अनुरूप थी।[2] इसी प्रकार वैष्णव धर्म गुप्तकाल का सर्वप्रमुख धर्म था और भागवत धर्म के नाम से प्रख्यात हुआ। गुप्त वंश के अधिकांश राजा इसी धर्म के अनुयायी थे और उन लोगों ने अपने सिक्कों

---

1. वाजसनेयिसंहिता, 5:15
2. पाणिनी 4 : 3 : 98 वासूदेवा र्जुनाम्यां वुन।

तथा अभिलेखों में परम भागवत की उपाधि धारण की। जिसका अर्थ 'विष्णु का परम् भक्त है'

वैष्णव धर्म में विष्णु को गुप्तों ने अपने आराध्य देव के रूप में स्वीकार किया अतः उनके वाहन गरूड़ को भी समान स्थान दिया। गरूड़ विष्णु के वाहन के रूप में महाकाव्य काल के पूर्व नहीं था। महाकाव्य काल में ही वह विष्णु का वाहन माना गया।

गरूड़ को विष्णु का वाहन होने की चर्चा महाभारत में प्राप्त होती है। जिसमें विष्णु ने गरूड़ को वरदान दिया। विष्णु ने गरूड़ को अपना वाहन चुनना चाहा तथा अपने ध्वज के ऊपर स्थित रहने की मांग की। इस प्रकार महा भारत में विष्णु के वाहन होने का प्रमाण प्राप्त होता है। कहीं–कहीं वैष्णव प्रतिमाओं के अभाव में विष्णु का ज्ञान उनके वाहन, प्रतीक आदि से भी होता है। गुप्त अभिलेखों में विष्णु के वाहन के रूप में गरूड़ का उल्लेख तथा गरूड़ की चर्चा भी मिलती है। गुप्त नरेशों ने गरूड़ प्रकार की मुद्राओं का भी प्रचलन किया था। गुप्त नरेशों का राजधर्म वैष्णव था और गरूड़ विष्णु का वाहन है। इसीलिये गरूड़ के चिन्ह को ही गुप्तों के राजचिन्ह के रूप में स्वीकार किया गया जिसका अंकन उनके राजाज्ञापत्र में प्राप्त होता है (समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति से ज्ञात होता) है, कि उनके अधीनस्थ नरेशों ने गरूत्मदंक से अंकित राजाज्ञापत्र की मांग की थी। इससे ज्ञात होता है, कि गरूड़ चिन्ह राज्य चिन्ह था और राजाज्ञा पत्र केन्द्रीय शासन से संबंशित था।

## 3. वैष्णव धर्म के विभिन्न सम्प्रदाय

सम्यक् प्रदीयत इति सम्प्रदायः– गुरूपरम्परा सम्यक् रूप से चली आ रही है और जिसमें गुरू शिष्य को सम्यक रूप से मंत्र आराध्य, आराधना तथा आचार पति प्रदान करता है उसका नाम सम्प्रदाय है। धर्म का पथ विशेष सम्प्रदाय कहलाता है। वैष्णव धर्म इसका अपवाद नहीं है। वैष्णव धर्म का सर्वेक्षण करने पर ज्ञात होता है।

अ. नारायण सम्प्रदाय

ब. वासुदेव सम्प्रदाय

स. वैखानस सम्प्रदाय

द. भागवत सम्प्रदाय

अभिलेखों का मूल उद्देश्य किसी धर्म या सम्प्रदाय की चर्चा करना होता अतः अभिलेखों में भी वैष्णव धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है परन्तु विष्णु के नामों के उल्लेख से गुप्त काल में प्रचलित विभिन्न वैष्णव सम्प्रदाय का अनुमान कर सकते हैं, इन सम्प्रदायों से संबंधित प्रमुख आराध्यदेव का उल्लेख गुप्त अभिलेखों में कहीं–कहीं स्पष्ट एवं कहीं–कहीं पर्यायवाची नाम के रूप में हुआ है इन नामों से उन सम्प्रदायों का ज्ञान भली भांति किया जा सकता है। गुप्त नरेशों के अभिलेखों में नारायण या नारायण सम्प्रदाय का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं होता, परन्तु विष्णु शब्द की कल्पना नारायण शब्द से की जा सकती है।

परिभाषित अर्थ के आधार पर विष्णु को भी हम नारायण मान सकते हैं। ऐसे विष्णु (नारायण) की चर्चा गुप्त नरेशों के अभिलेख में कई स्थानों में प्राप्त होती है।

ब्राह्मण धर्म के प्रतिपादक ग्रन्थों (पुराणों, स्मृतियों एवं उपनिषदों) में नारायण की विशेष चर्चा मिलती है। पुराणों एवं पुराणों से पुरानी उपनिषदों का सर्वेक्षण करने पर यह ज्ञात होता है, कि वासुदेव से भी प्राचीनतर सत्ता नारायण की है। ऋग्वेद में नारायण का उल्लेख मिलता है। श्रीमद्‌भागवत् में नारायण का उल्लेख आधार पर किया गया है, तथा महा भारत में प्रत्येक पर्व के आरम्भ में नर एवं नारायण की स्तुति की गई है। नारायण नाम से ही नारायणोपनिशद की भी रचना प्राप्त होती है। ये सारे तथ्य इस बात के प्रतीक हैं, कि नारायण पर आश्रित वैष्णव सम्प्रदाय बहुत पुराना है।

गुप्त नरेशों ने वैष्णव धर्म को स्वीकार किया था और यही कारण है, कि वे अपने अभिलेखों तथा मुद्राओं में अपने को परमभागवत् कहते हुए पाये जाते है।[1]

क्योंकि गुप्त नरेश वैष्णव धर्मावलम्बी थे। इसलिए वैष्णव प्रतिमाओं का निर्माण इनके काल में प्रचुर मात्रा में हुआ। गुप्त काल से ही इन देवी देवताओं की प्रतिमा के लिये देवालय और मन्दिरों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। कतिपय विद्धानों का मत है कि विष्णु से संबंधित कुछ पुराणों की रचना भी गुप्त काल में हुई थी।

गुप्त काल के आस पास व उसके कुछ पूर्व नारायण, विष्णु, वासुदेव से समन्वित धर्म में एक नये तथ्य अवतारवाद का प्रवेश हुआ और विष्णु के विभिन्न अवतारों की कल्पना की गई।

---

1. हिस्टोरिकल एण्ड लिटेरेचरी इंस्क्रिप्शंस, पृष्ठ 44

गुप्त कालीन अभिलेखों व पुरातात्विक साक्ष्यों से ज्ञात होता है, कि गुप्त काल में भी जिसमें मत्स्यवतार, कूर्मावतार, वाराहवतार, नृसिंहावतार, वामनावतार, परशुरामवतार, रामावतार, कृष्णावतार, बौद्धावतार की दस अवतारों से संबंधित प्रतिमाओं का निर्माण होता था और उपासना भी प्रचलित थी। इसमें कुछ अवतारों की चर्चा गुप्त नरेशों के अभिलेखों में भी प्राप्त होती है, जिससे दस अवतारों की कल्पना की जा सकती है।[1]

नालन्दा विश्वविद्यालय गुप्त काल में कुमारगुप्त ने बनवाया था। वामन, मत्स्य, कूर्म, वराह एवं नृसिंह आदि विष्णु के अवतारों की प्रतिमा भरतपुर राज्य के कमन नामक स्थान से प्राप्त हुई है। इसमें वराह अवतार की प्रतिमा अन्य स्थानों से भी प्राप्त हुई है। उदयगिरि नामक स्थान में वराह अवतार की विष्णु प्रतिमा का चित्रण गुफा नं. 15 में हुआ है, तथा सागर के एरण नामक स्थान में पशु रूप में वराह की एक विशाल मूर्ति प्राप्त हुई है। उसके सारे शरीर में देवी देवता, ऋषि मुनि आदि का अंकन है। यह प्रतिमा गुप्त काल की हैं। यहां से एक विशाल गरूड़ ध्वज भी प्राप्त हुआ है, जो विष्णु मन्दिर के सामने निर्मित किया गया था।[2] अभिलेखों से भी ज्ञात होता है, कि गुप्तकाल में वराह की पूजा व प्रतिमा का निर्माण होता था। कुमार गुप्त के दामोदर ताम्रपत्र2 में वराह के लिये दान की चर्चा प्राप्त होती है। इन सभी से अनुमान किया जा सकता है कि वराह अवतार से संबंधित मूर्तियों तथा मंदिरों का निर्माण गुप्त काल में होता था। विष्णु के राम अवतार की चर्चा भी गुप्त काल के अभिलेखों से प्राप्त होती है।[3]

राम का उल्लेख गढ़वा के अभिलेख3 में चित्रकूट स्वामिन् के रूप में प्राप्त होता है, जो राम के लिये ही संबोधित किया जाता है। अतः उससे राम अवतार की कल्पना की जा सकती है। इस अभिलेख में विष्णु प्रतिमा का उल्लेख है, जो तिथि 148 में उत्कीर्ण किया गया था। और यह समय स्कंद गुप्त के शासन काल का था। राम से सम्बन्धित अनेक प्रतिमाओं का चित्रण गुप्त काल के देवगढ़ के दशावतार मन्दिर व नचना नामक स्थान के मन्दिर में प्राप्त होता है। स्कन्दगुप्त के बिहार अभिलेख में विष्णु को इन्द्र का अनुज कहा गया है, जो वामन अवतार का द्योतक है। इसी प्रकार विष्णु के नृसिंह अवतार से सम्बन्धित विष्णु प्रतिमा उदयगिरि

---

1. गुप्त लेक्चर्स बैनर्जी, पृष्ठ 113
2. वारहं पुराण 10 : 12
3. मत्स्य पुराण 45 : 46

नामक स्थान की गुफा नं. 12 से प्राप्त हुई है जो गुप्त कालीन है एरण में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने विष्णु मन्दिर का निर्माण करवाया था जिसमें एक और नृसिंह एवं दूसरी ओर वराह के मन्दिर का निर्माण हुआ है। इस प्रकार पुरातात्विक एवं अभिलेखिक साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि गुप्तकाल में विष्णु के दस अवतारों से सम्बन्धित मूर्तियों का निर्माण हुआ जो वैष्णव धर्म से सम्बन्धित थी। इसके अतिरिक्त विष्णु की अनेक प्रतिमाओं का भी निर्माण गुप्त काल में हुआ। उदयगिरि की गुफा नं. 3,6 और 19 में निर्मित हुई है। इसी स्थान में विष्णु की 12 फुट लम्बी शेषशायी विष्णु प्रतिमा गुफा नं. 13 में अंकित है। मध्य प्रदेश के कई प्राची नगरों पद्मावती (पावापुर) लुम्बवन (तुमैन), उच्चकल्प (सतना ) श्रीपुर (सिरपुर) का शेषशायी विष्णु भी उल्लेखनीय है।

राजिम में भी विष्णु की अनेक प्रतिमाओं का निर्माण गुप्त नरेशों के काल में हुआ था। इन सब में तुमैन एवं पवाया से प्राप्त विष्णु की प्रतिमा मूर्ति शास्त्र के क्रमिक विकास के अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। विष्णु की मूर्तियाँ इस काल में द्विभुजी, चतुर्भुजी, अष्टभुजी भी बनायी गई है। गदा और चक्रधर विष्णु द्विभुजी है। इस प्रकार की मूर्ति रूपवास (भरतपुर) से प्राप्त हुई है। चतुर्भुजी विष्णु की प्रतिमा उदयगिरि, सिरपुर आदि स्थानों से प्राप्त हुई है, तथा अष्टभुजी विष्णु की प्रतिमा मथुरा क्षेत्र से प्राप्त हुई है। अष्टभुजी विष्णु की खण्डित प्रतिमाएं कदाचित गुप्तकालीन है।[1]

गुप्त काल में चतुर्व्यूह से संबंधित विष्णु प्रतिमा का भी निर्माण हुआ। ये प्रतिमाएं वासुदेव कृष्ण, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरूद्ध इन चार रूपों में प्राप्त होती है। वासुदेव की प्रतिमा चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय की उदयगिरि गुफा से प्राप्त हुई है।

गुप्त काल में विष्णु के वाहन गरूड़ का मानसी रूप में स्वतन्त्र सूर्तन भी मिलती है। एरण में ध्वज स्तम्भ के शीर्ष के रूप में गरूड़ का मानवी रूप में अंकन हुआ है। वहां वे दोनों हाथों से सर्प को पकड़े हुए है एवं सिर के पीछे वक्राकार प्रभामण्डल है। पुरातात्विक एवं आभिलेखिक साक्ष्यों से ज्ञात होता है, कि गुप्त काल में वैष्णव धर्म से संबंधित अनेक मूर्तियों का निर्माण हुआ था।

गुप्त नरेशों के अभिलेखों के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है, कि गुप्त काल

---

1. बैनर्जी डेवलपमेन्ट आफ हिन्दू आइक्नोग्राफी, पृष्ठ 400

में वैष्णव धर्म से सम्बन्धित अनेक मन्दिरों व प्रतिमाओं का निर्माण हुआ। स्कन्द गुप्त के शासन काल में विष्णु की प्रतिमा का निर्माण किया गया। जिसकी चर्चा भीतरी अभिलेख में है, तथा गढ़वा अभिलेख में विष्णु के एक मन्दिर के निर्माण का उल्लेख प्राप्त होता है। अध्येय अभिलेखों में हमें विष्णु के विभिन्न नाम भी प्राप्त होते हैं जिनमें चक्रभृत, आत्मभू, चित्रकूट

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | स्वामिन् | 2. | गदाधर |
| 3. | गोविन्द | 4. | जनार्दन |
| 5. | मधुसूदन | 6. | शाडपाणि |

आदि उल्लेखनीय है। इस प्रकार वैष्णव धर्मावलम्बी गुप्तों के काल में वैष्णव धर्म का प्रचुर मात्रा में प्रचार एवं विकास हुआ तथा अनेक प्रकार की विष्णु प्रतिमाओं का भी निर्माण अनेक क्षेत्रों में हुआ।

## वैष्णव प्रतिमा पूजा विधि

गुप्तकाल में वैष्णव धर्म के राज्याश्रित होने के कारण वैष्णव मन्दिरों के निर्माण, विकास एवं परिवर्धन का प्रयास जारी रहा। गुप्तों के अभिलेखों से इस बात की पुष्टि होती है, कि गुप्त काल के अनेक विष्णु मन्दिरों का निर्माण हुआ। गुप्तकाल में वैष्णव धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों द्वारा विष्णु मन्दिरों में पूजा विधि सम्पन्न की जाती थी, और उसके लिये राजाओं तथा राजपुरूषों द्वारा राजकीय सहयोग ( गांव या दीनार के रूप में) उपलब्ध कराया जाता था।

गुप्त अभिलेखों में अनेक स्थलों पर इस बात की चर्चा की गई है, कि वैष्णवधर्मावलम्बी भक्तजन पूजा के लिये एवं शिक्षागृह से सम्बन्धित ब्राह्मणों के संघ के लिये दान दिया करते थे। भिक्षागृह की स्थापना मन्दिरों में होती थी। वैष्णव मन्दिरों में पूजा विधि को सुचारू रूप से संचालित करने के लिये एक विशेष समिति गठित होती थी।[1]

जिसका मुख्य अधीक्षक कोई विशिष्ट राजकीय अधिकारी होता था। नियमित पूजा विधि में बाधा उपस्थित होने पर जिम्मेदार मठाधीश या मन्दिर पूजकों को या तो दण्डित किया जाता या उन्हें उस पद से हटा दिया जाता था। अभिलेखों में धर्म की शाखा में व्यवधान उपस्थित करने वालें को पांच महापावकों के अपराध का भागी होना बताया गया है।

---

1. भागवत पुराण, पृष्ठ 265, 267

विष्णु पूजा को लोकप्रिय बनाने के लिये मन्दिरों में स्थायी निधि की व्यवस्था की गई थी। उसमें मन्दिरों के लिये द्रव्य दान में (दीनार, भूमिदान) आदि से प्राप्त ब्याज के द्वारा कोष संचित किया जाता था। इस संचित राशि से मंदिरों की व्यवस्था विशिष्ट पर्वो पर सामूहिक उत्सव, नृत्य, प्रदर्शन तथा रथ यात्रा आदि जुलूस की व्यवस्था सम्पन्न होती थीं और उस स्थाई राशि के माध्यम से दैनिक पूजा, भोग, आरती तथा भगवान का श्रृंगार एवं शयन व्यवस्था आदि पूजा कार्य चलाया जाता था। विभिन्न महत्वपूर्ण अवसरों पर तथा राजा के परिवार में या अन्य किसी संभ्रात नागरिक या राजकीय अधिकारी के कुटुम्ब में पड़ने वाले विभिन्न उत्सवों के अवसर पर विष्णु मन्दिरों की सफाई, पुरानी मरम्मत एवं नवीन ध्वजारोहण और यज्ञीय स्तंभ स्थापना का कार्य सम्पन्न होता था।

विष्णु मंदिरों में पूजा के कार्य की स्थिरता एवं लोकप्रियता के लिये नियमित पुजारी तथा महंत या मठाधीश नियुक्त किये जाते थे। छोटे मंदिरों में पुजारी की नियुक्ति होती थी। जिसे नियमित रूप से मासिक वेतन मिलता था, तथा समस्त राजकीय कर से उसे माफ कर दिया जाता था।

इन ब्राह्मण पुजारियों को गांव देने की चर्चा अभिलेखों में प्राप्त होती है। जो सभी प्रकार के करों से मुक्त होते थे। राजकीय धार्मिक सभाओं तथा धार्मिक निर्णयों में यह पुजारी महत्वपूर्ण सदस्य होते थे। उसी तरह बड़े बड़े लोकप्रिय विष्णु मन्दिरों की संचालन व्यवस्था को सुस्थिर बनाने के लिये मंहतों या मठाधीशों की नियुक्ति होती थी। ये महंत या मठाधीश किसी न किसी विद्या में और राज्य संचालन में पारंगत होते थे। कभी–कभी इन ब्राह्मण मठाधीशों को राजा, राजा की माता, सेनापति, प्रधानामात्य या अन्य किसी राजकीय अधिकारी की ओर से पर्याप्त भूमिदान भी मिल जाता था। कभी राजा की ओर से मन्दिरों की स्थाई निधि के रूप में पर्याप्त भूमि एवं गायें मन्दिर के नाम से लिख दी जातीं थीं। और उसका स्वामित्व मठाधीश पर रहता था। कभी–कभी इन मठाधीशों को राजकीय पुरस्कार के रूप में कई ग्रामों का आधिपत्य भी प्रदान किया जाता था। गुप्तों तथा गुप्त काल के अनेक ताम्रपत्र अभिलेखों से ज्ञात होता है, कि ब्राह्मणों को दीनार व भूमिदान पूजा आदि कार्यो के लिये जाता था। वह गांव सभी प्रकार के करों से मुक्त होता था तथा उस गांव में नियमित तथा अनयमित दोनों प्रकार की सेनाओं का प्रवेश निषिद्ध होता था।[1]

---

1. भागवत पुराण, पृष्ठ 272, 273

गुप्त काल से ही मठाधीश शासकों की परम्परा 20 वीं शती तक चलती आ रही थी । वैष्णव मन्दिरों में विष्णु पूजा के विभिन्न उपकरणों (धूप, दीप, नैवेद्य एवं घी आदि) के लिये भी कुछ स्थायी निधि आदि को अर्पित करने के कतिपय प्रमाण अभिलेखों में प्राप्त होते है। विष्णु मन्दिरों में विष्णु पूजा की पद्धति वैदिक एवं पौराणिक शैली की थी क्योंकि अवतारवाद से सम्बन्धित मूर्तियों के प्रमाण अभिलेखों में मिलतें हैं। परम्परा से चली आ रही पूजन पद्धति में सोलह उपचारों जैसे देवता के ध्यान के बाद अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय, वस्त्र, यज्ञोपवती, चन्दन (गंध) पुष्प अक्षत, धूप (अगरबत्ती), दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, दक्षिणा, आरती एवं प्रदक्षिणा का प्रयोग अत्यन्त सावधानी से सुरक्षित था। कतिपय उपचारों की चर्चा अभिलेखों में प्राप्त होती है। इस विधि को जीवित रखने के लिये गुप्त शासकों ने राजकीय दान घोषित किये थे।

गुप्तकाल में वैष्णव पूजा की विधि वैदिक परम्परा की जीवन्त साक्षिणी थी। जिसमें तत्कालीन समाज की धार्मिक रूचि, मनोरंजन, प्रियता तथा धार्मिक सहिष्णुता की सुरभि प्राप्त होती थी।

## वैष्णव मत

गुप्त काल में वैष्णव धर्म पूर्ण रूप से विकसित हो चुका था और विष्णु अवतारों का सिद्धान्त स्थापित हो चुका था। विष्णु के अनेक अवतारों की मूर्तियाँ उत्कीर्ण की जाती थीं, जैसे वराह और अनंतशायी की। अवतारवाद के विकास एवं प्रसार में पुराणों का प्रमुख योगदान है। अवतारवाद जनसाधारण के पुररूत्थान की आशा एवं आकांक्षा का प्रतीक है। बारहवीं शताब्दी में भक्ति आन्दोलन ने जो जोर पकड़ा, उसकी पृष्ठभूमि में जनसाधारण की यही आशा और आकांक्षा थी। अवतारों में वराह, कृष्ण और राम अधिक लोकप्रिय थे। आदि वराह की मूर्तियाँ बादामी की गुहाओं, महाबलिपुरम, मध्यप्रदेश,गुजरात, राजस्थान, बंगाल, उड़ीसा तथा उत्तर प्रदेश से मिली है। प्रतिहार नरेश भोज ने आदि वराह की उपाधि धारण की थी और इसी शैली के सिक्के भी जारी किए थे।

अभिलेखों तथा स्मारकों से विदित होता है, कि गुप्तोत्तर काल में वैष्णव धर्म भारतवर्ष में प्रचलित था और अनेक राजवंश इसके अनुनायी थे, जैसे कश्मीर के दुर्लभवर्धन, ललितादित्य, बंगाल सेन नरेश, प्रतिहार नरेश देशशक्ति और अनेक गुहिल चंदेल, चौहान, नरेश।[1]

---

1. झा नारायण द्विवेदी प्राचीन भारत का इतिहास, पृष्ठ 398

# गुप्त सम्राटों का व्यक्तिगत वैष्णव धर्म

आमतौर पर यही विश्वास किया जाता है, कि गुप्त सम्राट विष्णु के उपासक थे, इस विचार के पक्ष में कई कारण दिये जाते हैं। गुप्त सम्राट अपने आपको 'परम भागवत' कहते थे। इस शब्द से ज्ञात होता है, कि वे विष्णु के उपासक थे। कई गुप्त सिक्कों पर लक्ष्मी का चित्र दिखाई देता है और लक्ष्मी को विष्णु की सहचरी समझा जाता है। गुप्त काल की मुहरों पर भी गरूड़ का चित्र पाया जाता है। बुद्धगुप्त एक अभिलेख में 'विष्णु ध्वज' या विष्णु के ध्वज दण्ड का उल्लेख किया गया है।

स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ शिलालेख विष्णु की स्तुति से आरम्भ होता है। इससे ज्ञात होता है, कि सम्राट विष्णु के अनुयायी थे। गुप्त काल से दो–तीन शताब्दियों पहले 'तीरूक्कुराल' ने 'आदि भगवान्' को ससांर का सर्वप्रथम पुरूष बताया। यह कहना कठिन है, कि उसने विष्णु की ओर संकेत किया था।

'भगवत्भजनोत्सव पद्धति' में एक लोकप्रिय श्लोक है, जिसमें प्रहलाद, परमार, नारद, पुण्डीरक, व्यास, रूक्मांगद शुक्र और शौनक सभी को 'परमभागवत' कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि यह शब्द केवल विष्णु पूजन के लिए प्रयोग नहीं किया गया था। 'परम उपसर्ग का केवल यही अर्थ है, कि गुप्त सम्राट ईश्वर के अनन्य भक्त थे। केवल विष्णु की ओर कोई संकेत नहीं किया गया है।

लक्ष्मी ही विष्णु की सहचरी है, यद्यपि यह गलत भी नहीं है। लक्ष्मी को देश की सम्पत्ति तथा धन का प्रतीक समझना होगा। गुप्त सिक्कों पर लक्ष्मी के चित्र "राज्यश्री" या प्राचीन हिन्दू राजाओं की सम्पत्ति के द्योतक हैं। यह धारणा थी, कि देश की समृद्धि उसकी सम्पत्ति पर निर्भर है। अतः सम्पत्ति की देवी का आशीर्वाद प्राप्त करने की गुप्त शासकों ने चेष्टा की। यही कारण है, कि गुप्त सिक्कों पर लक्ष्मी के चित्र बहुधा पाए जाते हैं। विष्णु की सहचरी के रूप में लक्ष्मी की धारणा तो थी, किन्तु उसे बढ़ाया नहीं गया था। केवल सम्पत्ति की देवी की महत्ता की गई।

विष्णु के वाहन गरूड़ की ओर गुप्त राजाओं ने अत्यधिक ध्यान दिया है, किन्तु इसे विशेष महत्व प्रदान नहीं किया जा सकता। कारण यह है, कि वाहन तो केवल एक उपकरण है वैष्णव धर्म के पक्ष में इसे तर्क के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।[1]

---

1. उपाध्याय भगवत शरण, गुप्त काल की संस्कृति का इतिहास, पृष्ठ 150–151

यदि गरूड़ विष्णु का वाहन है, तो ऋषभ या बैल शिव का वाहन है। गुप्त शासकों ने 'नन्दी' या बैल को भी अपने अभिलेखों मे पर्याप्त महत्व दिया है। यह कहना तर्कसंगत नहीं है। कि गुप्त शासक विष्णु के अनुयायी थे। उन्होंने शिव को भी श्रद्धांजलि भेंट की।

बुद्धगुप्त के एक अभिलेख में 'विष्णु ध्वज' के उल्लेख को अत्यधिक महत्व दिया। सभी हिन्दू मन्दिरों में ध्वज या पताका एक अनिवार्य उपकरण है। अतः बुद्धगुप्त के एक मन्दिर में विष्णु का ध्वज होना स्वाभाविक है। वास्तव में गुप्त शासकों ने विभिन्न देवताओं के लिए विशाल स्मारक बनवाए जिन्हें लोकप्रिय ध्धार्मिक रीति रिवाजों में मान्यता दी जाती थी यही कारण है, कि गुप्त शासकों तथा अन्य उपासकों द्वारा बनवाए गये प्रत्येक मन्दिर में एक 'ध्वजस्तम्भ' है।

एक और तर्क यह भी है, कि जूनागढ़ शिलालेख में स्कन्दगुप्त ने विष्णु की स्तुति की। इसलिये गुप्त सम्राट विष्णु के अनुयायी थे। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है, कि उस समय शिव, विष्णु या देवी की तरह कोई साम्प्रदायिक देवता नहीं थे। प्रत्येक देवी या देवता एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रकट होते थे और भक्तगण उसकी पूजा करते थे। गुप्त सम्राट शिव या विष्णु या देवी कार्तिकेय की पूजा बिना भेदभाव के करते थे। परिस्थितियों के अनुसार किसी विशेष उद्देश्य के लिए विशेष देवता की स्तुति की जाती थी। इससे यह सिद्ध नहीं होता, कि गुप्त शासकों ने केवल विष्णु की उपासना की और शेष सभी देवताओं की ओर ध्यान न दिया।

प्रतीत होता है कि गुप्त–काल में शक्ति उपासना भी प्रचलित थी। अजयगढ़ में नचना कुठार स्थान पर एक पार्वती मन्दिर है। इस मन्दिर में शक्ति और पराक्रम से भरे हुए चित्र हैं। उदयगिरि में सनाकानकि गुफा में भी कई मूर्तियां है। विष्णु की मूर्ति के आगे 'महिषासुरमर्दिनी' का चित्र है इस चित्र की चार भुजाएं है महिषासुरमर्दिनी का चित्र दुर्गा का ही दूसरा रूप है।

'ब्राह्मण पुराण दैवी भागवत पुराण' और 'मार्कण्डेय पुराण' आदि दुर्गा पूजा से सम्बन्धित है। दुर्गा की स्तुति में कहे गये श्लोक 'महाभारत' के 'विराट पर्व' में ही नहीं 'भीष्म पर्व' में भी पाऐ जाते है।[1]

---

1. उपाध्याय भगवत शरण, गुप्त काल की संस्कृति का इतिहास, पृष्ठ 159–162

"सप्तमात्रिक शब्द गुप्त अभिलेखों में बार–बार आता है। जिन सात माताओं का प्रायः उल्लेख किया जाता है, उनके नाम है, ब्राह्मी, महेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, महेन्द्री और चामुण्डी। यह सुझाव दिया गया है, कि धर्म के एक लक्षण के रूप में शक्तिवाद वैदिक साहित्य में मूलभूत है।

मोर पर सवार स्कन्द तथा युद्ध देवता के रूप में स्कन्द की पूजा गुप्त काल में प्रचलित थी। कार्तिकेय या स्वामी महासेन (जैसा की गुप्त काल में कहा जाता था) को समर्पित कई मन्दिर पाए गए है। इस पद्धति की लोकप्रियता बहुत कुछ कालिदास से कारण थी। जिसने अपने समय में युद्ध देवता की बहुत प्रशंसा की। गुप्त शासक इस पद्धति के भी अनुयायी थे, जैसा कि वे अन्य पद्धतियों के अनुयायी थे।

कुमारगुप्त के बिलसाड़ शिला स्तम्भ अभिलेख का उद्देश्य स्वामी महासेन के मन्दिर को उन्त करना था। स्कन्दगुप्त के बिहार शिलास्तम्भ अभिलेख में 'स्कन्दप्रदानै' शब्द प्रयुक्त किया गया है। इससे ज्ञात होता है, कि स्कन्द को देवता के रूप में रूप में स्वीकार कर लिया गया था। और हिन्दुओं में तथा विशेषकर गुप्त शासकों में वह सर्वप्रिय बन चुका था। गुप्त काल में सूर्योपासना का विस्तृत वर्णन है। गुप्त शासकों ने सूर्योपासना को संरक्षण प्रदान किया। स्कन्दगुप्त के इन्दौर ताम्र पत्र अभिलेख में प्रार्थना की गई है, कि सूर्य जनता की रक्षा करे। उन्नत बुद्धि के बह्माण सूर्य देव की पूजा करते हैं। उसकी सीमाओं तक सुरासुर नहीं पहुंच सकते थे। जब लोग आने वश में नहीं रहते तो वे सूर्य से चेतना प्राप्त करते हैं। अभिलेखों से ज्ञात होता है, कि एक ब्राह्मण देव विष्णु ने सूर्य देवता के लिए एक द्वीप अर्पित किया गुप्तवंशियों ने अपने–अपने विचारों के अनुसार हिन्दू धर्म को संरक्षण प्रदान किया। यदि एक शासक विष्णु उपासक था तो दूसरा शिव का अनुयायी था, तीसरा मुरूग का पूजक था, तो चौथा सूर्य का उपासक था। किन्तु इससे वे अन्य मतों के प्रति असहिष्णु न बने।

गुप्त वंश के उदय से पहले भी भारशिवों ने गंगा के तट पर दशाश्वमेघ घाट पर दस अश्वमेघ यज्ञ करके हिन्दु धर्म को लोकप्रिय बनाया था। हिन्दू धर्म को राज संरक्षण प्रदान करने और उसे राज्य धर्म बनाने का कार्य गुप्त वंश के लिये ही रह गया था। गुप्तवंशी धर्मान्ध नहीं थे और उन्होंने सभी के प्रति धार्मिक साहिष्णुता का प्रदर्शन किया। वास्तव में समुद्रगुप्त ने प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान वसुबन्धु को संरक्षण दिया। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं, कि गुप्त शासक धर्मनिष्ठ हिन्दू थे। उनका

पथ प्रदर्शक प्रायः ब्राह्मण परामर्शदाता करते थे। वे स्वयं संस्कृत भाषा के अच्छे ज्ञाता थे। चन्द्रगुप्त द्वितीय को 'राजाधिराजर्षि' कहा गया है। जो राजा और ऋषि का मिश्रण है। समुद्रगुप्त और कुमारगुप्त ने अश्वमेघ यज्ञ किए ऐसे वातावरण में ही हिन्दू धर्म ने तीव्र प्रगति की। विभिन्न हिन्दू देवी देवताओं की पूजा के लिये मन्दिर बनाए गए। विष्णु के अवतारों की पूजा को अत्यधिक महत्व दिया जाने लगा। कहा जाता था, कि दानवों या निकृष्ट शक्तियों से संसार की रक्षा करने के लिए विष्णु समय समय पर अवतार लेते हैं। पुराणों में विष्णु के दस अवतारों का उल्लेख किया गया है। मीन या मछली के रूप में विष्णु ने मानवता के पिता मनु की विश्वव्यापी बाढ़ से रक्षा की। कछुए के रूप में विष्णु ने अपनी पीठ पर मन्दर पहाड़ को सम्भाला जिसे देवताओं ने सागर से मानवता के हित के लिए चौदह पदार्थ प्राप्त करने के लिये मन्थन करते समय प्रयुक्त किया था। वृष, नरसिंह तथा वामन के रूप में विष्णु ने पृथ्वी को विध्वंस करने के इच्छुक दानवों का वध किया। ब्राह्मण धर्म के विक्रॉता परशुराम के रूप में विष्णु ने क्षत्रियों को नष्ट किया। विष्णु के पहले छः अवतार पूर्णतः पौराणिक थे। अगले तीन अवतार ऐतिहासिक तथा अर्द्ध ऐतिहासिक थे। विष्णु के उपासक बुद्ध को भी विष्णु का अवतार मानते थे, जिसे दानवों तथा अपराधियों को पथ भ्रष्ट करने के लिये भेजा गया था। कल्कि अवतार अभी भविष्य की गोद में था।

प्रत्येक देवता की एक सहचरी थी। विष्णु की सहचरी लक्ष्मी थी। समृद्धि तथा सौन्दर्य की देवी जब सागर से निकली तब सुरों तथा असुरों ने इसका मन्थन किया। विष्णु को कलाकृतियों में विश्व नाग 'शेष' या 'अनन्त' पर लेटे हुए या वाहन गरूड़ पर सवार दिखाया जाता था देवताओं को बहुभुज और बहु मुख वर्णन करने की प्रवृत्ति इस युग में लोकप्रिय हो गई। देवता अपने हाथों में अपनी शक्ति के लक्षण उठाए होता है, यथा वज्र, मण्डल, शंख, कमल और त्रिशूल। 'शालिग्राम' को विष्णु के लिये पुण्य समझा जाता है, और उसका पवित्र पौधा तुलसी है।[1]

अवतारवाद जनसाधारण के पुनरूत्थान की आशा एवं आकांक्षा का प्रतीक है। बारहवीं शताब्दी में भक्ति आन्दोलन ने जो जोर पकड़ा उसकी पृष्ठभूमि में जनसाधारण में यही आशा और आकांक्षा थी। अवतारों में वराह, कृष्ण और राम अधिक लोकप्रिय थे। आदि वराह की मूर्तियाँ बादामी की गुहाओं, महाबलिपुरम, मध्यप्रदेश, गुजरात, राजस्थान, बंगाल, उड़ीसा तथा उत्तर प्रदेश से मिली है।

---

1. गुप्त परमेश्वरी लाल, गुप्त सामाज्य, पृष्ठ 34–38

प्रतिहास नरेश भोज ने आदि वराह की उपाधि धारण की थी और इसी शैली के सिक्के भी जारी किए थे।

अभिलेखों तथा स्मारकों से विदित होता है, कि गुप्तोत्तर काल में वैष्णव धर्म भारतवर्ष में प्रचलित था और अनेक राजवंश इसके अनुयायी थे, जैसे कश्मीर के दुर्लभवर्धन, ललितादित्य, बंगाल के सेन नरेश, प्रतिहास नरेश देवशक्ति और अनेक गुहिल, चंदेल व चौहान नरेश। किन्तु वैष्णव धर्म का गढ़ दक्षिण में तमिल प्रदेश में था।

विष्णु परमदेव विश्वात्मा सर्वज्ञानमय अनंत, अप्रमेय है, असीम ब्रह्मा होते हुए भी प्राणियों के अनुग्रह के लिये वह पृथ्वी पर अवतार लेता है। और मूर्ति के रूप में सीमित रहता है। अवतारों में कृष्ण का अवतार लोकप्रिय है। विष्णु के अर्चनावतारों की पूजा से बैकुंड में ईश्वर की सेवा का अवसर मिलता है।

## धार्मिक दशा

### वैष्णव मत

गुप्त नरेशों का व्यक्गित धर्म वैष्णव मत था। उनकी उपाधि 'परमभागवत' थी। प्रयोग की प्रशस्ति के अनुसार उनकी राजाज्ञाएं गरूड़ध्वज से अंकित (गरूड़त्दंडक) हुआ करती थी। गरूड़ मुद्रा का उदाहरण गाजीपुर जिले से भीतरी नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ का स्तम्भ लेख तथा बुधगुप्त का एरण स्तम्भ लेख विष्णु की स्तुति से प्रारम्भ होता है। जूनागढ़ लेख के अनुसार चक्रपालित नामक कर्मचारी ने विष्णु मन्दिरों का निर्माण किया था। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने विष्णुपद नामक पर्वत के ऊपर विष्णु ध्वज की स्थापना की थी।

## स्कन्द गुप्त 'क्रमादित्य'

स्कन्दगुप्त ने भी धार्मिक सहिष्णुता की नीति का अवलंबन किया। वह वैष्णव मातावलंबी (परमभागवत) थे। उसक समय में वैष्णव मतावलंबी वर्तमान थे। गिरिनगर का नगराध्यक्ष चक्रपालित इसी धर्म का मानने वाला था। उसने गुप्त संवत् (138 456 ई.) में एक विष्णु मन्दिर की स्थापना की थी। भीतरी लेख में भगवान् विष्णु की मूर्ति की स्थापना का वर्णन मिलता है। बिहार के स्तम्भ लेख के अनुसार एक ग्राम (स्कन्दगुप्तवाट) में यूप (यज्ञ स्तम्भ) की स्थापना की गई तथा इसके चतुर्दिक

कई देव मन्दिर बनाये गये। इसमें प्रधान मन्दिर कार्तिकेय का था। इनमें से कुछ मन्दिर मातृपूजा से भी संबंधित थे। माताओं की संख्या सात मानी जाती थी।

1. ब्राह्मी
2. माहेश्वरी
3. कौमारी
4. वैष्णवी
5. माहेन्द्री
6. वाराही
7. चामुण्डा

स्कन्दगुप्त के समय में सूर्य की भी पूजा होती थी। इन्दौर का लेख सूर्य (भास्कर) की पूजा से प्रारम्भ होता है। इस लेख के अनुसार इन्द्रपुर (आधुनिक इन्दौर) में एक सूर्य मन्दिर था। कहौम के लेख के अनुसार मद्र नामक व्यक्ति ने पाँच तीर्थंकरों की प्रतिमाओं की स्थापना की थी: आदिनाथ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ तथा महावीर।[1]

## गुप्त शासक और वैष्णव धर्म

गुप्त काल में वैष्णव धर्म के राज्याश्रित होने के कारण राजकीय कर्मचारियों तथा प्रजा ने इस धर्म का हार्दिक भाव से स्वागत किया। वैष्णव धर्म से सम्बन्धित उट्टंकित विभिन्न अभिलेख इस बात के साक्षी हैं, कि इस समय कण कण में वैष्णव धर्म की गरिमा व्याप्त थी। इस तरह वैष्णव धर्म के राज्याश्रित होने पर विशिष्ट प्रभाव अनेक क्षेत्रों में परिलक्षित होते है।

धार्मिक साहित्य के आधार पर विष्णु एकवीर और प्रतापी देव के रूप में चित्रित मिलते हैं। अतः वीर एवं प्रतापी नरेश गुप्त नरेशों ने विष्णु को ही शासन का प्रमुख देव माना। जिसका परिणाम यह हुआ कि प्रजा में कायरता का आभाव हुआ तथा लोगों में वीरता एवं साहस के भाव जगे। गुप्तों ने सिक्कों पर गरूड़ध्वज का चिन्ह अंकित कराया जो इस बात प्रतीक है कि जिस प्रकार गरूड़ नागों का

---

1. राय नारायण उदय, गुप्त सम्राट और उनका काल पृष्ठ 396–398

विजयी शत्रु होता है। उसी प्रकार गुप्त नरेश भी अपने शत्रु रूपी नागों के लिये गरूड़ तुल्य विजयी थे। स्कन्दगुप्त ने जूनागढ़ अभिलेख में स्कन्दगुप्त को शत्रुओं के लिये गरूड़ सदृश्य कहा है। गुप्त नरेशों ने विष्णु के अनन्त गुणों में जय को विशिष्ट समझा क्योंकि वे जय कामना करने वाले थे अतः अभिलेखों का प्रारम्भ विष्णु की जय से किया करते थे।

गुप्त शासकों की वैष्णव परक नीति ने राज्य के प्रमुख भू भागों में वैष्णव धर्म से सम्बन्धित लोकप्रिय मन्दिरों की स्थापना की। वैष्णव धर्म की शिक्षा दीक्षा के लिये मठों तथा विद्यालयों की स्थापना का अनुमान किया जा सकता है। फलस्वरूप समाज का बहुत बड़ा भाग वैष्णव धर्म से अनुप्राणित हो उठा और विष्णु के विभिन्न अवतारों से सम्बन्धित देवी देवताओं का प्रचार हुआ। जिसकी पुष्टि गुप्त कालीन अनेक अभिलेखों से होती है। लोगों में क्षत्रियोचित गुण जगे एवं आसुरी भावना पर सात्विक भावना ने प्रभाव जमाया तथा वर्णाश्रम धर्म की नींव मजबूत हुई। लोग अपने–अपने कर्तव्यों और अधिकारों की ओर बढ़े। वैष्णव धर्म में शक्ति का विशेष महत्व होने के कारण नारियों को लक्ष्मी स्वरूप समझा गया, और शक्ति उपासना का संचार हुआ।

राजा के द्वारा आश्रित वैष्णव धर्म का प्रभाव राजनीति पर भी पड़ा। यथा राजा तथा प्रजा के अनुसार प्रजायें वैष्णव धर्म में अनुवरत हुई। उच्च पदाधिकारियों ने भी विभिन्न अभिलेखों में विष्णु की स्तुतियों का अंकन कराया है। वैष्ण धर्म से सम्बन्धित प्रचारकों, प्रसारकों, पुजारियों, मठाधिकारियों, बाह्यणों, भक्तों, कवियों, लेखकों तथा अधिकारियों को पुरूस्कृत कर दान दिया गया तथा विभिन्न करों से उन्हें मुक्त किया गया।[1]

मन्दिरों को राज्याश्रय प्रदान किया गया तथा मन्दिरों की सुचारू व्यवस्था के लिये भूमि एवं ग्राम दान में दिये गये। गोशालाओं एवं मठों की स्थापना की गई और मन्दिरों की देखरेख के लिये समिति का भी गठन किया गया।

वैष्णव धर्म के राज्याश्रित होने के कारण एक ओर तो मन्दिरों की व्यवस्था के लिये आर्थिक व्यय का भार पड़ा तथा दूसरी ओर देश के विभिन्न धनी नागरिकों द्वारा मन्दिरों को भेंट की गई बहुमूल्य वस्तुओं से आर्थिक कोष बढ़ा। जिसके माध्यम से मन्दिर निर्माण, यज्ञ व्यवस्था तथा दान आदि कार्य सम्पन्न होते थे। इसी

---

1. गोयल श्री राम, हिस्ट्री ऑफ दी इम्पीरियट गुप्तास, पृष्ठ 74–79

तरह मन्दिरों में एक विशेष अंग के रूप में स्थापित गोशालाओं के माध्यम से होने वाले आर्थिक लाभ से भी विभिन्न धार्मिक कार्य सम्पन्न होते थे। प्राचीन ग्रन्थों में इस प्रकार संक्षिप्त धनराशियों को धर्म सम्पत्ति की संज्ञा दी गई है।

वैष्णव धर्म की प्रमुखता के कारण विभिन्न साहित्यकारों ने वैष्णव धर्म तथा उनसे सम्बन्धित कृतियों की रचना की। कालिदास आदि उच्चकोटि के महाकवि इसी काल के कवि बने और बौद्ध एवं जैन धर्म के विभिन्न दार्शनिकों ने भी साहित्य के अनुकरण पर दार्शनिक ग्रन्थों का निर्माण किया। विभिन्न धर्म ग्रन्थों में विष्णु के महत्व का मूल्याकंन किया गया, तथा कई पुराणों में विष्णु से सम्बन्धित प्रक्षिप्तांश जोड़े गये। विष्णु मन्दिरों तथा अन्य अभिलेखों में ललित साहित्यिक शैली में विष्णु से संबंधित पद्यों की कड़ी जुड़ी तथा मन्दिरों से सम्बन्धित विशेष अंग के रूप में विद्यालय तथा मठ खोले गये। जिनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य द्विजातिवर्गीय बालकों को विष्णु से सम्बन्धित धर्म, दर्शन एवं आचार विचार सिखाये जाते थे। गुप्त नरेशों की सहानुभूतिपरायणता के कारण जैन, बौद्ध और अन्य धर्म से संबंधित बातें भी सिखलाई जाती थी। इस तरह सम्पूर्ण समाज में शिक्षा के विकास का सुअवसर वैष्णव धर्म के कारण प्राप्त हुआ।

संक्षिप्त दृष्टि से देखने पर यह ज्ञात होता है, कि गुप्त काल में वैष्णव धर्म का राज्याश्रय मिलने के कारण सम्पूर्ण शासन क्षेत्र में धर्म, अर्थ, सुख, समृद्धि एवं शिक्षा का व्यापक प्रभाव पड़ा, तथा पारलौकिक मार्ग के साधकों को चैन से सांस लेने का सुअवसर प्राप्त हुआ। गुप्त काल वह तीर्थराज प्रयाग बन गया जिसमें 'धर्म, दर्शन, साहित्य' की त्रिवेणी बहने लगी।

# गुप्त साम्राज्य के कवि एवं नाटककार

## कालिदास

कालिदास के युग के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद है। एक विचार के अनुसाार वह प्रथम शताब्दी ईसा पर्वू में रहा। बताया जाता है, कि परम्परा के अनुसार कालिदास विक्रम संवत् के संस्थापक विक्रमादित्य का समकालीन था।

दूसरा विचार यह है, कि कालिदास गुप्त कालीन था और चन्द्रगुप्त द्वितीय ने सम्भवतः उसे संरक्षण प्रदान किया। कहा जाता है, कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने भी 'विक्रमादित्य' उपाधि धारण की थी अतः कालिदास चन्द्रगुप्त द्वितीय के युग का भी हो सकता है। साहित्यिक अनुश्रुति के अनुसार कालिदास ने राजा प्रवरसेन की कविता 'सेतुबन्ध' (पुल का बनाना जिससे राम की सेना लंका द्वीप पहुंची) को संशोधित किया।

कालिदास की अधिक महत्वपूर्ण कृतियाँ है 'अभिज्ञान शाकुन्तल', 'ऋतुसंहार', "मालविकाग्निमित्रम, कुमारसम्भव, मेघदूत, रघुवंश, विक्रमीर्वशीयम, कई भारतीय सिद्धान्तियों के अनुसार, समस्त कलाओं में नाटक सर्व श्रेष्ठ है, समस्त नाटकों में शकुन्तला सर्वश्रेष्ठ है।

कालिदास की कविता अपने सौन्दर्य, सरलता, विचारों तथा कल्पनाओं के कारण प्रसिद्ध है। उसकी उपमाएँ सुन्दर, अनुकूल और विभिन्न प्रकार की है। चरित्र चित्रण में उसका कोई सानी नहीं है। प्रेम और करूणा के भावों को प्रकट करने में वह उत्कृष्ट है। उसकी सुन्दर भाषा में कई गूढ़ तत्व है।[1]

## भास

कालिदास तथा बाण ने भास की प्रशंसा की है। उत्तरकालीन लेखकों ने जो श्लोक भास के लिये बताए है वे उन नाटकों में नहीं है। भास के नाटक 'स्वप्नवासवदत्ता' की अधिकांश विशेषताएं त्रिवेन्द्रम नाटकों के 'स्वप्नवासवदत्ता' में पाई जाती है। भास का समय 300 ई. के लगभग निश्चित किया जा सकता है। तेरह त्रिवेन्द्रम नाटकों के नाम है, 'मध्यमत्यायोग', दूतवाक्य, बालचरित, प्रतिमा, अभिषेक, अविमार्क, प्रतिज्ञायोग धरायण्ए, स्वप्नवासवदत्ता, चारूदत्त, दूतघटोत्कच, कर्णाभार, उरूभड और पंचरात्र।

---

1. कालीदास ग्रन्थावली, पृष्ठ 8–10

## विशाखदत्त

विशाखदत्त ने 'मुद्राराक्षस' नाटक लिखा जिसमें उस क्रान्ति का वर्णन है, जिससे चन्द्रगुप्त मौर्य मगध के सिंहासन पर बैठा विशाखदत्त को 'देवी चन्द्रगुप्तम' का लेखक भी माना जाता है।[1]

## भट्टी

भट्टी ने 'रावण वध' पुस्तक लिखी जिसे 'भट्टी काव्य' भी कहा जाता है। राम की कथा देते हुए यह पुस्तक व्याकरण के नियम समझाती है। कुछ लेखक भट्टी को भर्तृहरि मानते हैं। जो क्रमशः साधु, दरबारी, दार्शनिक, व्याकरण शास्त्री और कवि बना और जिसने प्रसिद्ध तीन शतकों की रचना की।

मातृगुप्त और भतृमेघ भी इसी युग के थे, किन्तु उनकी कृतियाँ लुप्त हो चुकी हैं। नाटककार शौमिल्ल और कुलपुत्र भी इसी युग के थे।[2]

## विष्णु शर्मा

मूल पंचतत्र की रचना विष्णुशर्मा ने गुप्तकाल में की। यह पुस्तक संसार के साहित्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखती है। संसार की विभिन्न 50 भाषाओं आदि में इस पुस्तक के लगभग 200 अनुपवाद हैं, जैसे इंगलिश, जर्मन, स्पेनिश, लैटिन, यूनानी।[3]

## पुराण

पुराणों की रचना गुप्तकाल से काफी समय पहले की गई थी। किन्तु अब उन्हें अभिनव बना लिया गया है। कलियुग के वंशों का इतिहास 350 ई. में लिख दिया गया। विष्णु और शिव की स्तुति में कई परिच्छेद जोड़ दिए गए।

## स्मृतियाँ

याज्ञवल्क्य, नारद, कात्यान और बृहस्पति की स्मृतियाँ इसी युग में लिखी गई। कहा गया है, कि 'याज्ञवक्ल्य स्मृति' इस विषय पर नियमानुसार और सन्तुलित पुस्तक है।

---

1. मुद्रा राक्षस विशाख दन्त ................ 13
2. कादम्बरी, चौखम्वा सिरिज ................ 18
3. विष्णु शर्मा ................ 17

**कामन्दक** : कामन्दक कृत 'नीतिसार' की रचना सम्भवतः गुप्त शासकों के किसी मंत्री ने की।

**हितोपदेश** : 'हितोपदेश' सम्भवतः, गुप्त काल में ही लिखी गई है।

**ईश्वरकृष्ण** : ईश्वरकृष्ण ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सांख्यकारिका' या सांख्या पद्धति दर्शन की रचना की।

**वात्स्यायन** : वात्स्यायन ने 'न्याय भाष्य' या न्याय पद्धति दर्शन लिखा।

**प्रशस्तपाद** : प्रशस्तपाद ने पदार्थ धर्म संग्रह या 'वैशेषिक पद्धति' दर्शन लिखा।

**व्यासभाष्य** : योग दर्शन पर 'व्यास भाष्य' की रचना की गई। बौधायन, उपवर्ष, भर्तृप्रपन्न– जैसे दार्शनिक भी गुप्तकाल में ही हुए।

**दण्डी** : दण्डी ने इसी युग में 'काव्यादर्श' और 'दशकुमार चरित' की रचना की।

**आसंग** : बौद्ध लेखक आसंग ने 'योगाचारभूमि शास्त्र' और 'महायान सम्परिग्रह' की रचना की।

**वसुबन्धु** : वसुबन्धु ने महायान तथा हीनयान बौद्ध दर्शन पर कई पुस्तके लिखी।

**दिङ्‌ नाग** : दिङ़ नाग ने 'प्रमाण समुच्च्य' की रचना की।

**परमार्थ** : परमार्थ ने वसुबन्धु की जीवन कथा लिखी।

**चन्द्रगोमिन** : बौद्ध विद्धान चन्द्रगोमिन ने 'चन्द्र व्याकरण' की रचना की।

आर्य भट्ट, वराहमिहिर और ब्रह्यागुप्त, आर्यभट्ट, वराहमिहिर और ब्रह्यागुप्त को संसार के सर्वप्रथम "नक्षत्र वैज्ञानिक और गणितज्ञ" कहा गया है। आर्यभट्ट ने 'सूर्य सिद्धान्त' लिखा। उसने सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण के वास्तविक कारण बताए। आर्यभट्ट पहला भारतीय नक्षत्र वैज्ञानिक था। जिसने घोषणा की कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है। उसने नक्षत्रीय चलन के परिवर्तनों का विवरण भी किया। वराह मिहिर की पुस्तक 'वृहत संहिता' में "नक्षत्र विद्या", "वनस्पति शास्त्र", "प्राकृतिक इतिहास" और "भौतिक भूगोल" के विषयों पर चर्चा की गई है। वराहमिहिर में 'पंच सिद्धान्त' 'वृहज्जातक' और 'लघुजातक' की रचना भी की। "ब्रह्यागुप्त" इस युग का महान नक्षत्र वैज्ञानिक और गणितज्ञ था। उसने यह घोषण करके न्यूटन के सिद्धान्त की पूर्व कल्पना कर लीः प्रकृति के एक नियम के अनुसार सभी वस्तुएँ पृथ्वी

पर गिरती हैं, क्योंकि पृथ्वी स्वभाव से ही सभी वस्तुओं को अपनी ओर आकर्षित करती है।

## चिकित्सा'

''नवनीतकम'' की एक रचना गुप्त काल में की गई थी। इस पुस्तक में नुस्खे, सूत्र और उपचार विधियाँ दी गई हैं, पलकाप्व ने पशु चिकित्सा पर 'हस्त्यायुर्वेद' लिखा।

## राजकवि

समुद्रगुप्त के प्रसिद्ध सेनानी और विदेशमंत्री हरिषेण ने समुद्रगुप्त पर अपनी प्रशस्ति लिखी जो इलाहाबाद स्तम्भ अभिलेख में पाई गई है। यह प्रशस्ति एक सुन्दर कविता के रूप में है। लेखन सरल और आलंकारिक शैलियों में अपनी कुशलता का परिचय दिया है। वासुल ने यशोवर्मा पर अपनी प्रशस्ति लिखी। रविशान्ति ने मौखरी राजा की हरहा प्रशस्ति लिखी। वत्सभही ने कुमारगुप्त और बन्धुवर्मा की मन्दसौर प्रशस्ति लिखी। कुब्ज ने तालगुन्द प्रशस्ति लिखी। शाब चन्द्रगुप्त द्वितीय का राजकवि था।

अध्याय – 3

# गुप्त कालीन सिक्कों एवं मुहरों पर वैष्णव धर्म

# अध्याय – 3

# गुप्त कालीन सिक्कों एवं मुहरों पर वैष्णव धर्म

## गुप्त–मुद्रा :

गुप्त वंश के इतिहास की बहुत सी लाभदायक सामग्री उनके सिक्कों से प्राप्त होती है) "एलन का विचार था, कि चन्द्रगुप्त प्रथम और उसकी रानी कुमार देवी के चित्रों वाले सिक्के उनके पुत्र समुद्रगुप्त ने स्मारकीय पदकों के रूप में चलाये थे। किन्तु डा. अक्टेकर ने यह विचार स्वीकार नहीं किया है। उनका कथन है, कि यदि हम ठीक होता तो समुद्र गुप्त का नाम भी उन सिक्कों पर अवश्य दिया रहता।"[1]

## मुद्रा प्रवर्तक :

अपने पिता की भाँति इसने भी अनेक प्रकार की मुद्रायें चलायी। पर अभी तक जहाँ केवल स्वर्ण तथा ताम्र मुद्रायें चलती थी, समुद्रगुप्त ने रजत मुद्राओं का प्रचलन कर गुप्त मुद्रा इतिहास में नया अध्याय जोड़ दिया! अब तक इनकी धनुर्धारी प्रकार, छत्रछारी प्रकार, पर्यक प्रकार, अश्वारोही प्रकार, सिंहनिहन्ता प्रकार, पर्यक स्थित राजा रानी प्रकार, ध्वजधारी प्रकार तथा चक्रविक्र प्रकार नामक आठ प्रकार की सुवर्ण मुद्रायें मिली है। इन मुद्राओं पर शासक के नाम के साथ देवश्री, श्री विक्रम, विक्रमादित्य, परमभागवत्, नरेन्द्रचन्द्र, सिंहविक्रम, अजितविक्रम आदि उपाधियों का प्रयोग मिलता है। पहले यह माना जाता था कि गुप्त सम्राटों में द्वितीय चन्द्रगुप्त ने ही नियमित रूप से ताम्रपत्र मुद्राओं का प्रचलन किया, पर रामगुप्त की मुद्राओं के मिलने से इस धारणा में परिवर्तन हो गया।

द्वितीय चन्द्रगुप्त की मुद्राओं को

1. छत्रधारी प्रकार
2. धनुर्धारी प्रकार
3. अर्द्धचित्र प्रकार
4. कलश प्रकार

में वर्गीकृत किया गया है। अर्द्धचित्र प्रकार कई उप प्रकारों में वर्गीकृत है यथा

---

1. महाजन, वी.डी.: प्राचीन भारत का इतिहास, पृ.55।

बड़े आकार, छोटे आकार, पुरोभाग पर लेख अनुत्कीर्ण वेदी विरहित गरूड़, राजा पुष्परहित, चक्र प्रकार आदि। इन पर महाराज चन्द्रगुप्त तथा श्री चन्द्रगुप्तः लेख मिलता है। "पश्चिमी भारत में शक राज्य में रजत मुद्रायें चलती थीं। द्वितीय चन्द्रगुप्त ने जब इन प्रदेशों पर अधिकार किया, तो इन प्रदेशों की आवश्यकताओं के अनुसार इसने भी रजत– मुद्रायें प्रवर्तित कीं। ये मुद्राएँ शक–मुद्राओं के अनुकरण पर ही प्रवर्तित की गयी। ये दो वर्गो में रखी गई है प्रथम वर्ग की मुद्राओं पर लेख परमभागवत् से तथा दूसरे वर्ग में लेख 'गुप्तकुलस्य' से प्रारम्भ होता है।"[1]

## मुद्रायें

कुमार गुप्त के समय में समुद्र गुप्त तथा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के काल से अधिक संख्या में मुद्राओं का निर्माण किया गया। इसके कारण स्पष्ट है। उसके राज्यकाल में गुप्त मुद्रा कला सुविकसित अवस्था को प्राप्त हो चुकी थी। उसने लगभग चालीस वर्षो तक राज्य किया। "अतएव उसे नये प्रकार के सिक्कों को प्रचलित करने का अवसर प्राप्त हुआ। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के काल में चन्द्रगुप्त प्रथम के राजा–रानी प्रकार तथा समुद्रगुप्त के व्याघ्रनिहन्ता अश्वमेघ तथा वीणा वादन प्रकार की मुद्राये बन्द कर दी गई थी। कुमार गुप्त प्रथम के काल में इन सिक्कों को पुनः प्रचलित किया गया। उन्होनें अपने पिता के अश्वारोही, धनुर्धारी छत्र तथा सिंह निहन्ता प्रकार की मुद्राओं को भी जारी रखा। इसके अतिरिक्त उन्होंने नवीन प्रकार की स्वर्ण मुद्राओं का भी निर्माण कराया। उसके समय की रजत तथा ताम्र मुद्रायें भी प्राप्त है।''

## समुद्रगुप्त के आदर्श पर निर्मित मुद्राएँ

राजा रानी प्रकार–इसका केवल एक ही उदाहरण बयाना निधि में प्राप्त हुआ है। उन्होंने अपने प्रपितामह (चन्द्रगुप्त प्रथम) के एकमात्र प्रचलित सिक्के की स्मृति को नवीन बनाने के हेतु इसे निर्मित किया था। इस मुद्रा के मुख भाग पर सम्राट और सम्राज्ञी एक दूसरे के आमने–सामने खड़े है। चन्द्रगुप्त प्रथम की भाँति कुमार गुप्त भी रानी को कुछ समर्पित करते हुए अंकित किया गया है। भेंट की वस्तु सुमन गुच्छक तुल्य प्रतीत होती है। पृष्ठ भाग पर सिंह–आसीन देवी की आकृति उत्कीर्ण की गई है।[2]

---

1. पाण्डेय रामनिहोर, प्रारम्भिक भारत का राजनैतिक इतिहास पृ. 129
2. राय, उदय नारायणः गुप्त सम्राट और उनका काल, पृष्ठ 284,85

# समुद्र गुप्त के अनुकरण पर प्रचलित सिक्के

## व्याघ्र निहन्ता प्रकार

"इस वर्ग के सिक्के समुद्रगुप्त की व्याघ्र–निहन्ता प्रकार की मुद्राओं के आदर्श पर ढाले गये थे। इनके मुख भाग पर सम्राट व्याघ्र को धनुष बाण से मारता हुआ अंकित किया गया है पृष्ठ भाग पर समुद्रगुप्त की मुद्राओं के समान देवी मकर की पीठ पर आसीन है। इस ओर 'कुमारगुप्ताऽधिराजो' लेख मिलता है। अधिराज शब्द से उसकी महान शक्ति का बोध होता है। कालिदास ने 'कुमार संभव' में इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया (हिमालयो नाम नगाधिराज)!

इस भाँति के सिक्कों पर राजा बायीं ओर खड़े व्याघ्र को पद दलित करते और तीर का निशाना बनाते हुए अंकित किये गये हैं। ये सिक्के समुद्रगुप्त और कुमारगुप्त (प्रथम) के है।[1]

## अश्वमेघ प्रकार

"इस प्रकार की अब तक सात मुद्रायें उपलब्ध हैं, इनमे दो ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित हैं। चार बयाना निधि में प्राप्त हुई हैं, तथा एक लखनऊ संग्रहालय में वर्तमान है। इनके मुख भाग पर यज्ञ यूप में बँधे हुए तथा जीन से अलंकृत घोड़े का चित्र मिलता है। इनके पृष्ठ भाग पर सम्राट की उपाधि 'श्री अश्वमेघमहेन्द्र' अंकित है।"[2]

"इस भाँति के सिक्कों पर चबूतरे के ऊपर सुसज्जित यूप के सामने अश्व खड़ा है, और यूप के सिरे से पताका लहरा रही है। इस भाँति के सिक्के समुद्रगुप्त और कुमारगुप्त (प्रथम) के हैं। अभिलेखों से समुद्रगुप्त के अश्वमेघ यज्ञ करने की बात ज्ञात रही है; किन्तु कुमार गुप्त के अश्वमेघ यज्ञ कर्त्ता होने की बात इन सिक्कों से ही ज्ञात होती है।"[3]

---

1. गुप्त परमेश्वरी लालः गुप्त समाज्य पृ.62
2. राय, यू.एन. : गुप्त सम्राट और उनका काल, 285
3. गुप्त परमेश्वरी लालः गुप्त समाज्य, पृ. 62

## वीणा प्रकार :

"इस वर्ग की मुद्राएँ दुष्प्राप्य है। इस कोटि की केवल दो ही मुद्रायें प्राप्त हैं, जो बयाना निधि में सुरक्षित हैं। समुद्रगुप्त की भांति इनमें भी मुख भाग की और सम्राट ऊँची पीठ वाले पर्यटक पर आसीन है और गोद में रखी वीणा को बजाते हुए प्रदर्शित किया गया है। इसी ओर राजा का नाम उनकी उपाधि के सहित (महाराजाधिराज श्री कुमार गुप्त) अंकित है। इसके पृष्ठ भाग पर देवी कुंडल, हार तथा कंकण पहने पर्यटक पर बैठी प्रदर्शित की गई हैं।"[1]

इस भाँति के सिक्कों पर राजा गद्दीदार पर्यक पर बैठे वीणा बजा रहे हैं। इन्हें समुद्रगुप्त और उनके पौत्र (कुमार गुप्त) प्रथम ने प्रचलित किया था सम्भवतः ये उनके गन्धर्वविद्या में निष्णात होने के प्रतीक है।

# चन्द्रगुप्त द्वितीय के आदर्श पर निर्मित मुद्राएं

## अश्वारोही प्रकार :

"ये उसी समय की प्रिय वर्ग की मुद्रायें थीं। इनकी बनावट के आदर्श चन्द्रगुप्त द्वितीय के अश्वरोही प्रकार के सिक्के थे। इनके मुख भाग पर सम्राट घोड़े की पीठ पर आसीन दिखाये गये हैं। इस ओर लेख 'पृथिवीतलांवरशशी कुमारगुप्तो जयत्यजितः (अजेय कुमार गुप्त, जो पृथ्वी रूपी आकाश में चन्द्रमा के तुल्य है, विजयी हों) आता है। पृष्ठ भाग की दृष्टि से इस कोटि की मुद्रायें दो प्रकार की हैं तथा दूसरी कोटि में वह मोर को दिखलाती हुई अंकित की गई है।'"[2]

"इस भाँति के सिक्कों पर राजा सजे हुए वामाभिमुख अथवा दक्षिणाभिमुख अश्व पर सवार अंकित हैं। सामान्यतः वे निर्वस्त्र ही दिखाये गये हैं, पर कुछ उप भाँति के सिक्कों पर वे तलवार अथवा धनुष धारण किए हुए भी पाये जाते हैं। इस भांति के सिक्के चन्द्रगुप्त (द्वितीय) और कुमारगुप्त (प्रथम) के है; संदिग्ध भाव से एक सिक्का स्कन्दगुप्त का भी बताया जाता है।"[3]

---

1. गुप्त परमेश्वरी लालः गुप्त सम्राज्य, पृ. 285—296
2. अहातेकर, अनन्त सदाशिव, दी क्वॉयनेज ऑफ दी गुप्ता एम्पायर, पृष्ठ 173—83
3. महाजन, वी.डी. प्राचीन भारत का इतिहास, पृ. 179

## धनुर्धर प्रकार

"इस कोटि की मुद्राओं का आदर्श चन्द्रगुप्त द्वितीय की धनुर्धर मुद्रायें थीं। ये पर्याप्त संख्या में निर्मित की गई थीं। इनके मुख भाग पर सम्राट बाईं ओर खड़े हैं। उनके दाहिने हाथ में बाण तथा बायें हाथ में धनुष है। इस ओर लेख 'महाराजाधिराजश्रीकुमारगुप्त' आता है। इनके पृष्ठ भाग पर देवी सर्वदा कमल के आसन पर बैठी दिखाई गई हैं। उनके दाहिने हाथ में पाश तथा बायें हाथ में कमल है।"[1]

"इस भाँति के सिक्कों पर शासक बायें हाथ में धनुष और दाहिने हाथ में बाण लिये दिखाये गये है। उनके बायीं ओर राज लांछन गरूड़ध्वज अंकित पाया जाता है। इस भाँति का आरम्भ समुद्रगुप्त के समय हुआ था और उसका अनुसरण उनके सभी उत्तरवर्ती शासकों चन्द्रगुप्त (द्वितीय) कुमारगुप्त (प्रथम) स्कन्दगुप्त, घटोत्कचगुप्त, कुमारगुप्त (द्वितीय), बुधगुप्त, वैन्यगुप्त, नरसिंह गुप्त, कुमार गुप्त (तृतीय), और विष्णु गुप्त ने किया है। हो सकता है, समुद्रगुप्त से भी पहले इस भाँति के सिक्के का आरम्भ चन्द्रगुप्त (प्रथम) के समय में हुआ हो और कुछ सिक्के, जिन्हें चन्द्रगुप्त द्वितीय का समझा जाता था,[2] चन्द्रगुप्त (प्रथम) के हो। किन्तु अभी तक इसका कोई स्पष्ट संकेत उपलब्ध नहीं हो पाया है। चन्द्रगुप्त (द्वितीय) और कुमारगुप्त (प्रथम) के इस भांति के सिक्कों की अनेक उप भाँतियाँ है। "उनमें वे विभिन्न मुद्राओं में दक्षिणाभिमुख अथवा वामाभिमुख अंकित किये गये हैं और उनके धनुष धारण करने के ढंग में भी विविधताएँ है तथा उनपर उनके नाम का अंकन भी किसी एक निश्चित स्थान पर नहीं हुआ है।[3]

## छत्रधारी प्रकार :

"इस वर्ग के सिक्के चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में बड़ी संख्या में प्रचलित किए गए थे। कुमारगुप्त के समय की इस प्रकार की मुद्रायें अब तक केवल दो लाख उपलब्ध हैं। ये बयाना निधि में प्राप्त हुई हैं। इससे लगता है, कि कुमारगुप्त के काल में ये अधिक लोकप्रिय नहीं थे। "बनावट की दृष्टि से ये चन्द्रगुप्त द्वितीय की छत्र मुद्राओं के ठीक अनुकरण हैं। इस कोटि की मुद्राओं के मुख भाग पर वामन,

---

1. अहतेकर, अनन्त सदाशिव, दी क्वॉयनेज ऑफ दी गुप्ता एम्पायर, पृ. 173–183
2. राय यू.एन. गुप्त सम्राट और उनका काल, पृ. 186
3. गुप्त परमेश्वरी लाल गुप्त साम्राज्य, पृ. 60

नौकर, सम्राट के सिर के ऊपर छत्र का आवरण किये हुए खड़ा है। इनके पृष्ठ भाग पर लम्बे नालयुक्त कमल के ऊपर आसीन देवी की आकृति अंकित की गई है। इसी ओर राजा की उपाधि 'श्रीमहेन्द्रादित्य' अंकित है।"

"उत्पताक (दण्डधर) भाँति की तरह ही इसमें वामाभिमुख राजा हवन कुण्ड में आहुति डालते हुए खड़े हैं, और उनका बाँया हाथ कमर में लटकती हुई तलवार की मूँठ पर है। राजा के पीछे कब्जक छत्र लिए हुए खड़ा है इस भाँति के सिक्के चन्द्रगुप्त (द्वितीय) और कुमार गुप्त (प्रथम) के हैं। अल्तेकर की धारणा है, कि यह सिक्का स्कन्दगुप्त का है किन्तु इन पंक्तियों के लेखक का अभिमत है, कि वह घटोत्कचगुप्त का है।"[1]

## सिंह निहन्ता प्रकार :

"इस कोटि की मुद्रायें चन्द्रगुप्त द्वितीय के सिंह निहन्ता प्रकार के सिक्कों के आदर्श पर निर्मित की गई थी। ये सिक्के दो वर्गो में विभक्त किये जा सकते है।

1. सिंह से खड़ी अवस्था में युद्ध करता हुआ।
2. सिंह को कुचलता हुआ।

पहली कोटि में मुद्रा लेख 'क्षितिपतिरजितमहेन्द्र कुमारगुप्तों दिंव जयति' (अर्थात अजेय महेंन्द्र कुमार गुप्त, जो पृथ्वी के स्वामी हैं, स्वर्ग को जीतते हैं) मिलता है।

एक दुर्लभ सिक्के पर चन्द्रगुप्त को तलवार से सिंह का सामना करते हुए दिखाया गया है।

# मौलिक सुवर्ण मुद्रायें

## खड्गधारी प्रकार–

"ये मुद्रायें नये प्रकार की थी। इस कोटि के सिक्के कुल मिलाकर 18 उपलब्ध हुये हैं। इनमें से दस बयाना निधि में सुरक्षित हैं। पटना में इस वर्ग की दो और मुद्रायें प्राप्त हुई थीं। मुख भाग पर सम्राट प्रभामण्डलयुक्त है, और दाहिने हाथ से बेदी पर आहुति छोड़ रहा है। इसी ओर सम्राट की विरूद्ध 'गामवजित्व सुचरितैः

---

1. गुप्त परमेश्वरी लाल गुप्त सम्राज्य, पृष्ठ 64–66

कुमारगुप्तो दिवं जयति' (पृथ्वी का विजय कर राजा पुण्य कर्मो के द्वारा स्वर्ग को जीतता है) उत्कीर्ण है। उनका बांया हाथ तलवार की मूँठ पर अवलंबित है। पृष्ठ भाग पर लक्ष्मी कमल पर आसीन है।"[1]

## गजारोही प्रकार

"इस वर्ग की कुल चार मुद्राएं प्राप्त हैं। इनमें से तीन बयाना निधि में प्राप्त हैं। तथा एक बंगाल में महानद नामक स्थान से उपलब्ध हुयी है। डा. अल्तेकर का कथन है, कि इस प्रकार की मुद्रायें सम्राट के आखेट जीवन से सम्बन्धित है। सम्राट स्वयं महावत का कार्य कर रहे हैं, तथा अपने हाथों में वह अंकुश लिये हैं। पीछे सेवक उनके ऊपर छत्र का आवरण किये हुए हैं। इनके पृष्ठ भाग पर लक्ष्मी कमल के ऊपर खड़ी है।"[2]

## गजारूढ़ सिंहनिहन्ता प्रकार

"इस कोटि की मुद्रायें कुल पाँच प्राप्त है। एक सिक्का पं. हीरानन्द शास्त्री को 1917 ई. में उपलब्ध हुआ था, जो कि लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित है। इनकी औसत तौल 127 ग्रेन के लगभग है। इसके मुख भाग पर सम्राट हाथी पर सवार तथा हाथ में कटार लिये हुए अंकित किया गया है। हाथी के सामने सिंह है। सिंह हाथी के अगले दाहिने पैर को काटने का प्रयत्न करता है। हाथी अपने बांयें पैर से सिंह को कुचलने की चेष्टा करता है। इनके पृष्ठ भाग पर प्रभामंडलयुक्त देवी की आकृति अंकित है। इस ओर लेख 'सिंहनिहन्ता महेन्द्रगजः (महेन्द्र गज सिंह का नाशक है) मिलता है।

राजा दाहिनी ओर बढ़ते हुए हाथी पर सवार खड्ग द्वारा आक्रमण के लिये तत्पर अंकित किये गए हैं। सामने की ओर से सिंह हाथी पर आक्रमण करने का प्रयास कर रहा है और हाथी उसे कुचलने की चेष्टा में है।[3]

## गैंडा निहन्ता प्रकार

"यह भी एक नवीन प्रकार है। बयाना निधि में इस कोटि के चार सिक्के हैं। इस प्रकार की एक मुद्रा लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित है। कला की दृष्टि से इस

---

1. राय. यू.एन. गुप्त सम्राट और उनका काल पृ. 287
2. गुप्त, परमेश्वरी लाल, गुप्त साम्राज्य, पृष्ठ 63
3. गुप्त, परमेश्वरी लाल, गुप्त साम्राज्य, पृष्ठ 287

कोटि के सिक्के अधिक महत्वपूर्ण है। इनके मुख भाग पर राजा घोड़े पर सवार तथा तलवार से गैंड़े को मारता हुआ प्रदर्शित किया गया है। इनके पृष्ठ भाग पर मकरवाहिनी गंगा की आकृति उत्कीर्ण है। इस ओर लेख 'श्रीमहेन्द्रखड्ग' आता है।[1]

## कार्तिकेय प्रकार

"इस कोटि की मुद्राथें भी सबसे पहले कुमारगुप्त के समय में प्रचलित की गईं। उनका कुमार नाम कार्तिकेय से सम्बन्धित है, अतएव उन्होंने इस प्रकार के सिक्कों के प्रवर्तन का विचार किया होगा। बयाना निधि में इस वर्ग के तेरह सिक्के उपलध हुए हैं। इनके मुख भाग पर राजा मयूर को खिलाते हुए प्रदर्शित किया गया है। पृष्ठ भाग पर कार्तिकेय अपने वाहन मोर पर आरूढ़ हैं। इस ओर लेख कि मयूर–वाही कार्तिकेय की अवधारणा गुप्तकालीन साहित्य में भी प्राप्त है। (मयूरपृष्ठाश्रयिणा गुहेन)।

इस पर राजा बामाभिमुख खड़े मयूर को कुछ खिलाते हुए आंकित हैं, इस भाँति के सिक्कों की पीठ कार्तिकेय है। कुमारगुप्त (प्रथम) ने इस सिक्कों को प्रचलित किया था।"[2]

3. *'परार्ध्यवर्णास्तरणोपपन्नमासेदिवाम्रत्नवदासनं सः।*

*ठभूयिष्ठमासीदुपमेयकान्तिर्मयूरप ष्ठा ।यिणा गुहेन।।*

*रघुवंश सर्ग 6, श्लोक 4*

## अप्रतिध प्रकार :

"यह कुमारगुप्त प्रथम का सिक्का है। इस पर मध्य में हाथ जोड़े हुए एक व्यक्ति खड़ा है। उसके दाये–बायें दो और व्यक्ति हैं। कुछ विद्वानों के मत में वे नारी आकृतियाँ हैं, अन्य उनमें से एक दो पुरूष मानते हैं। यह व्यक्ति समूह किस बात का प्रतीक है। अभी निश्चित नहीं किया जा सका है। हार्नले की धारणा थी, कि मध्य में बुद्ध की आकृति है। और दो उपासिकाएँ उनकी उपासना कर रही हैं। स्मिथ ने उन्हें राजा और उनकी पत्नियाँ माना है। 'अल्तेकर का कहना है कि, बीच

---

1. गुप्त, परमेश्वरी लाल, गुप्त साम्राज्य, पृष्ठ 289
2. अलन जान, कैट लॉग आफ द क्वॉयन्स आफ एन्शिएण्ट इण्डिया, लन्दन, पृ. 272

में कुमारगुप्त हैं, और अगल बगल के व्यक्तियों में एक तो रानी और दूसरा युवराज सेनापति है। श्रीधर वासुदेव सोहनी ने आरम्भ में इनमें कार्तिकेय और उनकी दो पत्नियों की कल्पना की थी। फिर उन्होंने कहा कि तारक से युद्ध करने जाने से पहले कुमार कार्तिकेय के कश्यप और आदिति के पास जाने का दृश्य है। अब उनका कहना है, कि इसमें कुमारगुप्त श्री (लक्ष्मी) और प्रताप (शक्ति) के मूर्त रूप के साथ अंकित किये गये हैं। जब तक इस प्रतीक के न्चारों ओर अंकित ;ध्न्अभिलेख का सन्तोषजनक पाठ उपलब्ध नहीं होता, इन मतों में से किसी के पक्ष विपक्ष में कुछ भी कठिन है।'"[1]

## रजत मुद्रायें

"कुमार गुप्त की रजत मुद्रायें अधिक संख्या में मिलती हैं। ये दो प्रकार की है।

1. पश्चिम भारतीय रजत मुद्रायें।
2. गंगा–घाटी की रजत मुद्रायें।

कुमारगुप्त ने सबसे पहले चाँदी के सिक्कों को गंगा की घाटी में प्रचलित किया था। इस समय साधारण क्रय–विक्रय में कम मूल्य वाले चाँदी के सिक्कों की उपयोगिता समझी गई, अतएव गंगा घाटी के लिये भी रजत मुद्राएँ प्रचलित की गई।"[2]

## पश्चिम देशी मुद्रायें

"इन मुद्राओं के आदर्श चन्द्रगुप्त के चाँदी के सिक्के थे। पृष्ठ भाग पर गरूड़ का चित्र तथा सात विन्दू समूह का चित्र प्रचलित रहा। ये मुद्रायें लेख की दृष्टि से दो प्रकार की हैं। पहले प्रकार में मुद्रा लेख 'परमभागवतमहाराजधिराजश्री कुमारगुप्तमहेन्द्रादित्य' मिलता है। दूसरे प्रकार में महाराजधिराज के स्थान पर सम्राट की उपाधि केवल 'राजाधिराज' प्राप्त है।"[3]

## दण्डधर अथवा उत्पताका प्रकार भाँति

"यह भाँति धनुर्धर भाँति से बहुत कुछ मिलता हुआ है। इस भाँति के सिक्कों

---

1. अलन जान, कैट लॉग आफ द क्वॉयन्स आफ एन्शिएण्ट इण्डिया, लन्दन, पृ. 286
2. अलन जान, कैट लॉग आफ द क्वॉयन्स आफ एन्शिएण्ट इण्डिया, लन्दन, पृ. 289
3. अलन जान, कैट लॉग आफ द क्वॉयन्स आफ एन्शिएण्ट इण्डिया, लन्दन, पृ. 289–292

पर शासन वामाभिमुख खड़े और बायें हाथ में पताकायुक्त लम्बा दण्ड ( जिसे लोगों ने बल्लभ या भाला, दण्ड अथवा राजदण्ड कहा है) लिये और दाहिने हाथ से हवन कुण्ड में आहुति डालते दिखाया गया है। बायीं ओर गरूड़ ध्वज अंकित है। यह भाँति उत्तरवर्ती कुषाणों के सिक्कों का अनुसरण सा प्रतीत होता है। यह समुद्रगुप्त के शासनकाल का प्रमुख सिक्का है।चन्द्रगुप्त (द्वितीय) ने भी इसी भाँति के सिक्के चलाये थे। पर उनके नाम से अंकित इस भाँति का अब तक केवल एक ही सिक्का ज्ञात हो सकता है। जो भारत कला भवन, काशी में है। बहादुर चन्द छाबड़ा की धारणा है, कि वह चन्द्रगुप्त ( प्रथम) का सिक्का है पयेकासीन राज दम्पत्ति भाँति के चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के कहे जाने वाले सिक्कों पर भी अंकन अल्तेकर के अनुसार चित और पट पाया जाता है।[1]

## चक्रध्वज प्रकार

यह उत्पादक भाँति के समान ही है; अन्तर केवल इतना ही है। कि इस भाँति में शासन के हाथ में दण्ड के स्थान पर चक्रध्वज है। अर्थात दण्ड के स्थान पर चक्रध्वज है अर्थात् दण्ड के ऊपर चक्र है। इस भाँति के सिक्के केवल कांचगुप्त के होते हैं।

1. 'स्टैण्डर्ड टाइप' को सामान्य दृष्टि से दण्डधर भाँति कहा जा सकता है; पर रायकृष्णदास ने इसके लिये उत्पताक भाँति नाम सुझाया है जो अधिक आकर्षक होने के साथ साथ उस विवाद से मुक्त है जो 'स्टैण्डर्ड' के नाम के पीछे है।

## कृतान्त–परशु भाँति

इस भाँति में शासक बायें हाथ में दण्ड के स्थान पर परशु धारण किये दिखाये गये हैं और उनके सामने एक कुब्जक खड़ा है; दोनों के बीच में चन्द्र ध्वज अंकित है। इस भाँति के सिक्के केवल समुद्रगुप्त के हैं।

## राज–दम्पत्ति भाँति

"इस भाँति के सिक्कों पर राजा और रानी आमसने सामने खड़े दिखाये गये हैं। रानी बायें और राजा दाहिने हैं। राजा के दाहिने हाथ में कोई वस्तु है, जिसकी पहचान नहीं हो पायी है उसे वह रानी को दिखारहा है और रानी उसे ध्यान से देख

---

1. गुप्त, परमेश्वरी लाल, गुप्त साम्राज्य, पृ. 142

रही है। राजा के बायें हाथ में चन्द्रध्वज है। इस भाँति के सिक्के चन्द्रगुप्त(प्रथम) के हैं; किन्तु अनेक विद्वानों का मत है, कि उसे समुद्रगुप्त ने अपने माता–पिता की स्मृति में स्मारिका स्वरूप प्रचलित किया था।[1]

"इसी भाँति के सिक्के कुमारगुप्त (प्रथम) और स्कन्दगुप्त ने भी प्रचलित किये थे कुमारगुप्त का इस भाँति का केवल एक सिक्का बयाना दफीने से प्रकाश में आया है स्कन्दगुप्त वाले सिक्के काफी मिलते हैं। कुमारगुप्त वाले सिक्के पर खड्गहस्त भाँति की तरह ही कुमारगुप्त कटि स्थित खड्ग की मूँठ पर हाथ रखे हुए हैं। स्कन्दगुप्त के सिक्कों पर राजा धनुष लिये बांयी ओर खड़े हैं। और रानी उनके सामने हाथ में सम्भवतः शुक लिये खड़ी है। एलन और अल्तेकर की धारणा है, कि नारी आकृति रानी की न होकर लक्ष्मी की है; किन्तु उनमें देवत्व के कोई चिन्ह नहीं है जिसके कारणा उनका मत ग्राह्य नहीं है।

## पर्येकासीन राज दम्पत्ति भाँति

इस भाँति में राज दम्पत्ति पर्यक पर आमने सामने बैठे हैं। अल्तेकर के मतानुसार राजा रानी को सिन्दूरदानी भेंट कर रहे हैं। इस भाँति के सिक्के के दूसरी ओर उत्पताक भाँति का अंकन है।राज दम्पत्ति (खड़े ) और दण्डधर राजा दोनों ही प्रतीक सिक्कों के चित और पट प्रतीत है। दोनों प्रतीकों का इस प्रकार एक साथ एक ही सिक्के पर मिलना असाधारण है। इस भाँति के अब तक केवल तीन सिक्के ज्ञात है दो तो भारत कला भवन (वाराणसी) में और तीसरा राष्ट्रीय संग्रहालय (नई दिल्ली) में है। समझा जाता है, कि ये सिक्के चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के है; किन्तु आश्चर्य नहीं यदि ये चन्द्रगुप्त (प्रथम) के भी हो सकते है।

## पकर्ये भाँति

इस भाँति के सिक्कों पर पर राजा नग्न शरीर पकर्ये पर बैठे हैं और उनके हाथ में पुष्प सदृश कोई वस्तु है। इस भाँति के सिक्के एकमात्र चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के हैं।

---

*कनिंघम की धारणा रही है, कि राजा रानी को फूल दे रहे हैं (1 जून 1891 का रैप्सन के नाम पत्र जो ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित है); एलन उसे अंगूठी या कंकण बताते हैं, और अल्तेकर के मत में वह सिन्दूरदानी है। किन्तु सोहोनी ने इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट किया है, कि रानी को कटिविनयस्त भंगिमा से ऐसा नहीं प्रतीत होता, कि वह कोई वस्तु लें रही है। वस्तुत वे किसी को ध्यान से देख रही है।*

---

1. राधा कुमुद मुखर्जी–गुप्त एम्पायर, पृ. 33

## खडगी–निहन्ता भाँति

"इस भाँति के सिक्कों पर राजा घोड़े पर सवार गैड़े पर तलवार से आक्रमण करते अंकित किये गये हैं। यह भाँति भी दो प्रकर की है अश्वारोही और सिंह निहन्ता का संयोग है। अन्तर इतना ही है, कि सिंह के स्थान पर गैड़ा है। यह भी कुमारगुप्त (प्रथम) का सिक्का है।

## अश्वारोही सिंह–निहन्ता भाँति

यह उपर्युक्त भाँति का ही एक दूसरा रूप है। इसमें घोड़े पर सवार राजा दाहिने हाथ में तलवार लिए आक्रमणकारी सिंह का सामना करने के निमित झुके हुए दिखाये गये है। इसे गुप्त वंश के किसी परवर्ती राजा ने प्रचलित किया था, जिसका नाम अब तक ज्ञात नहीं हो सका है। सिक्कों पर केवल उसका विरूद्ध प्रकाशादित्व उपलब्ध है।"[1]

1. ब्रि.म्यू. सू.गु.ब.भूमिका, पृ.100

2. क्वायनेज ऑफ द गुप्त एम्पायर, पृ. 249

## चक्रविक्रम भाँति

"बयाना में इस भाँति का अकेला सिक्का प्राप्त हुआ है। उस पर चक्रपुरूष (विष्णु के आयुध चक्र का मानव रूप )अथवा स्वयं विष्णु अण्डाकार प्रभामण्डल के बीच दक्ष्झिणाभिमुख खड़े हैं। उनके बायें हाथ में गदा और ऊपर उठे दाहिने हाथ में तीन गोल वस्तुएं हैं, जिन्हें वे सामने खड़े दाहिना हाथ आगे बढ़ाए हुए राजा को दे रहे हैं। राजा का बांया हाथ कमर में लटकती हुई तलवार की मूँठ पर है। यह सिक्का चन्द्रगुप्त (द्वितीय) का समझा जाता है।"[2]

---

1. *हार्नले ने इसके सुरा–पात्र होने की कल्पना की है।*
2. *किन्तु अल्तेकर और हार्नले दोनों की धारणाएं गलत है। जिसे इन लोगों ने सुरापात्र अथवा सिन्दूरदानी समझा है। वह वस्तुतः चन्द्र–ध्वज का ऊपरी हिस्सा है, जिसका दण्ड भाग राजा के हाथ के पीछे छिप गया है। राजा खाली हाथों है और लगता है कि वह रानी को कोई बात समझा रहे हैं वार्ता रत है।*
3. *यह नाम राय कृष्णदास ने सुझाया है। वीणावादक नाम इस प्रतीक के भौतिक रूप का बोधक है और ललित गन्धर्व नाम से उसके सौन्दर्य का बोध होता है।*

---

1. गुप्त परमेश्वरी लाल–गुप्त साम्राज्य, पृ. 63
2. गुप्त परमेश्वरी लाल–गुप्त साम्राज्य, पृ. 64

## कार्तिकेय अथवा मयूर भाँति

इस पर राजा वामाभिमुख खड़े मयूर को कुछ खिलाते हुए अंकित है; इस भाँति के सिक्कों की पीठ पर कार्तिकेय कुमारगुप्त (प्रथम) ने इस सिक्कों को प्रचलित किया था।

गुप्त शासकों के सोने के सिक्कों के पट और अंकित प्रतीकों को अभी तक देवी या लक्ष्मी कहा जाता रहा है; उन्हें निम्नलिखित रूप से वर्गीकृत किया जा सकता है।

## 1. सिंहासनासीन देवी

"उत्तरवर्ती कुषाण सिक्कों के पीठ की ओर देवी अरदोषों, ऊँचे सिंहासन पर बैठी बायें हाथ में विषाण (कार्नुकोपिया) और दाहिने हाथ में पाश लिये अंकित पायी जाती है। वहीं आकृति बिना किसी परिवर्तन के समुद्रगुप्त के उत्पताक, धनुर्धर, कृतान्त–परशु भाँति के और चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के धनुर्धर (वर्ग1) और उत्पाताक भाँति के सिक्कों पर मिलती है। साथ ही, इन राजाओं के कुछ अन्य सिक्कों पर इस आकृति में कुछ थोड़ा सा हेर–फेर इस प्रकार मिलता है।[1]

1. "समुद्रगुप्त के कृतान्त–परशु भाँति और चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के धनुर्धर भाँति के सिक्कों पर देवी के बायें हाथ में विषाण (कार्नुकोपिया) के स्थान पर कमल पाया जाता है। इस प्रकार इन सिक्कों पर देवी का भारतीयीकरण किया गया है।

2. कुछ सिक्कों पर देवी के बायें हाथ में विषाण तो ज्यों का त्यों है; दाहिने हाथ में पाश का अभाव है, अर्थात वह खाली है।

3. चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के पर्यक भाँति के सिक्कों पर देवी के बायें हाथ में विषाण (कार्नुकोपिया) के स्थान पर कमल है और दाहिने हाथ में पाश का अभाव है। अर्थात वह खाली है।

सम्भवतः इन परिवर्तनों का उल्लेख कम से कम परिवर्तन के साथ अरदोक्षों को लक्ष्मी के रूप में व्यक्त करना रहा है।

---

1. गुप्त परमेश्वरी लाल–गुप्त साम्राज्य, पृ. 65

## 2. कमलासना देवी

"चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के समय में अरदोक्षों के प्रतीक ने क्रमशः लक्ष्मी का पूर्ण भारतीय रूप धारण कर लिया; अर्थात सिक्कों पर देवल कमल पर आसीन बायें हाथ में कमल लिये दिखाई जाने लगीं; किन्तु वे अपने दाहिने हाथ में पूर्ववत् पाश धारणा करती रही। देवी का यह रूप चन्द्रगुप्त(द्वितीय) और कुमार गुप्त (प्रथम) के धनुर्धर भाँति के अधिकांश सिक्कों तथा अन्य परवर्ती शासकों के सभी सिक्कों पर मिलता है। किन्तु कुछ अवस्थाओं में इन सिक्कों पर दाहिने हाथ के पाश के स्थान पर निम्नलिखित रूप दिखलायी पड़ता है।

1. खाली हाथ–कुमारगुप्त (प्रथम), अप्रतिध भाँति
2. हाथ में फूल– कुमारगुप्त (प्रथम), धनुर्धर भाँति के कुछ सिक्के
3. सिक्के बिखेरती हुई–चन्द्रगुप्त (द्वितीय) और कुमारगुप्त (प्रथम), धर्नुधर भाँति के कुछ सिक्के।

"देवी के इस रूप के अंकन में हाथ पैर की भंगिमा में भी कुछ विविधता पायी जाती है। उसका हाथ या तो ऊपर को उठा या कटिविनयस्थ या जंघविनयस्थ मिलता है। इसी प्रकार, सामान्यतया तो वे पद्मासन मुद्रा में बैठी मिलती है, पर कुछ सिक्कों पर वे अर्ध पर्यंक मुद्रा में एक पैर नीचे लटकाये दिखायी देती है। इस प्रकार हाथ पैर की भंगिमाओं और हाथ के आयुधों की विधिता के आधार पर इस भाँति के सिक्कों के उपभाँतियों की बहुत बड़ी संख्या है। इस भाँतियों और उपभाँतियों का कोई सार्थक महत्व है अथवा वे ठप्पा बनाने वालों की कौतुकपूर्ण मनोवृत्ति के द्योतक है, कहना कठिन है।[1]

## खड़ी देवी

"कुछ सिक्कों पर देवी अपने दोनों रूपों अरदोक्षों (अर्थात विषाण लिये हुए) और लक्ष्मी ( अर्थात कमल लिये हुए) में खड़ी दिखीय पड़ती है। खड़ी अरदोक्षों के रूप में वे कांचगुप्त के सिक्कों पर देखी जाती है। वहाँ वे दांये हाथ में विषाण और दाहिने हाथ में पाश अथवा फूल लिये हैं। खड़ी लक्ष्मी के रूप में वे चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के छत्र, अश्वरोही और चक्रविक्रम भाँति और कुमारगुप्त (प्रथम) के छत्र,गजारूढ़ और गजारूढ़ सिंह निहन्ता भाँति पर पायी जाती है। इन सिक्कों पर

---

1. गुप्त परमेश्वरी लाल–गुप्त साम्राज्य, पृ. 67

वे विभिन्न भंगिमाओं में – सम्मुखाभिमुख, बांयीं ओर तिरछे अथवा वामाभिमुख पायी जाती है।[1]

## 4. मंचासीन देवी

अरदोक्षों और लक्ष्मी दोनों ही सरकण्डे की बनी मचिया पर बैठी पायी जाती है। अरदोक्षें के इस रूप में वे समुद्रगुप्त के वीणा वादक भाँति; और लक्ष्मी रूप में चन्द्रगुप्त (द्वितीय) और कुमारगुप्त (प्रथम) के अश्वारोही भाँति पर देखी जाती है। सामान्यतः उनके दाहिने हाथ में पाश रहता है पर कुछ सिक्कों पनर वे या तो खाली हाथ हैं या फिर मयूर को चुगाती हुई है।

## 5. सिंहवाहिनी देवी

चन्द्रगुप्त (प्रथम) के राज दम्पत्ति भाँति और चन्द्रगुप्त (द्वितीय) तथा कुमारगुप्त (प्रथम) के सिंहनिहन्ता भाँति पर सिंहवाहिनी देवी का अंकन मिलता है। चन्द्रगुप्त (प्रथम) के सिक्कों पर वे बाये हाथ में विषाण और दाहिने हाथ में पाश लिये हैं। इस प्रकार इन पर वे सिंहवाहिनी अरदोक्षों है सिंहवाहिनी अरदोक्षों एक उत्तरवर्ती कुषाण शासक –सम्भव कनिष्क (तृतीय) के सिक्के पर मिलती है। हो सकता है, इसी सिक्के की अनुकृति गुप्त सिक्कों पर की गयी हो।

"चन्द्रगुप्त (द्वितीय) और कुमारगुप्त (प्रथम) के सिक्कों पर उनके बायें हाथ में कमी और दाहिने हाथ में या तो पाश श मुण्ड माला होता है या फिर वह खाली रहता है। कुछ सिक्कों पर वे सिक्के बिखेरती हुई भी अंकित पायी जाती है। अपने इन रूपों में उन्हें दुर्गा या 'अम्बिका' कहा जा सकता है।

## 6. जल–जन्तु वाहिनी देवी

समुद्रगुप्त के व्याध्र–निहन्ता भाँति के सिक्के पर बायें हाथ में खिला हुआ कमल और दाहिना खाली हाथ आगे बढ़ाये मीन मुख मकर पर खड़ी देवी का अंकन है। कुमारगुप्त (प्रथम )के व्याध्र निहन्ता भाँति पर वे मयूर को चुगाती हुई मकर पर खड़ी हैं। उनके खड्गी–निहन्ता भाँति पर वे हस्तिमुख मकर पर, जिसके सूँड में कमलनाल है, खड़ी हैं। इस स्थिति में वो खाली हाथ हैं, और उनका बॉया हाथ नीचे को गिरा है और दाहिने हाथ से वे किसी वस्तु की और इंगित कर रही हैं। उनके पीछे छत्र धारिणी दासी खड़ी है।

---

1. अब इस भांति के केवल एक सिक्के पर देवी खड़ी पायी गयी है। (5.न्यू. सो.इ. 15 पृ. 80)

"स्मिथ का कहना है, कि समुद्रगुप्त के सिक्कों पर देवी का जल जन्तु वाहन इस बात का द्योतक है, कि वे समुद्र देवता वरूण की पत्नी है। देवता का संकेत राजा के समुद्र नाम से प्राप्त होता है। उनका यह भी कहना था, कि वे रति भी हो सकती हैं क्योंकि उनका वाहन भी एक प्रकार का मीन अथवामकर है। गुप्त कालीन कला में गंगा यमुना की प्रधानता के आधार पर अल्तेकर का अनुमान है, कि इन सिक्कों पर मकरवाहिनी गंगा का अंकन है। ये सभी अनुमान समुद्रगुप्त के सिक्कों पर अंकित प्रतीक पर समान रूप से घटित किए जा सकते हे।। पर वे कुमानगुप्त प्रथम के सिक्कों के अंकन पर घटित हो सकता हैं। इनमे सन्देह है । मूर्तिशास्त्रों में किसी भी देवी के मयूर चुगाते हुए रूप का अंकन नहीं है; यह उनके देवी रूप मानने में सबसे बड़ी बाधा है। व्याघ्र निहस्ता भाँति का अंकन, कार्तिकेय भाँति का जिसमें राजा मयूर चुगाते अंकित है) और खड्सी निहस्ता भाँति छत्र भाँति का (जिसमें कुब्जक राजा के ऊपर छत्र लगाये हैं।) स्मरण दिलाता है। इनको दृष्टि में रखते हुए अधिक सम्भावना इस बात की जान पड़ती है, कि यह प्रतीक देवी का न होकर रानी का है।

## 7. खड़ी हुई रानी

समुद्रगुप्त और कुमारगुप्त (प्रथम) के अध्यमेघ भाँति के सिक्कों पर दाहिने कन्धे पर चामर रखे खड़ी नारी का अंकन है। अश्वमेघ यज्ञ में रानी द्वारा अश्वमेघ के घोड़ों को नहलाने और पंखा करने का विधान है; इस कारण समझा जाता है, कि इन सिक्कों पर रानी का अंकन हुआ है।

## 8. पर्यङ्कासीन रानी

चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के पर्येकासीन भाँति और कुमारगुप्त (प्रथम) के वीणा वादक भाँति पर एक नारी पर्येक पर बैठी दिखाई गयी है। उसके दाहिने हाथ में पुष्प है और बायें हाथ को वह पर्येक पर टेके हुए है। भारतीय कला में देवी का अंकन इस रूप में अज्ञात है, इस कारण सम्भवतः यह रानी का अंकन है। वीणा वादक भाँति पर इस अंकन की समभावना अल्तेकर स्वीकार करते है।

## 9. कार्तिकेय

कुमारगुप्त के उन सिक्कों पर जिन्हें अल्तेकर ने कार्तिकेय भाँति और एलन ने मयूर भाँति का नाम दिया है।

कार्तिकेय बायें हाथ में शक्ति धारण किए मयूर पर सवार अंकित किए गये है।

# चन्द्रगुप्त प्रथम

"चित ओर की आकृति के चारों ओर मिलने वाला अभिलेख चन्द्रगुप्त (प्रथम) के सिक्कों पर नहीं हे। उन पर राजा के बायी काँख के नीचे चीनी ढंग पर दो आड़ी पंक्तियों में चन्द्रगुप्त का नाम हे। नाम की दोनों पंक्तियों के बीच ध्वज या दण्ड विभाजन रेखा के रूप में है। रानी के सिर के ऊपर 7 और 9 के बीच उनका नाम श्री कुमार देवी अथवा कुमार देवी श्री अंकित है। यहाँ यह दृश्य है, कि श्री का प्रयोग केवल रानी के लिए हुआ है, राजा के लिए नहीं।

"इन सिक्कों पर पट पर दाहिनी तरफ लिच्छवयः अंकित है। समुद्रगुप्त और उनके उत्तराधिकारियों के जितने भी सिक्के मिलते है उनपर पट और सदैव उनका विरूद्ध अथवा नाम व्याकरण की दृष्टि से कर्त्ताकारक और एकवचन में ही मिलता है। और उसका यही तात्पर्य होता है, कि सिक्के को राजा ने जिसका नाम अथवा विरूद्ध सिक्के पर अंकित है। उसे प्रचलित किया इन सिक्कों पर भी लेख कर्त्ताकारक में ही है, किन्तु वह बहुवचन में है यह एक असाधारण सी बात है। इसका सीधा सादा अर्थ तो यह हुआ कि इन सिक्कों को किसी एक अथवा दो व्यक्तियों ने नहीं, वरन लिच्छवि नामक एक जन समूह ने किया।"[1]

---

*अभी हाल में इस भाँति का एक सिक्का प्रकाश में आया है(ज.न्यू.सो.इ.पृ. 202)*

*अल्तेकर ने पहले इसे मोदक बताया है पृ. 103*

*सी. शिवराममूर्ति ने इन्हें राजशक्ति के तत्व प्रभु शक्ति मन्त्रशक्ति ओर उत्साह शक्ति बताया है।*

*अल्तेकर ने उसके इस सुझाव को मान लिया है।*

*(क्वायनेज आफ द गुप्त एम्पायर, पृ. 149)*

*हरिहर त्रिवेदी का कहना है, कि वे त्रैलोक्य के द्योतक है।*

*(जत्रन्यू. सो.इ. पृ. 108)*

*राय गोविन्द चन्द का कहना है कि वे देवलोक, मृत्युलोक ओर नागलोक के प्रतीक है।*

*(ज.न्यू.सो.इ. पृ. 263)*

*चित और प्रतिक के आधार पर एलन ने इसे मयूर भाँति और अल्तेकर ने पट ओर के आधार पर कार्तिकेय नाम दिया है। दोनों ही नाम के समान रूप से उपयुक्त है।*

---

1. राय, उदयनारायण–गुप्त सम्राट और उनका काल, पृ. 184

"सर्वविदित है, कि गुप्त–काल के आरम्भिक दिनों में गंगा के उत्तर लिच्छवि नामक एक शक्तिशाली जन समूह था; उसका गुप्तों के साथ घनिष्ट सम्बन्ध था। यह गुप्त अभिलेख में समुद्रगुप्त के लिए प्रयुक्त लिच्छवि दौहित्र शब्द से प्रकट होता है। पर उन्होंने गुप्त वंशी राजा के इन सिक्कों को राजनीतिक सत्ता के रूप में प्रचलित किया होगा। यह विश्वसनीय नहीं है, और समाधान अपेक्षित है। इसका समाधान लोगों ने नाना प्रकार से करने की चेष्टा की है, पर अब तक उनमें कोई भी सन्तोषजनक नहीं है।

समुद्रगुप्त "समुद्रगुप्त के उत्पताक, धनुर्धर और कृतान्त परशु भाँति के सिक्कों पर राजा का नाम बाशं काँख के नीचे समुद्र अथवा समुद्रगुप्त रूप में लिखा है। इन दोनों रूपों के नाम उत्पताक और कृतान्त परशु भाँति के सिक्कों पर मिलता है, धनुर्धर और कृतान्त परशु भाँति के सिक्कों पर मिलता है, धनुर्धर भाँति पर केवल समुद्र पाया जाता है। जहाँ पूरा नाम है, वहाँ दो पंक्तियों में समुद्र और गुप्त के रूप में विभक्त है।

"कृतान्त–परशु भाँति के कुछ सिक्कों पर समुद्र और समुद्र गुप्त के स्थान पर 'कृ' अंकित है। इसे लोगों ने कृतान्त परशु का जिसका प्रयोग पट और विरूद्ध के रूप में हुआ है, संकेत माना है। अन्यत्र न तो समुद्रगुप्त का और न इस वंश के किसी अन्य राजा का कोई विरूद्ध इस प्रकार संक्षिप्त रूप में चित के रुप में जाता है और न समुद्रगुप्त के किसी अन्य भाँति के सिक्कों पर ही 'कृ' का प्रयोग हुआ है, इस प्रकार यह एक असाधारण सी बात है और समुचित समाधान की अपेक्षा रखता है।"

समुद्रगुप्त के प्रत्येक भाँति के दोनों सिक्कों पर चित ओर के किनारे का अभिलेख और पट ओर का विरूद्ध अलग अलग ढंग के, इस प्रकार है:–

## 1. उत्पकाक भाँति

चित और समर –शत वितत–विजयों जित रिपुरिजो दिव जयति। पट और पराक्रम।

## 2. धनुर्धर भाँति

चित और अप्रतिरयों विजित्य क्षिति सुचीरितैर (अथवा अवनीशों) दिंव जयति। पट ओर अप्रतिरथः।

### 3. कृतान्त परशु भाँति

चित और कृतान्तपरशुर्जयत्यजितराजणेता पट और कृतान्तिपरशुः।

### 4. अश्वमेध भाँति

चित और राजाधिराजः पृथ्वीभविस्वा (अथवा विजित्य)दिंव जयत्याहृत बाजिमेघः। पट और अश्वमेघ पराक्रमः

### 5. व्याघ्र निहन्ता भाँति

इस भाँति के सिक्कों पर आकृति को घेरता हुआ न तो कोई लम्बा अभिलेख है, और न शासक का का नाम। दाहिनी ओर केवल व्याध्रपराक्रमः विरूद्ध अंकित है। यही विरूद्ध इस भाँति के कुछ सिक्कों पर पट और भी पाया जाता है। अन्य पर पट और राजा का नाम राजा समुद्रगुप्तः है।

### 6. गन्धर्व ललित

(वीणावादक) भाँति चित और महाराजधिराज श्री समुद्रगुप्त। पट और समुद्रगुप्त।"[1]

## काचगुप्त

कांचगुप्त का सिक्का केवल एक भाँति–चक्रध्वज भाँति का है, उस पर चित ओर काचोगामवजित्य दिंव कर्मभिरूतमैर्ज्जयति और पट ओर सर्वराजोच्छेता विरूद्ध है। सर्व राजोच्छेता विरूस्द्ध महाशाक्तिशाली शासक का द्योतक है, इस कारण अनेक विद्वान यह मानने में असमर्थ हैं, कि समुद्रगुप्त के अतिरिक्त किसी अन्य शासक ने इस सिक्के को प्रचलित किया होगा। उनका कहना है, कि समुद्रगुप्त को उसके उत्तराधिकारियों ने सर्वराजोच्छेत्ता कहा है।"

---

1. *सिक्कों के चारों ओर के लेखों के आरम्भ होने का संकेत इस ग्रन्थ में सर्वत्र घड़ी के घण्टों के स्थान के अनुसार किया गया है।*
2. *ज.न्यू.सो.इ. 17 पृ1. 17,18,19, पृ. 139*
3. *जिस सिक्के पर इस प्रकार नाम के लिखे होने की बात कही जाती है, उसका न तो पूरा परिचय प्राप्त है। और न वह चित्रित ही किया गया है।*

---

1. राय, उदयनारायण–गुप्त सम्राट और उनका काल, पृ. 191

## चन्द्रगुप्त द्वितीय

"धनुर्धर, उत्पताक और पर्यङ्कासीन राजदम्पत्ति भाँति के सिक्कों पर राजा का नाम इस प्रकार अंकित मिलता है।

1. उत्पताक भाँति के एकमात्र सिक्के पर आड़ा एक पंक्ति में चन्द्रगुप्त
2. धनुर्धर भाँति के एक अति दुंलर्भ सिक्के पर दो पंक्तियों में विभक्त चन्द्र और गुप्त!
3. उपर्युक्त दो सिक्कों के अतिरिक्त सभी धनुर्धर भाँति और पर्यङ्कासीन राजदम्पत्ति भाँति के सिक्कों पर चन्द्र; चित की ओर अंकित लम्बा अभिलेख गद्य और पद्य दोनों रूप में पाया जाता है।

### 1. देव श्री महाराजधिराज श्री चन्द्रगुप्त

धनुर्धर और सिंह निहन्ता भाँति (उपभाँति 3ब)

### 2. देव श्री महाराजधिराज श्री चन्द्रगुप्तस्य

पर्येक भाँति (ब और द उपभाँति)

### 3. देव श्री महाराजधिराज श्री चन्द्रगुप्तस्य विक्रमादित्यस्य

पर्येक भाँति (अ उपभाँति)

### 4. परमभागवत महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्त

पर्येक और अश्वरोही भाँति!

### 5. महाराजधिराज श्री चन्द्रगुप्त

छत्र (एक उप भाँति) सिंहनिहन्ता( उपभाँति 3ब) पर्येक (उपभाँति स भाँति)"[1]

### 1. चरेन्द्र चन्द्रः प्रथित रणे जयत्यजेयो भुवि सिंह विक्रमः

सिंहनिहन्ता भॉति (अ भॉति 3 अ और ब छोड़कर)

---

*1. यहाँ तथा इस ग्रन्थ में सर्वत्र अल्तेकर के 'कायनेज आफ गुप्त इम्पायर' में दिये गये वर्गीकरण का उल्लेख हुआ है।*

---

1. "ज.न्यू. सो.इ.18. पृष्ठ,54–55

2. क्षितिमपजित्य सुचरितैर्दिव जयति विक्रमादित्य

छत्र भाँति (अ भाँति 2)

3. रथिमथोऽ(तिर) थ प्रवरः क्षितौ

पर्येकासीन राजदम्पत्ति भाँति के एक सिक्के पर यह अल्तेकर का अनुमानित पाठ है। उनका कहना है, कि यह लेख दुतविलम्बित छन्द में है और यह उसका केवल एक पद है।

प्ररथमथा "(धिरूह्वा) क्षितिमभिपता(दिव जयति)

इसे अल्तेकर ने मंचासीन राजदम्पत्ति भाँति के एक दूसरे सिक्के पर पढ़ा है ये पाठ अभी अनिश्चित ही है!

5. वसुधा विजित्य जयति त्रिदिवं पृथ्वीश्वरः(पुण्यैः)

उत्पताक भाँति चक्र विक्रम भाँति पर कोई अभिलेख चित ओर नहीं है। चन्द्रगुप्त द्वितीय के सिक्कों के पट ओर के विरूद्ध निम्नलिखित है।

| | | |
|---|---|---|
| श्री विक्रमः | – | धनुर्धर, पर्येक, पर्येकासीन, राजदम्पत्ति भाँति |
| सिंह विक्रम | – | सिंह निहस्ता भाँति |
| अजित विक्रम | – | अश्वरोही भाँति |
| चक्र विक्रम | – | चक्र विक्रम भाँति |
| विक्रमादित्य | – | छत्र और पर्येक भाँति |
| परमभागवत | – | उत्पताक भाँति0ऋ4 |

अन्तिम विरूद्ध को छोड़कर कोई सभी राजा के शौर्य के द्योतक है। अन्तिम विरूद्ध उनकी धार्मिक प्रवृत्ति का प्रतीक है; इस प्रकार यह सिक्कों पर पायी जाने वाली विरूद्धों की परम्परा से यह सर्वथा भिन्न है। धनुर्धर भाँति (उपभाँति) पर विरूद्ध के स्थान पर राजा का राम चन्द्रगुप्त है।

## कुमारगुप्त (प्रथम)

कुमार गुप्त (प्रथम) के धनुर्धर भाँति के केवल एक उपभाँति पर बायें काँख के नीचे (कुमार) लिखा मिला है। अन्यथा, उसने धनुर्धर भाँति के एक दूसरे उपभाँति खडगहस्त और व्याघ्र निहन्ता भाँति के सिक्कों पर अपने नाम का केवल प्रथम अक्षर

'क' का प्रयोग किया है। अन्तिम दो भाँतियों पर पट और उनका पूरा नाम मिलता है।

खड्ग–हस्त भाँति पर 'श्री कुमारगुप्त' और व्याघ्र निहन्ता भाँतित पर 'कुमारगुप्तोधिराज राजा'! धनुर्धर भाँति के तीसरे उपभाँति पर उन्होंने अपना नाम कहीं भी नहीं दिया है। अप्रतिद्य भाँति के सिक्कों पर बीचवाली आकृति के दोनों ओर पूरा नाम 'कुमारगुप्त' दो आड़ी पंक्तियों में अंकित है। पहली पंक्ति 'कुमार' दाहिनी ओर ऊपर से नीचे की ओर आती है और दूसरी पंक्ति 'गुप्त' उसी क्रम में बायीं ओर नीचे से ऊपर की ओर जाती है। अन्य भाँति के सिक्कों पर नाम है ही नहीं।

चित और गद्यात्मक और पद्यात्मक दोनों प्रकार के लेख मिलते है। गद्यात्मक लेखों की संख्या केवल तीन है:– छन्दोबद्ध लेख इक्कीसय है। गद्यात्मक लेख निम्नलिखित है।

1. **महाराजधिराज श्री कुमारगुप्त**

धनुर्धर (उपभाँति!और 2अ) और ललित गर्न्धव भाँति।

2. **परम राजाधिराज श्री कुमारगुप्त**

धनुर्धर भाँति(उपभाँति 4अ)

3. **श्रीमां व्याघ्रवल पराक्रमः व्याध्रीनहन्ता भाँति छन्दोपद्ध लेख इस प्रकार है।**

1. **गुणेशों महीतलम् जयति कुमार (गुप्त)**

धनुर्धर भाँति (उपभाँति 2ब) यह लेख अधूरा है और नये सिक्के प्राप्त होने पर ही उसका पूरा पाठ सम्भव है।

2. **जयति महीतलम् श्री कुमार गुप्त**

धनुर्धर भाँति (उपभाँति 3ब और 4ब)।

3. **जयति महीतलम् श्री कुमारगुप्त सुधन्वी**

धनुर्धर भाँति (उपभाँति 3स)!

---

1. *सम्भवतः यही लेख छ भाँति के सिक्कों पर भी होगा। उसके केवल 3 सिक्के (2 बयाना दफीने में और 1अमेरिकन न्यूमिस्मेटिक सोसाइटी के संग्रह में) अब तक ज्ञात है, और उन तीनों पर केवल आरम्भिक अंश 'जयति महीतल' प्राप्त है।*

4 पृथ्वीतलाम्बराशीश कुमारगुप्तो जयत्यजित:

अश्वरोही भाँति (उपभाँति 1अ)

5. विजितावनिरवनिपति: कुमारगुप्तो दिंव जयति:

धनुर्धर भाँति(उपभाँति 3ब)!

6. जयति नृपोरिभिरजित

अश्वरोही भाँति(उपभाँति1 ब)!

7. क्षितिपतिरजितों विजयी कुमारगुप्तो जयत्वजित:

अश्वरोही भाँति( उपभाँति 2 स)

8. क्षितोपतिराजतो विजयी कुमारगुप्तो दिंव जयति:

अश्वरोही भाँति(उपभाँति 1स)!

9. क्षितिपतिजितमेन्द्र: कुमारगुप्तो दिंव जयति:

यह सिंह निहस्ता भाँति (उपभाँति 1अ) के लेख का अनुमानित पाठ है।

10. गुप्तकुलव्योमशशि जयत्यजेयोजितमहेन्द्र:

अश्वरोही भाँति(उपभाँति 2 ब)

11. गुप्तकुलामलचन्द्रो महेन्द्रक्रमाजितो जयति:–

अश्वारोही भाँति(उपभाँति 2ब)

12. पृथ्वीतलेश्वरेनद्र: कुमारगुप्तो जयत्यजित:

अश्वरोही भाँति (उपभाँति 2द)

13. गामवजित्य सुचरितै: कुमारगुप्तो दिवं जयति:–

खड्गहस्त भाँति

14. कुमारगुप्तो विजयी सिंहमहेन्द्रों दिंव जयति:–

सिंहनिहन्ता भाँति (उपभाँति 1ब) यह पाठ अनुमानित है।

15. कुमारगुप्तो युधि सिंहविक्रमः–

सिंहनिहन्ता भाँति (उपभाँति 1स)

16. साक्षादिव नरसिंहः सिंहमहेन्द्रों जयत्यनिशम्ः–

सिंहनिहस्ता भाँति(उपभाँति 2अ)

17. क्षतरिपु कुमारगुप्तो राजत्राताजयति रिपूणः–

गजारूढ़ और गजारूढ़ सिंहनिहस्ता भाँति पाठ अनुमानित है।

18. भर्ता(?)खडगत्राताकुमारगुप्तो जयत्यनिशंः–

खड्गी निहस्ता भाँति पाठ अनुमानित है।

19. देवाजितशत्रुः कुमारगुप्तोधिराजाः

अश्वमेघ भाँति।

20. जयति स्वगुणैर्गुणराशि महेन्द्र कुमारः–

कार्तिकेय भाँति।6

21. प्रताप मरमेश्वरः श्री प्रथितकुल रूपदृप्तः निरूपमगुण महार्ष्णवः अप्रतिवार्यवीर्यः–

अप्रतिद्य भाँति। यह सोहोनी का पाठ है। और पूर्व पाठों से निखरा हुआ है; फिर भी इसका कोई स्पष्ट अर्थ नहीं जान पड़ता है। कुमारगुप्त के सिक्कों के पट और निम्नलिखित विरूद पाये जाते हैं!

| | | |
|---|---|---|
| श्री महेन्द्र | – | धनुर्धर भाँति |
| अजित महेन्द्र | – | अश्वारोही भाँति |
| सिंह महेन्द्र | – | सिंह निहन्ता भाँति |
| श्री महेन्द्रगज | – | गजारूढ़ भाँति |
| सिंह निहन्ता महेन्द्रगजः | – | गजारूढ़ सिंहनिहस्ता भाँति |
| श्री महेन्द्र खड्ग | – | खड्गीनिहस्ता भाँति |

श्री अश्वमेष महेन्द्राः — अश्वमेघ भाँति

श्री महेन्द्रादित्य अथवा महेन्द्रादित्य— छत्र भाँति

अप्रतिद्य — अप्रतिद्य भाँति

अन्य भाँति के सिक्कों पर पट और राजा का नाम 'कुमारगुप्त' लिखा हुआ मिलता है।

# स्कन्दगुप्त

"स्कन्दगुप्त के धनुर्धर भाँति के सिक्कों पर बायी काँख के नीचे 'सकन्द' लिखा है। राजदम्पत्ति भाँति और छत्र भाँति (जिसे अल्तेकर स्कन्दगुप्त का कहते हैं और कुछ विद्वानों की धारणा है, कि वह घटोत्कच गुप्त का है) के सिक्कों पर नाम नहीं मिलता । इन सिक्कों पर चित ओर के अभिलेख इस प्रकार हैं।

## 1. जयति महीतलम् (स्कन्दगुप्त) सुधन्वी

धनुर्धर भाँति(हलके बजने वाले) और राजदम्पत्ति भाँति। यह कुमारगुप्त के चौथे लेख का अनुकरण है।

## 2. परहितकारी राजा जयति दिंव क्रमादित्य

धनुर्धर भाँति (भारी वजन) छत्र भाँति के सिक्के पर अभिलेख का मात्र'विजितवनि'

---

1. *जिन दिनों एलन ने अपनी ब्रिटिश संग्रहालय के गुप्त सिक्कों की सूची प्रकाशित की थी, उन दिनों यह लेख केवल आंशिक रूप में पढ़ा गया था। उस समय उन्होंने लेख के दूसरे शब्द के "स्व भूमौ" होने का अनुमान किया था (पृ. 84) हीरानन्द शास्त्री ने स्वभूमौ के आगे 'शत्रुनिहस्ता' होने का अनुमान प्रकट किया( ज.ए.सो.ब. 1917 पृ.15) तदन्तर एलन को इस भाँति का एक अच्छा सिक्का मिल गया और तब उन्होंने यह पाठ उपस्थित किया(न्यू.क्रा. 15, 5 वाँ सीरीज, पृ.235) पर अल्तेकर की धारण बनी हुई है कि इस लेख को अब तक पूर्णतः पढ़ना सम्भव नहीं हो सका है। वे 'गुण' के आगे खाली स्थान छोड़ देते है।(क्रायनेज आफ द गुप्त इम्पायर, पृ. 204) सम्भवतः उसका ध्यान एलन के उक्त लेख की ओर नहीं गया है।*

2. *इसे एलन में 'श्री प्रताप' पढ़ा था, पर अपने पाठ के सम्बन्ध में वे सन्दिग्ध रहे। उनके इस पाठ को सोहोनी ने अभी हाल में मान्य कहा है।*

   *ज.न्यू.सो.इ.22, पृ. 247*

3. *किसी सिक्के पर 'स्कन्द्रगुप्त' स्प्ष्ट उपलब्ध नहीं हुआ है। किन्तु एलन ने इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट किया है कि कुछ सिक्कों पर अक्षरों के जो अवशेष दिखाई पढ़ते है, उनसे इस पाठ की सम्भावना प्रकट होती है।*

उपलब्ध है। सम्भवतः पूरा लेख कुमारगुप्त के दूसरे लेख के समान रहा होगा।

धनुर्धर भाँति (हलका वजन) और राजदम्पत्ति भाँति के सिक्कों के पट और 'स्कन्दगुप्त' नाम और धनुर्धर भाँअति (भारी वजन) पर विरूउ 'क्रमादित्य ' है छत्र भाँति के सिक्के पर भी विरूद 'क्रमादित्य' है।"

## परवर्ती गुप्त शासक

प्रकाशादित्य के अतिरिक्त, परवर्ती सभी राजाओं ने एकमात्र धनुर्धर भाँति के सिक्के प्रचलित किये थे; और उन सब पर बायीं काँख के नीचे नाम और पट और विरूद्ध मिलता है। जो इस प्रकार है।

| | चित और नाम | पट और विरूद्ध |
|---|---|---|
| घटोत्कचगुप्त | घटो | क्रमादित्यः |
| कुमारगुप्त(द्वितीय) | कु | क्रमादित्यः |
| बुधगुप्त | बुध | श्री विक्रमः |
| वैन्यगंप्त | वैन्य2 | श्री द्वादशादित्यः |
| नरसिंहगुप्त | नर | बालादित्यः |
| कुमार (द्वितीय) | कु | श्री क्रमादित्यः |
| विष्णुगुप्त | विष्णु | श्री चन्द्रादित्यः" |

"अश्वारोही सिंहनिहन्ता भाँति पर पट और 'प्रकाशादित्य' विरूद है। उस पर शासक का नाम नहीं है। उसे एलन और अल्तेकर ने पुरूगुप्त का जे.डब्ल्यू. कार्टिस ने भानुगुप्त का बताया है। अन्य विद्वानों को भानुगुप्त का सिक्का होने पर में सन्देह होने लगा।

धनुर्धर भाँति के कुछ सिक्कों पर तट और श्री विक्रम विरूद है। और चित ओर बायीं काँख के नीचे किसी शासक का नाम नहीं है। आरम्भ में उन्हें लोग चन्द्रगुप्त (द्वितीय ) का ही मानते थे; किन्तु भारी वजन'(142 ग्रेन) के होने के कारण वे निसन्दिग्ध रूप से चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के सिक्के नहीं हो सकते। अतः एलन ने उन्हें पुरूगुप्त का सिक्का कहा है; अल्तेकर ने उनके बुधगुप्त के सिक्के होने का अनुमान किया है। साथ ही उन्होंने इस बात की भी सम्भावना प्रकट की है। कि वे

सिक्के पाँचवी अथवा आरम्भिक छठीं शती के किसी अब तक अज्ञात शासक के भी हो सकते हैं। वि.त्रप्र. सिन्हा ने कुछ अन्य भारी वजन के सिक्कों के आधार पर जिन पर चित और 'चन्द्र' नाम और पट ओर 'श्री विक्रम विरूद्ध मिलता है। चन्द्रगुप्त'(तृतीय) के अस्तित्व का अनुमान किया है।[1]

"घटोत्कचगुप्त के सिक्कों पर चित ओर का लम्बा लेख अनुपलब्ध है। लेनिनग्राद वाले सिक्के पर अन्यत की ओर केवल'गुप्त' पढ़ा जाता है। यही बात कुमारगुप्त(द्वितीय) के सिक्कों के सम्बन्ध में भी कहीं जा सकती है उनके कुछ सिक्कों पर केवल 'प्त' पढ़ जाता है। बुद्धगुप्त के सिक्कों पर लेख का आरम्भ 'परहितकारी' से होता है किन्तु बाद का अंश किसी सिक्के पर हीं मिलता स्कन्दगुप्त के कुछ सिक्कों पर लेख 'परहितकारी' शब्द से आरम्भ होता है। उसे देखते हुए यह अनुमान किया जा सकता है किबुधगुप्त के सिक्कों पर पूरा लेख होगा 'परहितकारी राजा जयति दिंव श्री बुधगुप्तः' वैन्यगुप्त के सिक्कों पर लेख के जो अवशेष मिलते हैं, उनसे लेख का रूप निर्धारण सम्भव नहीं है। नरसिंह गुप्त के एक सिक्के पर एलन ने लेख के अवशिष्ट अन्तिम भाग को 'नरसिंहगुप्त' पढ़ा है किन्तु अल्तेकर को उनके इस पाठ पर सन्देह है। कुमारगुप्त(तृतीय) के सिक्कों पर जिन्हें एलन ने कुमारगुप्त (द्वितीय) के सिक्कों के रूप में प्रकाशित किया है, 'महाराजधिराज श्री कुमारगुप्त क्रमादित्य' के अवशेष जान पढ़ते है। विष्णुगुप्त के सिक्कों पर कुछ भी उपलब्ध नहीं हैं। प्रकाशादित्य के सिक्कों पर लेखक का अन्तिम भाग विजित्य वसुधादिंव जयति' पढ़ा जाता है।"[2]

---

1. *एलन से इसे उस समय तक ज्ञात एक मात्र सिक्के पर 'पुर' पढ़ा था और उसे पुरूगुप्त का सिक्का बताया था। पीछे सरसी कुमार सरस्वती ने उसके 'बुध' पाठ होने की ओर ध्यान आकृष्ट किया(इ.क.1 पृ. 692) उनके इस पाठ का समर्थन हाल में मिले दो अन्य सिक्कों से भी होता है।(ज.न्यू.सो.इ. 12 पृ. 112)। किन्तु अब भी कुछ लोग है जो एलन के ही पाठ को स्वीकार करते है।(न.न.दास. गुप्त, बी.स. लॉ वाल्यूम1 पृ.617 वी.पी. सिन्हा, दि डिक्लाइन आव दि किंगडम आव मगध, पृ. 283–284)*

2. *इसे पहले रैप्सन ने 'चन्द्र' पढ़ा था (न्यू. क्रा. 1891 पृ. 57 और उसे एलन ने ग्रहण किया था (वि.सं.पृ.144) पश्चात दिनेशचन्द्र गांगुली ने उसका शुद्ध पाठ 'वैन्य उपस्थित किया। इ.हि. क्वा. 193 पृ. 115*

---

1. कायनेज आफ दि गुप्त इम्पायर, पृ. 276, अल्तेकर अनन्त सदाशिव
2. गुप्त परमेश्वरी लाल, भारत के पूर्वकालिक सिक्के पृ. 24

निम्नलिखित शासकों के सिक्कों पर राजा की टाँगों के बीच, अत्यन्त स्पष्ट रूप में अंकित कुछ पाये जाते हैं, जो इस प्रकार है

| | | |
|---|---|---|
| वैन्यगुप्त | – | रे (?) |
| नरसिंह गुप्त | – | ग्रें,गु |
| कुमारगुप्त (द्वितीय) | – | गो,जो.ज |
| विष्णुगुप्त | – | रू |
| प्रकाशादित्य | – | रू अथवा उ,म, |

इन अक्षरों का अभिप्राय अब तक अज्ञात है। किन्तु वे राज्यक्रम–निर्धारण में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुए हैं।

## सोने के सिक्कों की उपलब्धियाँ

"गुप्त शासकों के सोने के सिक्के स्फुट एवं दफीनों के रूप में देखने को विभिन्न भागों में मिले हैं किन्तु उनमें से अनेक के सम्बन्ध में ऐसी जानकारी जो इतिहास निर्माण की दृष्टि से महत्व की होती, हमें उपलब्ध नहीं ; जो कुछ जानकारी आज प्राप्त है उनसे केवल उन सिक्कों के उपलब्धियों का सामान्य परिचय ही मिलता है।"[1]

## तांबे के सिक्के

गुप्त शासकों के तांबे के सिक्के अत्यल्प है इस अभाव का कारण कुषाणों के तांबे के सिक्कों पर दृष्टि डालने से समझ में आ जाता है। उत्तर भारत में सर्वत्र कुषाण सिक्के इतने अधिक संख्या में प्रचलित थे कि किसी भी गुप्त शासक के लिये इस धातु के सिक्के ढालने की तनिक भी आवश्यकता न थी। फिर नित्य प्रति के सामान्य लेन–देन कौड़ियों के माध्यम से होते थे। चीनी यात्री फाह्यान का कौड़ियों का प्रचलन पाटलिपुत्र के हाट तें आते जाते देखा था।

---

1. *द.र. भण्डारकर की धारणा रही है कि कुमारगुप्त के सिक्के पर 'रंगों' गोविन्दगुप्त का द्योतक है। (इ.क.12 पृ. 239) किन्तु ये सिक्के इतने पहले के नहीं हो सकते। काशीप्रसाद जायसवाल ने प्रकाशादित्व के सिक्कों पर अंकित "ए के आधार पर उन्हें बुधगुप्त का बताया है। उनका कहना है कि मंजूश्रीमूलकल्प में 'उ' का उल्लेख बुधगुप्त के लिए हुआ(इम्पीरियल हिस्ट्री आव इण्डिया, पृ. 39) किन्तु उक्त ग्रन्थ में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह स्पष्ट ज्ञात हो, कि "उ" का तात्पर्य बुधगुप्त से है।*

---

1. ब्रि. सं.सू. भूमिका, पृ. 124–125

# कालीघाट (बंगाल)

"गुप्त सिक्कों का सबसे पहला ज्ञात भण्डार 1873 ई. में कलकत्ता के निकट हुगली के किनारे कालीघाट में मिला था। इस भण्डार में कितने थे, इसका तो कुछ पता नहीं है; केवल इतना मालूम है कि वह नवकृष्णा नामक किसी सज्जन को मिला था। उन्होंने इस भण्डार के सिक्कों में से दो सौ सिक्के ईस्ट इन्डिया कम्पनी के तत्कालीन गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स को भेंट किये थे वारेन हेस्टिंग्स ने उनमें से 172 सिक्के कम्पनी के लन्दन स्थित डायरेक्टरों के पास भेजे थे। और उन लोगों ने उन सिक्कों को पहले तो कुछ संग्रहालयों में बांटा। 24 सिक्के ब्रिटिश म्यूजियम को और उतने ही हण्टर के संग्रहालय को और कुछ सिक्के आक्सफोर्ड स्थित अशमोलियन म्यूजियम को और कुछ कैम्ब्रिज के पब्लिक लाइब्रेरी को मिले। जो बचे उनमें से कुछ प्रतिष्ठित लोगों को भेंट कर दिये गये। उसके बाद भी जो बचे उन्हें गला दिया गया।"[1]

इस प्रकार जिन्हें ये सिक्के मिले थे उनमें से एक ने अभी कुछ बरस पहले लन्दन के सुप्रसिद्ध प्राचीन मुद्रा विक्रेता बाल्डविन्स के मार्फत अपने सिक्के बाजार में बेचे। उस समय डी. हेमिल्टन नामक सज्जन से उसके 13 सिक्के खरीदे थे। 1956 में जब भारत कला भवन में उनका गुप्त और कुषाण सिक्कों का संग्रह खरीदा तो वे सिक्के उनके साथ भारत वापस आये। और अब वे ही इस दफीनों के एकमात्र सिक्के है जो इस देश में उपलब्ध हैं। किन्तु वे किसी एक संग्रहालय में न होकर अनेक संग्रहालयों में बिखर गये हैं! इस दफीने में वैन्यगुप्त, नरसिंहगुप्त, कुमारगुप्त (तृतीय) और विष्णुगुप्त के सिक्के थे।

## 2. हुगली

1883 में हुगली के निकट 13 सिक्कों का दफीना मिला था। उसमें समुद्रगुप्त का (उत्पताक भाँति) चन्द्रगुप्त(द्वितीय) का 5 (धनुर्धर भाँति) और कुमारगुप्त(प्रथम) का 7 (धनुर्धर भाँति 3, सिंहनिहन्ता भाँति 1 और अश्वरोही भाँति 3) सिक्का था।

## 3. चकडीधीः—

चकडीधी(जिला बर्दवान) से समुद्रगुप्त का उत्पताक भाँति का एक सिक्का मिला था जिसे बंगाल के गवर्नर लार्ड कारमाइकेल को भेंट कर दिया गया था।

---

1. गुप्त, परमेश्वरी लाल, गुप्त साम्राज्य, पृ. 189

### 4. सोनकाँदुरी:

फरीदपुर जिले के कोटली पाड़ा के निकट स्थित सोनकाँदुरी ग्राम से चन्द्रगुप्त (द्वितीय) का 1 धनुर्धर भाँति और स्कन्दगुप्त के 3 कुल चार सिक्के मिले थे। वे अब ढाका संग्रहालय में है।

### 5. महास्थान:

महास्थान से अनेक सोने के सिक्के मिले थे जिनमें एक चन्द्रगुप्त (द्वितीय) का और एक कुमारगुप्त (प्रथम) का था।

### 6. महमद:

महमद के निकट सोने के तीन कसवे मिले थे जिनमें दो कुमारगुप्त(प्रथम) और एक स्कन्दगुप्त का था।

### 7. बोगरा:

बोगरा जिले के किसी प्राचीन स्थान के निकट खेत में स्कन्दगुप्त का एक सिक्का मिला था जो अब आशुतोष संग्रहालय कलकत्ता में है।

### 8. तामलुक:

तामलुक (प्राचीन ताम्रलिपी) से कुमारगुप्त(प्रथम) का एक सिक्का मिला था।

## बिहार

### 1. हाजीपुर:

1893 ई. में हाजीपुर कस्बे के पास कुनहरा घाट में 22 सिक्कों का दफीना मिला था। जिनमें से केवल 14 सिक्के प्राप्त हो सके थे जो इस प्रकार है। चन्द्रगुप्त (प्रथम) 1 समुद्रगुप्त 4(उत्पताक 2, धनुर्धर1 कृतान्तपरशु1); चन्द्रगुप्त(द्वितीयस ) 1 धनुर्धन 3 छत्र 3 सिंहनिहन्ता 3।

---

1. *132 ग्रेन भार के धनुर्धर भाँति के एक सिक्के को, जिस पर राजा के सिर के समान चक्र, हाथ के नीचे 'चन्द्र' और पीछे 'श्री विक्रम' अंकित है, इस दफीने का बताया जाता है, पर प्रामाणिक रूप से ऐसा कहना कठिन है।*

## 10. बाँका:

बांका (जिला भागलपुर) से 1992 ई. में 4 सिक्के मिले थे। उनमेंसे दो चन्द्रगुप्त(द्वितीय) और दो कुमारगुप्त (प्रथम ) के थे। ये इण्डियन म्यूजियम कलकत्ता में है।

## 11. नालन्दा:

नालन्दा के उत्खनन के समय बिहार नं. 4 के ऊपरी छत से कुमारगुप्त(प्रथम) का एक सिक्का और खण्डहरों के बीच से नरसिंहगुप्त का एक सिक्का मिला था। चैत्य नं. 12 से नरसिंहगुप्त के सिक्के ढालने के दो साँचे मिले थे।4

## 12 गया:

कनिंगधम ने गया से निम्नलिखित सिक्कों के मिलने का उल्लेख किया है– चन्द्रगुप्त प्रथम1, समुद्रगुप्त1 (उत्पताक भाँति) चन्द्रगुप्त(द्वितीय) 4 धनुर्धर भाँति 3. सिंहनिहन्ता 1 कुमारगुप्त प्रथम1(अश्वरोही) और स्कन्दगुप्त 1 भारी वजन क्रमादित्य विरूद्ध) ।5

## 13. फतुहा:

1925–26 ई. में पटना जिले में फतुहा के निकट शाहजहाँपुर नामक गाँव में 18 सिक्कों का दफीना मिला था; जिसके केवल पाँच सिक्के प्राप्त हो सके थे और वे सभी चन्द्रगुप्त के धनुर्धर 4 और छत्र 1) थे। उन्हें पटना संग्रहालय ने प्राप्त कर लिया था पर बाद मे ंवे चोरी चले गये।

## 14. गोमिया:

1933 के आसपास हजारीबाग जिले में गोमिया के निकट कुछ सोने के सिक्के मिले थे उनमें से एक समुद्रगुप्त का था। और शेष अत्यन्त धिसे हुए बताये जाते है।

## 15. सुल्तानगंज:–

1958 ई. में सुल्तानगंज(भागलपुर) के पुरानी दुर्गास्थान से सोने के कुछ आभूषणों के साथ कुण्डे लगे सोने के दो सिक्के मिले थे। उनमें से एक समुद्रगुप्त का और दूसरा किसी उत्तरवर्ती कुषाण शाक का था। वे अब पटना संग्रहालय में है।

# उत्तर प्रदेश

## 16. कसेरवा:–

1912–13 ई. में कसेरवा (जिला बलिया) से 17 सिक्कों का दफीना मिल था। उसमें 16 सिक्के समुद्रगुप्त के (उत्पताक 12, अश्वमेघ 3, कृतान्त परशु 1) और 1 काचगुप्त का था।6

## 17. देवरिया:

1940 ई. के आसपास देवरिया (थाना दिलदारनगर, जिला गाजीपुर) में लगभग 400 सिक्के का (हो सकता है कि उसमें हजार से भी अधिक रहे हों) दफीना निकाला था। पर वे सबसके सब या गला दिये गये या चुपके चुपके बाजार में बेच दिये गये। जिसके कारण उनके सम्बन्ध में कोई जानकारी प्राप्त नहीं है।।

## 18. भरसड़:

1851 ई. में वाराणसी के निकट भरसड़ से लगभग 160 सिक्कों का दफीना लि था। उनमें से केवल 90 प्राप्त हो सके थे कहा जाता है कि उन 90 में 71 सिक्के चन्द्रगुप्त(द्वितीय) के थे और उनमें भी 69 सिक्के एक ही भाँति (सम्भवतः धनुर्धर) के थे एलन ने इस दफीने के 32 सिक्कों का उल्लेख इस प्रकार है– समुद्रगुप्त 5( उत्पताक2, धनुर्धर 2 ललित गन्धर्व1) चन्द्रगुप्त(द्वितीय) 10 (अश्वरोही2 धनुर्धर 8) कुमारगुप्त (प्रथम) 8( धनुर्धर 2, अश्वरोही 4, व्याघ्रनिहस्ता 1 कार्तिकेय 1) स्कन्दगुप्त 6 ( धनुर्धर) और प्रकाशादित्य !

## 19. गोपालपुर:

गोपालपुर(जिला गोरखपुर) से 20 सिक्के मिले थे जिनमें कहा जाता है, कि 7 सिक्के चन्द्रगुप्त(द्वितीय) के थे शेष के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं है।

## 20. कोटावा:–

1886 में कोटवा (तहसील बाँसगाँव जिला गोरखपुर) के एक खण्डहर में 16 सिक्कों का दफीना मिला था उसमें चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के 6( धनुर्धर भाँति–पद्मासन लद्गमी5 सिंहनिहस्ता1) और कुमारगुप्त (प्रथम) के 10 (धनुर्धर–नाम 'कु' 1 कार्तिकेय 2, वामाभिमुख अश्वरोही 1 दक्षिणाभिमुख अश्वरोही 4 सिंहनिहस्ता1) के सिक्के थे।

## 21. बस्तीः—

1887 ई. में बस्ती जिला जेल के निकट मौजा सराय में 11 सिक्कों का दफीना मिला था। उनमें से जो 10 सिक्के प्राप्त हो सके वे सभी चन्द्रगुप्त(द्वितीय) के (धनुर्धर 9 और छत्र 1) थे।

## 21. राप्ती नदीः—

बस्ती जिले में राप्ती नदी के किनारे किसी स्थान से एक दफीना मिला था, जिसका कोई विवरण प्राप्त है। उसके कुछ सिक्के संग्रह में थे। वहाँ से वे पहले हैमिल्टन संग्रह में आये और अब भारत कला भवन वाराणसी में है।

## 23. टाँडाः—

1885 ई. टाँडा (जिला रायबरेली) से 25 सिक्कों का दफीना मिला था। उसमें दो सिक्का चन्द्रगुप्त (प्रथम) का है कुछ सिक्के समुद्रगुप्त(अश्वमेघ और कृतान्त परशु) के और कुछ काचगुप्त के थे।

## 24. जौनपुरः—

जौनपुर स्थित जयचन्द्र महल नाम से प्रसिद्ध एक पुराने भवन में कुछ सोने के सिक्के मिले थे। उनका कोई विवरण उपलब्ध नहीं है। पर कहा जाता है कि उनमें गुप्तों के सिक्के थे।

## 25. मदनकोलाः—

कहा जाता है कि 1985 ई. के लगभग जौनपुर जिले में शाहगंज के निकट मदनकोला ग्राम में लगभग 100 सिक्कों का दफीना मिला था, उसका विवरण प्राप्त नहीं है। उसमें चन्द्रगुप्त(द्वितीय) के चक्रविक्रम भाँति के एक सिक्के के होने की बात कही जाती है।

## 26. टेकरी डेबराः—

1912 ई. में टेकरी डेबरा (जिला मिर्जापुर) में 40 सिक्कों का दफीना मिला था, जिसमें समुद्रगुप्त 3(उत्पताक भाँति 2 कृतान्त परशु 1) चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के 33( धनुर्धर 15 सिंहनिहस्ता 10 अश्वरोही 8) और कुमारगुप्त (प्रथम)के 4( धनुर्धर 1 सिंहनिहन्ता 1 अश्वरोही2) सिक्के थे।

## 27. झूंसीः—

झूसी इलाहाबाद से 20 या 30 सिक्के, जिसमें अधिकांश कुमारगुप्त (प्रथम) के थे मिलने की बात कहीं जाती है। कनिंगधम द्वारा स्मिथ को दिये गये सूचना के अनुसार वहाँ 1864 ई. में 200 सिक्के मिले थे पर कनिंगधम को केवल 2 देखने को मिले थे। स्मिथ के कथनानुसार वे अधिकांशः कुमारगुप्त (प्रथम) के मयूर भाँति के थे।

## 28. कुसुम्भीः—

1947 ई. में कुसुम्भी( थाना अजगैन, जिला उन्नाव) में 29 सिक्कों का भण्डार मिला था। इसमें समुद्रगुप्त के 3 (सभी उत्पताक) चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के 11 धनुर्धर 17 सिंहनिहन्ता 1 छत्र1) और कुमार गुप्त (प्रथम) के 7(धर्नुधर 5 और अश्वारोही 2) सिक्के थे। सम्भवतः ये सभी सिक्के लखनऊ संग्रहालय में है।

## 29. कन्नौजः—

कन्नौज के खण्डहरों से चन्द्रगुप्त(द्वितीय) के सोने के एक और कुमारगुप्त (प्रथम) के चाँदी के एक सिक्के मिलने का उल्लेख प्राप्त है। स्मिथ ने कन्नौज से 5–6 और कन्नौज नगर के पश्चिम अथवा उत्तर–पश्चिम स्थित किसी जगह से 10 सोने के सिक्के मिलने की जानकारी होने की बात लिखी है।

"कनिंगधम ने कौशाम्बी(इलाहाबाद) से कुमारगुप्त(प्रथम) के एक (अश्वरोही) सौरों(जिला एटा) से चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के एण्क (धनुर्धर) भाँति1 लखनऊ से समुद्रगुप्त के एक (अश्वमेघ) और दिल्ली से कुमारगुप्त (प्रथम) के एक (अश्वारोही) सिक्के मिलने की बात कहीं है।

# राजस्थान

## 30. बयाना :—

1946 ई. में बयाना (भरतपुर) नगर के समीप स्थित हल्लनपुर ग्राम के एक खेत की मेड़ से लगभग 2100 सिक्कों से भरा तांबे का एक कलश मिला था। उसमें से केवल 11821 सिक्के प्राप्त हो सके । अल्तेकर ने उनकी एक विस्तृत सूची प्रकाशित की है। वे सिक्के इस प्रकार है।

10. सिक्के चन्द्रगुप्त (प्रथम) राजदम्पत्ति।1

183 सिक्के समुद्रप्त (उत्पताक 143 अश्वमेघ 20, धनुर्धर3, ललित–गन्धर्व6, व्याध्र निहस्ता 2 कृतान्तपरशु1)!

16 सिक्के काचगुप्त(चक्रध्वज) इनमें एक नयी उपभाँति का है। उसमें बायीं ओर गरूड़ध्वज है।

183 सिक्के चन्द्रगुप्त(द्वितीय) धर्नुधर 718 अश्वरोही 42, छत्र 57, सिंहनिहस्ता 42 पर्येक3 चक्रविक्रम1)!

628 सिक्के कुमारगुप्त(प्रथम) धनुर्धर 183 खड्गहस्त 10 अश्वरोही"

305 कार्तिकेय 13 छत्र 2 व्याध्रनिहस्ता 86 सिंहनहन्ता 53 गजारूढ़ 3, गजारूढ़ सिंहनिहन्ता 4, खड्गी निहन्ता4, अश्वमेघ 4, ललित गन्धर्व 2, अप्रतिद्य 8 राजदम्पत्ति 1)!

1 "सिक्का क्रमदित्य विरूदयुक्त छत्र भाँति(इसे अल्तेकब स्कन्दगुप्त का बताते हैं अन्य विद्धान घटोत्कच का मानते है।)।[1]

# पंजाब

## 31. मीठाथल :–

"1915 ई. में मीठाथल(जिला हिसार) में 86 सिक्कों का दफीना मिला था। उनमें से 26 सिक्के तो गल गये। शेष में 33 समुद्रगुप्त के और 27 उत्तरवर्ती कुषाणों के थे। इन सिक्कों का कोई विवरण प्राप्त नहीं है, किन्तु उनमें कृतान्तपरशु के एक दुर्लभ उपभाँति का सिक्का था।"1 उस पर राजा बायीं ओर कुब्जक दाहिनी और अंकित था।2

## 32 रूपड़ :–

1953 ई. के उत्खनन में रूपड़ से चन्द्रगुप्त प्रथम का एक सिक्का मिला है!

---

1. *ज.न्यू.सो.इ. 15,पृ.82*
2. *ज.ए.सो.ब0.3 पृ.229*
3. *ज.रा.ए.सो. पृ. 450*
4. *वही, पृ. 48*

---

1. अल्तेकर, कैटलाग ऑव द गुप्त कायन्स ऑव बयाना पृ. 192

# गुजरात

## 33. कुमरखान–

1952 ई. में कुमरखान (तालुका वीरमगांव, जिला अहमदाबाद) से एक जोड़ा कान के आभूषण के साथ 9 सिक्कों का दफीना मिला था। उसमें समुद्रगुप्त का 1(कृतान्तपरशु), काचगुप्त का 2 चन्द्रगुप्त(द्वितीय) का 5 (धनुर्धर) और कुमारगुप्त का 1(धनुर्धर) सिक्का था ये सिक्के प्रिंस आव वेल्स म्यूजियम बम्बई में है।"[1]

# मध्य प्रदेश

## 34. बमनमाला

बमनमाला (परगना भीखगाँव, जिला निमाड़) से 1940 ई. में 21 सिक्कों और सोने के एक पासे का दफीना मिला था। इसमें समुद्रगुप्त के 8 (उत्पताक7, ललित गन्धर्व1) चन्द्रगुप्त(द्वितीय) के 9 (सभी धनुर्धर पद्मासना लद्वमी) और कुमारगुप्त प्रथम के 4 धनुर्धर 2, अश्वारोही 1 व्याघ्रनिहन्ता 1) सिक्के थे। इनमें समुद्रगुप्त का उत्पताक भाँति एक संकर है। उसके चित ओर का ठप्पा तो समुद्रगुप्त के उत्पताक का है। और पट ओर का ठप्प चन्द्रगुप्त(द्वितीय) के धनुर्धर (पद्मासना लद्वमी) का है। इसके संकर रूप को न समझ सकने के कारण अनेक विद्धान इसे समुद्रगुप्त के विक्रम विरू0 का प्रमाण मान बैठे है।

## 35. सकौर– (प्राप्ति1)

1909 ई. में सकौर(तहसील हाटा, जिला दमोह) में हाटा धासियाबाद सड़क के किनारे मिट्टी निकालते समय चन्द्रगुप्त (द्वितीय)के तीन सिक्के (धनुर्धर 2 छत्र 1) मिले है!

## 36. सकौर (प्राप्ति 2)

1924 ई. में सकौर (तहसील हाटा, जिला दमोह) से 24 सिक्कों का दफीना मिला था। इसमें समुद्रगुप्त के 7(सभी उत्पताक) काचगुप्त के 1 चन्द्रगुप्त (द्वितीय)

---

*1. ज.न्यू.सो.इ. 15,पृ. 115 पहले कुमारगुप्त(प्रथम) के सिक्के की ओर ध्यान नहीं गया था और उसे चन्द्रगुप्त(द्वितीय) का सिक्का समझ लिया गया था।(ज.न्यू.सो. इ. 22, पृ. 269)*

---

1. इण्डियन आर्क्यालॉजी अ. रिव्यू 54, पृ. 6.7

के 15(धनुर्धर11 अश्वरोही 1 छत्र1 सिंहनिहन्ता2) और स्कन्दगुप्त का 1 सिक्का (धनुर्धर हल्का वजन सिक्के थे। कुमारगुप्त प्रथम का कोई सिक्का नहीं था।"

## 37. सागर

सागर जिले के किसी स्थान से 1915–16 ई. में सोने के सिक्के के दफीने की सूचना उपलब्ध है पर दफीने का कोई विवरण नहीं है उस दफीने के 6 सिक्के नागपुर संग्रहालय में है और वे सभी चन्द्रगुप्त(उत्पताक भाँति के हैं।

" इनके अतिरिक्त निम्नलिखित स्थानों से चन्द्रगुप्त(द्वितीय) एक–एक सिक्के प्राप्त होने की जानकारी प्राप्त है।

हरदा, जिला होशंगावाद(धनुर्धर –पद्यासना लक्ष्मी)!

गणेशपुर, तहसील मुखारा, जिला जबलपुर(धनुर्धर–पद्यासना लक्ष्मी)

पटन, तहसील, मुल्ताई, जिला विलासपुर(धनुर्धर–पद्यासना लक्ष्मी)

सिवनी(जिला विवरण अज्ञात)

# उड़ीसा

## 38. बहरामपुरः

"1926–27 ई. में बहरामपुर(किला बाँकी जिला कटक) से एक दफीना प्राप्त हुआ था जिसमें महाकौशल के प्रसन्न मात्र के 44 उभारदार (रिपूसे) बनावट के सिक्कों के साथ विष्णुगुप्त का एक सिक्का था। यह सिक्का पटना संग्रहालय से चोरी चला गया।

## 39. भानुपुरः

1939 ई. में सोन नदी के बायें तट पर स्थित भानुपुर (जिला मयूरभंज) से चन्द्रगुप्त(द्वितीय) के धनुर्धर भाँति के तीन सिक्के थे।

## 40. अंगुलः

कुमारगुप्त (प्रथम) का धनुर्धर भाँति का एक सिक्का सोनपुर जिले के अंगुल तहसील में हुआ था।

## 41. मध्यजावाः

1922 ई. में चन्द्रगुप्त (द्वितीय) का एक सिक्का मध्य जावा स्थित बाटू वाका के पास मिला था। यही एकमात्र गुप्त सिक्का है जिसके भारत के बाहर प्राप्त होने की जानकारी प्राप्त है।"[1]

## उपलब्धियों का विश्लेषण

इन सोने के सिक्कों की उपलब्धियों के विश्लेषण से प्रकट होता है, कि अब तक पंजाब में चन्द्रगुप्त (प्रथम) के केवल एक सिक्का (लुधियाना जिले से) और समुद्रगुप्त के कुछ सिक्के (हिसार जिले से) मिले हैं। चन्द्रगुप्त(द्वितीय) और उसके उत्तरवर्ती शासकों के सिक्के इस क्षेत्र में सर्वथा अज्ञात है।

कुमारगुप्त और उसके पूर्ववर्ती शासकों के सिक्कों के प्रसार की सीमा इस प्रकार है– उत्तर पश्चिम में दिल्ली और भरतपुर; पूरब में गंगा(पद्या) के मुहाने पर स्थित फरीदपुर; दक्षिण–पूर्व में महानदी के मुहाने पर कटक; दक्षिण में मध्य भारत स्थित निमाड़ और पश्चिम में अहमदाबाद दक्षिण–पश्चिम में चन्द्रगुप्त(द्वितीय) के सिक्कों की सीमा बैतेल तक है।

स्कन्दगुप्त के सिक्के पूर्वी मालवा( जिला दमोह) पूर्वी उत्तर प्रदेश (अर्थात वाराणसी जिला) बिहार और अंगाल तक ही सीमित है। इन उपलब्धियों में उसके उत्तराधिकारियों के सिक्के इक्के दुक्के ही है। प्रकाशदित्य के सिक्के केवल भरसड़ दफीने में मिले हैं वैन्यगुप्त और उसके उत्तराधिकारियों के सिक्के थे। विष्णगुप्त का एक सिक्का कटक में मिला था।

"इस प्रकार सिक्कों के प्राप्ति क्षेत्र के विवेचन से गुप्त राज्य और गुप्त वंश के राजाओं के प्रभुत्व के विस्तार की कुछ कल्पना की जा सकती है।

"दफीनों के विश्लेषण से गुप्तों के राज्य क्रम में काचगुप्त का स्थान निर्धारित करने में भी सहायता मिलती है। उसका सिक्का मुख्य रूप से उन्हीं दफीनों से मिला है जिनमें चन्द्रगुप्त(प्रथम) का सिक्का है। उन दफीनों में यथा भरसड़, हुगली, टेकरी डेबरा, बमनाला और कुसुम्भी, जिनमें चन्द्रगुप्त(प्रथम) के सिक्के नहीं है उनमें काचगुप्त के सिक्कों का भी आभाव है। टाँडा दफीने में चन्द्रगुप्त, काचगुप्त और समुद्रग्रप्त के सिक्के है; इसी प्रकार कसेरवा दफीने में केवल काचगुप्त और

---

1. इण्डियन आर्क्यालॉजी अ. रिव्यू 54, पृ. 69

समुद्रगुप्त के सिक्के थे। इन्हें देखने से ज्ञात होता है कि काचगुप्त का स्थान चन्द्रगुप्त (प्रथम) और समुद्रगुप्त के बीच था।

## सोने के उभारदार सिक्के

"उड़ीसा और मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ क्षेत्र से कुछ 19–20 ग्रेन वजन के अत्यन्त पतले सिक्के मिले है जो उभरे हुए ठप्पें द्वारा पीछे की ओर से ठोक कर बनाये गये हैं। इन पर सामने की ओर आकृतियाँ और अक्षर उभरे हुए और पीछे की ओर दबे हुए है। ऐसे सिक्कों पर 'महेन्द्रादित्य' और क्रमादित्य दो नाम मिलते है। ये दोनों ही नाम क्रमशः कुमारगुप्त(प्रथम) और स्कन्दगुप्त के विरूद के रूप में ज्ञात है; इससे अनुमान किया जा सकता है कि ये सिक्के इन्हीं गुप्तवंशी राजाओं के होंगे, किन्तु विद्वानों की धारणाएं अभी इस सम्बन्ध में अनिश्चित है।

महेन्द्रादित्य के सिक्कों पर बिन्दुओं से बने परिधि के भीतर रेखा द्वारा वक्यत आसन पर पंख फैलाये गरूड़ खड़े हैं। उनके दाहिनी ओर बिन्दुयुक्त अर्धचन्द्र और बिन्दुओं से घिरा और बायीं ओर तथाकथित सूर्य और दक्षिणावर्त शंख है। आसन के नीचे दक्षिणात्य, ब्राही लिपि के चौखटे शीर्ष(बाक्स हेडेड) शैली में भी 'श्री महेन्द्रादित्य' लेख और लेख के नीचे एक अक्षर और एक चिन्ह है। इन अक्षरों और चिन्हों के अनुसार सिक्कों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है।

1. अक्षर 'स' और सात बिन्दुओं का पुंज
2. सात बिनदुओं का पुंज और अक्षर 'रू'
3. एक बिन्दु और अक्षर 'द'
4. अक्षर 'द' और एक बिन्दु
5. अक्षर 'भ' और एक बिन्दु(?)
6. अक्षर 'भ'!

## उपलब्धियाँ

ये सिक्के निम्नलिखित सूत्रों से ज्ञात हुए है।

1. लखनऊ संग्रहालय में महेन्द्रादित्य का एक सिक्का । उपलब्ध साधन अज्ञात।
2. खैरतल (जिला रायपुर, मध्यप्रदेश) से महेन्द्रादित्य के पचास सिक्कों का एक दफीना।

3. मदनपुर–रामपुर(जिला कलाहांडी, उड़ीसा) के प्राचीन दंर्ग से उपलब्ध महेन्द्रादिन्य का एक सिक्का।

4. भण्डारा(जिला चाँदा, मध्यप्रदेश) से प्राप्त, दफीना; प्रसननमात्र के ग्यारह सिक्कों के साथ महेन्द्रादित्य का एक सिक्का।

5. पिताईबाँध(जिला रायपुर, मध्यप्रदेश) से प्राप्त महेन्द्रादित्य के 46 और क्रमादित्य के 3 सिक्कों का दफीना।

## चाँदी के सिक्के

गुप्त वंशीय शासकों ने सर्वप्रथम चन्द्रगुप्त(द्वितीय) ने चांदी के सिक्के प्रचलित किए। उनके बाद कुमारगुप्त(प्रथम) स्कन्दगुप्त और बुधगुप्त के सिक्के चाँदी के मिलते हैं। अन्य शासकों के चाँदी के सिक्के अज्ञात है। ये सिक्के भार, बनावट और चित्रण में पश्चिमी क्षत्रपों के जो लगभग दो सौ बरसों तक काठियावाड़, गुजरात और मालवा के स्वामी थे चाँदी के सिक्कों के प्रति रूप है। ये आकार में आधार इन्च व्यास और वजन में 24 से 36 ग्रेन के है। अधिकांश सिक्कों का वजन 29 ग्रेन के लगभग मिलता है।

इन सिक्कों के चित ओर राजा का गर्दनयुक्त सिर है तथा कुछ सिक्कों पर क्षत्रप सिक्कों के समान ही यवनाक्षरों के अवशेष हैं, और राजकृति के सामने अथवा पीछे की ओर वर्ष का आलेख है। पर यह लेख बहुत ही सिक्कों पर दिखलाई पड़ता है। अधिकांश सिक्कों पर वह परिधि से बाहर ही रह जाता है। पट ओर बीच में प्रतीक और उसके चारों ओर अभिलेख है पट ओर के अभिलेख कई प्रकार के होते है।

चन्द्रगुप्त द्वितीय" चन्द्रगुप्त(द्वितीय) के सिक्कों पर पट ओर के प्रतीक में बिन्दुपुंज और चन्द्र पश्चिमी क्षपों के अनुकमरण पर ही है; केवल मेरू को बदल कर उसके स्थान पर गुप्त वंश का लांछन गरूढ़ रख दिया गया है।[1]

इन सिक्कों पर दो प्रकार के लेख हैः–

1. परम भागवत महाराजधिराज श्री चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यः।

2. श्री गुप्तकुलस्य महाराजधिराज श्री चन्द्रगुप्त विक्रमांकस्य।

---

1. ज.व.ब्रा.रा.ए.सो. 7(ओ.सी.) पृ.3 के सामने फलक सिक्का 11।

ब्रिटिश संग्रहालय के सिक्का संख्या 133 और 136 पर राजा के सिर के पीछे तिथि (वर्ष)90 अंकित मिलता है। उन पर मूलतः इकाई की भी कोई संख्या रही होगी, ऐसा अनुमान किया जाता है ई.सी. बेली ने अपने सिक्के पर राजा के सिर के पीछे 90 पढड़ा था। फ्लीट का अनुमान है, कि उस सिक्के की संख्या 94 या 95 है। कनिंगधम संग्रह के दो सिक्कों पर फ्लीट ने राजा के मुँह के सामने 84 या 94 देखा था पर उनके सम्बन्ध में वे कुछ भी निश्चयपूर्वक कह सकने में असमर्थ रहे।

## कुमारगुप्त (प्रथम) :

"कुमारगुप्त(प्रथम) ने अपने राज्य के पश्चिमी प्रदेश के लिए अपने पिता के अनुकरण पर ही सिक्के चलाये थे। उन पर भी यवनाक्षरों के अवशेष मिलते हैं।

न्यूटन ने कुमारगुप्त का एक ऐसा सिक्का प्रकाशित किया है। जिस पर गरूड़ के स्थान पर अलंकृत त्रिशूल है। किन्तु इस प्रकार का कोई अन्य गुप्त सिक्का ज्ञात न होने के कारण ऐलन को इस सिक्के के अस्तित्व में संदेह है। उनकी धारणा है, कि इस सिक्के पर भी अन्य सिक्कों की भाँति गरूड़ होगा, कुछ सिक्कों पर वह त्रिशूल सरीखा जान पड़ता है। एलन के इस मत से भी अल्तेकर सहमत नहीं। जिस ढंग का त्रिशूल इस सिक्के पर है, उस ढंग का त्रिशूल तथाकथ्शित वलभी सिक्कों पर पाया जाता है; अतः वे कुमारगुप्त द्वारा उस ढ़ग के सिक्के चलाये जाने की सम्भावना मानते है। सानौद दफीने के सिक्कों के विश्लेषण से प्रकट होता है, कि तथाकथित बलभी सिक्के, कुमारगुप्त के सिक्कों के पहले थे। अतः इस बात की पूर्ण सम्भावना है, कि कुमारगुप्त ने गुजरात प्रदेश पर अधिकार करने के पश्चात आरम्भ में इन सिक्कों के अनुकरण पर सिक्के चलाये हों। भले ही आज वे अत्यन्त दुलर्भ हो।

राज्य के पूर्वी प्रदेश के लिये कुमारगुप्त (प्रथम) ने पहली बार चाँदी के सिक्के प्रचलित किये। इन सिक्कों पर गरूड़ के स्थान पर नाचते हुए (पंख फैलाये) मयूर है।

"गुजरात काठियावाड़ प्रदेश में मिलने वाले सिक्के (चाँदी, तांबा, मिश्रित धातु) के बने हैं। उनमें इतनी अधिक मिलावट है, कि कुछ सिक्के ताँबे के से जान पड़ते हैं। पर उनका बाँबे सरीखा स्वरूप प्राकृति प्रभाव के कारण है।

"कुमारगुप्त (प्रथम) के पश्चिमी प्रदेश के सिक्कों पर भी पिता के सिक्कों के अनुकरण पर परमभागवत महाराजधिराज श्री कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य लेख है। किन्तु कुछ सिक्कों पर आरम्भ का 'परम' शब्द नहीं मिलता; कुछ पर 'महराजधिराज' के स्थान पर केवल 'राजाधिराज' लिखा मिलता है। मध्यप्रदेश अर्थात पूर्वी प्रदेश के सिक्कों पर सोने के 'धनुर्धर भाँति' (उपभाँति अ) वाला पद्यज्ञतमक लेख 'विजितावनिर्वनिपतिः कुमारगुप्त दिवं जयति' है"[1]

इन सिक्कों पर अब निम्नलिखित तिथि मिले है

90 जस्टि न्यूटन

100 प्रिंस ऑव वेल्स म्यूजियम, बम्बई

118 इण्डियन म्यूजियम (सिक्का संख्या 46)

119 ब्रिटिश म्यूजियम(सिक्का संख्या 385–86,394)

1212 स्मिथ द्वारा उल्लेख

122 ब्रिटिश संग्रहालय(सिक्का संख्या 288)

124 ब्रिटिश संग्रहालय(सिक्का संख्या 198)

128 स्मिथ द्वारा उल्लेख

129 स्मिथ द्वारा उल्लेख

130 कनिंगहम

134 इण्डियन म्यूजियम(सिक्का संख्या 53)

---

1. *अब तक जिन सिक्कों को वलभी के शासकों का समझा जाता था, वे वस्तुतः उनके नहीं है। वे सर्व नामक किसी शासक अथवा वंश के सिक्के है;' जो पश्चिमी क्षत्रपों के बाद और गुप्तों से पहले गुजरात और काठियावाड़ के शासक रहे।*

2. *ज.ब.रा.ए.सो. 1862 पृ.11 इस सिक्के के ठप्पे पर इकाई की काई संख्या अवश्य रहीं होगी। चन्द्रगुप्त द्वितीय के साँची अभिलेख को दृष्टि में रखते हुए कुमारगुप्त द्वारा प्रचलित किसी सिक्के की कल्पना गुप्त संवत् 93 से पूर्व नहीं की जा सकती यदि चन्द्रगुप्त द्वितीय के सिक्कों पर 94 अथवा 95 पाठ ठीक हो(इ.ए. 114 पृ. 665) तो यह सिक्का गुप्त संवत् 95 के बाद का ही होगा।*

---

1. अल्तेकर, अनन्त सदाशिव, गुप्त काल की मुद्रायें पृ. 270

135 प्रिंसेप

136 वोस्ट

## स्कन्दगुप्त :

"स्कन्दगुप्त ने अपने पिता के अनुकरण पर पश्चिमी और पूर्वी प्रदेशों वाले चाँदी के सिक्के तो जारी रखे ही, साथ ही पश्चिमी भारत के लिए उसने दो अन्य भाँति के सिक्के और प्रचलित किये।

1. **वृष भाँति** : "इन पर दक्षिणाभिमुख वृष अंकित किया गया है।
2. **हवनकुण्ड भाँति** : "हवन कुण्ड से अग्नि की तीन शिखाएं निकलती हुई दिखाई गई है।

स्कन्दगुप्त के सिक्कों पर वजन पूर्ववर्ती सिक्कों के समान ही है। साथ ही उल्लेखनीय बात यह भी है, कि उनके सिक्के मिश्र धातु के नहीं है।

पश्चिमी भाँति के सिक्कों के लेख है।

**गरूड़ भाँति** : परमभागवत महाराजधिराज श्री स्कन्दगुप्त क्रमादित्यः।

**वृष भाँति** : "उपर्युक्त ही, अनेक सिक्कों पर महाराजधिराज के स्थान पर केवल 'राजधिरा' अथवा केवल 'म' मिलता है।

## हवनकुण्ड भाँति

1. परमभागवत श्री विक्रमादित्य स्कन्दगुप्तः
2. परमभागवत श्री स्कन्दगुप्त क्रमादित्यः
3. परमभागवत श्री स्कन्दगुप्त"

"दृष्टव्य है कि हवनकुण्ड भाँति के किसी भी लेख में सम्राट की उपाधि 'महाराजाधिराज'नहीं है। साथ ही इन सिक्कों के लेख, विशेषतः तीसरा, अत्यन्त त्रृटिपूर्ण और अशुद्ध अंमित मिलता है। मध्यप्रदेश भाँति के सिक्कों के लेख हैं–

1. विजितावनिर्वनिपतिर्ययति दिवं स्कन्दगुप्तोयं
2. विजितावनिर्वनिपति श्री स्कन्दगुप्तो दिंव जयति।।"[1]

---

1. अल्तेकर, अनन्त सदाशिव, गुप्त काल की मुद्रायें पृ. 274

स्कन्दगुप्त के सिक्कों पर तिथि मुँह के सामने है और उन पर अब तक ज्ञात तिथि निम्नलिखित है:

141 ब्रिटिश संग्रहालय(सिक्का संख्यास 523–26)

144 कनिंगहम

145(?8) ब्रिटिश म्यूजियम( सिक्का संख्या 520)

146 ब्रिटिश संग्रहालय(सिक्का संख्या 528–30, 548)1

148. कनिंगहम

147 या 149 कनिंगहम।"

## बुधगुप्त :

"बुधगुप्त के चाँदी के सिक्के दुलर्भ हैं, और मध्यप्रदेश में ही सीमित हैं। ये कुमारगुप्त (प्रथम) और स्कन्दगुप्त के सिक्कों के सदृश ही है; उन पर नाचता मयूर और विजितावनिर्वनिपतिः श्री बुधगुप्त दिंव जयति लेख है। अब तक केवल 6 सिक्कों का उल्लेख प्राप्त है। इनमें से पाँच तो कनिंगहम को 1835 ई. में वाराणसी में मिला था और सभी पर 175 की तिथि थी। छठाँ सिक्का उन्हें बाद में सारनाथ में मिला था। उस पर फ्लीट ने तिथि 175 पढ़ा है। सम्भवतः यह सिक्का ब्रिटिश संग्रहालय में है।"6 एक अन्य सिक्के पर उन्होंने 18ग7 पढ़ा है पर उस सिक्के का कुछपता नहीं कि वह कहाँ है।

## उपलब्धियाँ :

"चाँदी के सिक्कों की उपलब्धियों का कोई समुचित आलेखन नहीं हुआ है। जो कुछ थोड़े से ज्ञात है, वे इस प्रकार है।

---

1. *इस तिथि का पाठ संदिग्ध है।*

2. *ज.रा.ए.सो. 12, (ओ.सी.) फलक, 2 आकृति 561 इस पर यह तिथि पढ़ा गया है; पर उसका पाठ निश्चित नहीं है। स्मिथ ने इस तिथि से युक्त एक सिक्के के ब्रिटिश संग्रहालय(मेघा संग्रह) में होने की बात लिखी है(ज.रा.ए.सो.1889, पृ.128) पर एलन की सूची में इस संग्रह के किसी सिक्के का कोई उल्लेख नहीं है।*

3. *एस.एम. शुल्क ने दो सिक्के प्रकाशित किये है, जिनमें बैठा हुआ वृष वामाभिमुख है। (ज. न्यू.सो.इ.22 पृ.193)*

## मुहम्मदपुर :

जैसोर(बंगाल) के निकट मुहम्मदपुर में समाचारदेव, शंशाक और एक अन्य गुप्त अनुकृति के सोने के सिक्कों के साथ चन्द्रगुप्त (द्वितीय) कुमारगुप्त( प्रथम) और स्कन्दगुप्त के चाँदी के सिक्कों के मिलने की बात कहीं जाती है। किन्तु अल्तेकर का मत है, कि दफीने का यह रूप असम्भव है।

## सुल्तानगंज :

कनिंगहम को सुल्तानपुर (जिला भागलपुर, बिहार) में एक स्तूप के भीतर पश्चिमी क्षत्रप रूद्रसिंह (तृतीय) के चाँदी के एक सिक्के के साथ चन्द्रगुप्त (द्वितीय) का एक चाँदी का सिक्का मिला था।

## कन्नौज :

कन्नौज के खण्डहरों में चन्द्रगुप्त(द्वितीय) के सोने के एक सिक्के के साथ कुमारगुप्त(प्रथम) का चाँदी का सिक्का मिलता था।

कनिंगहम को चन्द्रगुप्त(द्वितीय) के दो और कुमार गुप्त(प्रथम) के छः सिक्के मथुरा में और स्कन्दगुप्त का एक सिक्का संकीसा (जिला फर्रूखाबाद) में मिला था।

## नलियासर साँभर :

नलियासर सांभर(जिला जयपुर) के टीले पर 1949 ई. में कुमारगुप्त(प्रथम) का मध्यप्रदेश भाँति का एक सिक्का मिला था।

## कच्छ :

1961 ई. के लगभग भूतपूर्व कच्छ रियासत के किसी स्थान से चाँदी के 236 (अथवा 340) गुप्त सिक्कों का दफीना मिला था।

## अहमदाबाद :

1861 ई. में अहमदाबाद जिले में धुन्धुका अहमदाबाद सड़क के निर्माण के समय कुमारगुप्त (प्रथम) कबे 25 सिक्कों का दफीना मिला था।"

## सानौद :

1861 ई. में सानौद(जिला अहमदाबाद) में 1395 चाँदी के सिक्कों का दफीना मिला था। इस दफीने में कुमारगुप्त(प्रथम) के गरूड़ भाँति के 1100 सिक्के,

उत्तरवर्ती पश्चिमी क्षत्रपों के 3 और सर्व( तथाकथित वलमी) के सिक्के थे।

## नासिक :

1870 में नासिक में स्कन्दगुप्त के वृष भाँति के 83 सिक्कों का दफीना मिला था।

## ब्रह्मपुरी :

1946 ई. में कोल्हापुर के निकट ब्रह्मापुरी के उत्खनन में कुमारगुप्त (प्रथम) का एक सिक्का मिला था।

## एलिचपुर :

"1851 ई. में एलिचपुर में कुमारगुप्त(प्रथम) के 13 सिक्कों का दफीना मिला था।

चाँदी के सिक्कों की इन ज्ञात उपलब्धियों की संख्या इतनी कम है, कि इनके आधार पर गुप्त शासकों के प्रभाव के सम्बन्ध में कुछ भी अनुमान करना कठिन है। तथापि कुमारगुप्त(प्रथम) और स्कन्दगुप्त के सिक्कों का महाराष्ट्र (अर्थात नासिक, कोल्हापुर, एलिचपुर) में मिलना महत्व रखता है।"[1]

## समुद्रगुप्त :

"राखालदास बनर्जी ने कटवा (जिला बर्दवान बंगाल) से ताँबे के दो ऐसे सिक्कों के प्राप्त होने का उल्लेख किा है। जिसका एक ओर तो एकदम घिसा था। और दूसरी ओर गरूड़ और उसके नीचे समुद्र अकित था। उन्होंने इन्हें समुद्रगुप्त का कहा है। इन सिक्कों का प्रकाशन समुचित रूप में न होने के कारण अल्तेकर का कहना है कि, इनके आधार पर यह मानना उचित न होगा कि समुद्रगुप्त ने ताँबे के सिक्के चलाये थे। वस्तुत यह खेदजनक बात है, कि ये सिक्के अप्रकाशित है और हम यह भी नहीं जानते है कि वे कहाँ हैं फिर भी बनर्जी के कथन पर एकदम अविश्वास करने का कोई कारण नहीं जान पड़ता । हो सकता है कि समुद्रगुप्त ने ताँबे के सिक्के चलाये हों।1"[2]

---

1. कायनेज ऑव द गुप्त इम्पायर, पृ. 356
2. द.एज. ओंव इम्पीरियल गुप्ताज, पृ. 214

"सी.जे. राजर्स ने सुनेत(जिला लुधियाना पंजाब) से मिले ताँबे के कुछ ऐसे सिक्के प्रकाशित किये हैं जिनके एक और चक्र अथवा सूर्य और दूसरी ओर दो पंक्तियों में 'सत्रगुप्त' अंकित है। इस ढंग के सिक्कों पर अन्य कई नाम मिलते है पर उनमें कोई अन्य गुप्त नामान्त नहीं है। इन सिक्कों के समुद्रगुप्त के सिक्के होने की कल्पना हो सकती है। पर वे सिक्के न तो कहीं चित्रित हुए हैं और अध्ययनार्थ उपलब्ध है। अतः उनके सम्बन्ध में कोई निश्चित धारणा निर्धारित नहीं की जा सकती है।"[1]

## चन्द्रगुप्त (द्वितीय) :

"चन्द्रगुप्त(द्वितीय) को ताँबे के सिक्के आठ प्रकार के पाये जाते है। उनमें प्रायः सभी अपने प्रतीकों की दृष्टि से मौलिक है। वे न तो कुषाण सिक्कों की अनुकृति जान पड़ते है और न उन पर गंगा घाटी में प्रचलित ढले और ठप्पे वाले सिक्कों का ही कोई छाया उन दिखाई पड़ती है।"1

### 1. छत्र भाँति :

"सोने के छत्र भाँति के सिक्कों के समान ही यह सिक्का है। राजा वामाभिमुख खड़े और उनके पीछे छत्र लिए कुब्जक है।

### 2. खड़े राजा भाँति :

इन सिक्कों पर राजा दाहिना हाथ ऊपर उठाये खड़ा है; कुछ सिक्कों पर वह फूल लिये और कुछ पर हवनकुण्ड में आहुति देते जान पड़ते हैं।

### 3. अर्धशरीर भाँति :

इन पर हार, कुण्डल और कंकण से युक्त हाथ में पुष्प लिए राजा का वामाभिमुख अधशरीर अंकित है; इसके हुविष्क के अर्धशरीर सोने के सिक्कों की अनुकृति होने का भम्र हो सकता है। इस भाँति के कुछ सिक्कों पर राजा का चित्र ऊपर और नीचे 'श्री विक्रमादित्य' लिखा मिलता है, और कुछ पर चित ओर कोई लेख नहीं है।

---

1. *इसका पता हमे उत्खनन से प्राप्त मुद्रा सामग्री का पुर्नपरीक्ष करते समय लगा था (बुलेटिन ऑव द दकन कालेज रिसर्च इन्स्टीटयूट 21, पृ. 51)*

---

1. कायनेज आव द गुप्त इम्पायर, पृ. 40

## 4. चक्र भाँति :

"इसमें ऊपरी भाग में चक्र ओर नीचे 'चन्द्र' लिखा है। इस भाँति के सिक्कों की तुलना 'सत्रगुप्त' अंकित उन सिक्कों से की जा सकती है। जिनकी चर्चा ऊपर की गयी है।

इन सभी भाँति के सिक्कों के पट ओर एक ही प्रकार का प्रतीक है। ऊपर आधे हिस्से में गुप्त शासकों की मुहरों पर अंकित गरूड़ के समान मानव मुख और हाथयुक्त पंख फैलायें गरूड़ का है और नीचे निम्नलिखित कोई अभिलेख है:–

1. महाराज श्री चन्द्रगुप्त (छत्र भाँति)
2. महाराज चन्द्रगुप्त (अर्धशरीर भाँति क उपभाँति)
3. श्री चन्द्रगुप्तः (अर्धशरीर भाँति, उपभाँति ब और द तथा खड़े राजा भाँति)
4. चन्द्रगुप्त (अर्धशरीर भाँति, उपभाँति स और ई)
5. गुप्त (चक्र भाँति) चित ओर के चन्द्र लेख को मिला कर सिक्के पर राजा का पूरा नाम 'चन्द्रगुप्त' हो जाता है।

## 6. मस्तक भाँति :

कुछ सिक्कों पर बड़ा सा कुण्डल धारण किये हुये राजा का मस्तक अंकित है। ऐसे एक सिक्के पवर राजा खुले सिर है, और एक अन्य सिक्के पर मुकुट धारण किये हुए है। इस प्रकार इनके दो भाँति है। पहले भाँति पर पट और बिना किसी प्रतीक के केवल 'चन्द्र'लिखा हुआ है। दूसरे में बिना किसी लेख के गरूड़ अंकन है। लेख के अभाव में निश्चयपूर्वक कहना कठिन है कि वह चन्द्रगुप्त(द्वितीय) का ही सिक्का है। वह किसी भी गुप्त शासक का सिक्का हो सकता है।4

## 7. कलश भाँति :

"इस भाँति का एक कलश है; जिसके दोनों किनारे लताएं लटकती है। इसके पट ओर ऊपर अर्ध चन्द्राकार और नीचे 'चन्द्र' लेख मिलता है।

## 8. धनुर्धर भाँति :

"यह चन्द्रगुप्त( द्वितीय) के धनुर्धर भाँति (उपभाँति 2) की अनुकृति है। इस भाँति के दो सिक्के ज्ञात है। एक राजग्रह से दूसरा अहिच्छत्रा से मिला है।

अहिच्छत्रा से मिले सिक्के पर सोने के मुलम्मे के चिन्ह मिलते है। सोने के इस मुलम्मे के कारण अनुमान होता है, कि इन सिक्कों का प्रयोग ताँबे के सिक्कों के रूप में न था; साथ ही इस बात की भी सम्भावना नहीं जान पड़ती , कि उनका व्यवहार सोने के सिक्कों के रूप में होता रहा होगा। जिस सिक्के पर सोने के मुलम्मे का चिन्ह है, उसका तो नहीं, पर दूसरे सिक्के का वजन ज्ञात है। वह केवल 84.4 ग्रेन है। इसको देखते हुए अधिक सम्भावना इसब ात की है, कि ये सिक्के न होकर सिक्कों के नमूने मात्र हैं।राजगृह और अहिच्छत्रा दोनों ही प्राचीन काल में महत्व के नगर थे। हो सकता है गुप्त–काल में वहाँ टकसालें रही हों।

"ताँबे के इन सिक्कों के लिए कोई मानक भार बता सकता कठिन है। प्रत्येक भाँति के सिक्के की अपनी–अपनी भार–सीमा है, और उनके अन्तर्गत प्रत्येक सिक्के का अलग–अलग वजन है। फिर भी उनके भार का केन्द्र इस प्रकार अनुमान किया जा सकता है।

1. छत्र भाँति – 57.5–64.4 ग्रेन
2. खड़े राजा भाँति – 53.7ग्रेन
3. अर्धशरीर भाँति – 87,44,40,5,27 और 28 ग्रेन (सम्भवतः ये तीन मूल्यों के सिक्कों का द्योतक है !
4. चक्र भाँतिज – 8.4 ग्रेन
5. कलश भाँति – 12.1 ग्रेन
6. धनुर्धर भाँति – 84.3 ग्रेन"[1]

## रामगुप्त :

"रामगुप्त के सिक्के केवल ताँबे के ज्ञात है। और चित के प्रतीकों के अनुसार उनके पाँच भाँतियों की जानकारी अब तक हो पायी है।

1. वाभाभिमुख पूँछ उठाए बैठा सिंह
2. दक्षिणाभिमुख पूँछ उठा खड़ा सिंह
3. पंख फैलाये गरूड़

---

1. राजर्स, कैटलाग ऑव कायन्स कलेक्टेड बाई.सी. जे. पृ. 132–133

4. लटकते हुए लता से युक्त कलश

5. लता विहीन कलश।

इन सभी भाँति के सिक्कों पर समान रूप से पट ओर अर्धचन्द्र और उसके नीचे 'रामगुप्त' लिखा है। अधिकांश सिक्कों पर लेख 'रामगु', 'मगु' अथवा 'मगुप्त' के रूप में खण्डित मिलता है।

"इन सिक्कों के भार के निम्नलिखित केन्द्र बिन्दु है।

1. 31.3 ग्रेन

2. 18.7 ग्रेन

3. 6.5 से. 8.5

4. 3 से 4.6

5. 2.5 गेन! घिसन आदि को ध्यान में रखते हुए ऐसा जान पड़ता है कि ये पाँच मूल्य के सिक्कों के परिचायक है।

"विद्धानों के एक वर्ग की ऐसी धारणा है, कि ये सिक्के गुप्त वंश के न होकर मालवा के किसी स्थानिक शासक के हैं। अपने समर्थन में ये लोग प्रायः रूप, बनावट,आकार और वजन में इन सिक्कों के ताँबे के नन्हे मालव सिक्कों के साथ सादृश्य की ओर इंगित किया करते है। किन्तु इस सम्बन्ध में सबसे खेदजनक बात तो यह है कि ऐसा कहते समय ये लोग ऐतिहासिक भूगोल को एकदम भूल जाते है और 'मालव–गण' को 'मालवा प्रदेश' (जहाँ की रामगुप्त के सिक्के मिलते है) मानने की भूल कर बैठते है। मालव लोग, जिन्होंने सिक्के जारी किये थे जिनकी ओर ये विद्धान संकेत किया करते हैं, कभी मालवा प्रदेश में नहीं रहे। वे सदैव मालवा से कई सौ मील दूर उत्तर –पश्चिम जयपुर(राजस्थान) जिले के नगर अथवा ककोंटनगर और उसके आसपास के क्षेत्र में ही सीमित रहे। यदि रामगुप्त के सिक्कों के मालव लोगों के सिक्कों से प्रभावित होने का अवसर मिल सकता था। तो उनके इसी क्षेत्र में मालवा नहीं। आज तक मालवा लोगों का एक भी सिक्का मालवा प्रदेश में नहीं मिला है। मालवा लोगों के सिक्कों से रामगुप्त के सिक्के प्रभावित नहीं है, यह इस बात से भी प्रकट है कि वे मालवा लोगों के क्षेत्र में सर्वथा अज्ञात है।

गुप्तों के प्रारम्भकालिक समवर्ती नागों की पहुँच मालवा लोगों के प्रदेश तक थी। उनके कुछ सिक्के वहाँ मिले हैं। अतः इस बात की सम्भावना हो सकती है, कि नागों ने मालव लोगों के सिक्कों को प्रभावित किया हो अथवा मालव लोगों के सिक्कों से स्वयं प्रभावित हुए हो। इस प्रकार यदि रामगुप्त के सिक्कों में मालव लोगों के सिक्कों का कोई प्रभाव परिलक्षित होता है, तो वह उसे अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त हुआ है, और मालवा सिक्कों के साथ उसका सम्बन्ध दूर का है। वस्तुतः तथ्य यह है कि, रामगुप्त के सिक्के नाग सिक्कों के अनुकरण हैं और जैसा कि अल्तेकर ने बताया है, आकार और वजन में वे नाग सिक्कों के अधिक निकट है किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं होता कि ये सिक्के मालवा के किसी स्थानिक शासक के ही हैं। इस सम्बन्ध में यह तथ्य भुला नहीं दिया जाना चाहिए कि हमारे देश में सिक्के सदैव स्थानिक रहे हैं। सिक्कों के प्रचलित करते समय उनके प्रचलित करने वाले अधिकारी प्रचलित स्थानीय परम्परा का निर्वाह करने का सदैव यत्न करते रहे हैं। गुप्त शासकों के चाँदी के सिक्के बनावट, आकार और वजन पर पश्चिमी क्षत्रपों के सिक्कों की अनुकृति है। अतः आश्चर्य और सन्देह का कोई कारण नहीं है। यदि मालवा में, उस प्रदेश के प्रचलित सिक्कों के अनुकरण पर किसी गुप्त शासक के ताँबे के सिक्के मिलते हैं।

"अपना मत प्रतिपादित करते समय इन विद्वानों ने इस तथ्य की सदा ही उपेक्षा की है। कि रामगुप्त के सिक्कों की गुप्त सिक्कों और मुहरों के साथ भी समानता है।

1. इन सिक्कों पर बैठे हुए सिंह पर ठीक वही स्वरूप है जो ध्रुवस्वामिनी की बसाट में मिली मिट्टी के मुहर पर पायी जाती है।

2. कलश भाँति के सिक्के चन्द्रगुप्त(द्वितीय) के कलश भाँति के सिक्कों के समान ही है।

3. इन सिक्कों पर मिलने वाला गरूड़ भी चन्द्रगुप्त(द्वितीय) और कुमारगुप्त(प्रथम) के ताँबे के सिक्कों पर मिलने वाले गरूढ़ की भाँति ही है।

4. रामगुप्त के सिक्कों का पट भाग भी चन्द्रगुप्त के कलश भाँति के पट के समान ही है। यही नहीं इन सिक्कों का वजन भी चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के सिक्कों के वजन से मिलता हुआ है। और ये सब इस बात के निःसन्दिग्ध प्रमाण है, कि ये सिक्के गुप्तवंश के ही है।"

"सर्वोपरि, इस बात का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है कि इस काल में मालवा में कोई ऐसा शक्तिशाली राजा हुआ हो, जो सिक्के प्रचलित करने की क्षमता रखता हो।"[1]

## कुमारगुप्त प्रथम :

"कुमारगुप्त के तीन भाँति के सिक्के मिलते हैं।

### 1. छत्र भाँति :

चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के ताँबे के इस भाँति के सिक्के के अनुरूप ही ये सिक्के है; अन्तर केवल इतना ही है कि नाम एक पंक्ति में न होकर दो पंक्तियों में

1. महाराज श्री कुमा
2. र गुप्त है!

### 2. खड़ा राजा भाँति :

इसमें राजा कच्छ धारण किये, आभूषण पहने, बायाँ हाथ कटिविनस्थ और दहिना नीचे लटकाये खड़े है। अल्तेकर की धारणा है, कि वे बायें हाथ में धनुष और दाहिने हाथ में बाण लिये हैं। वे इसे धनुर्धर भाँति कहते हैं। पर उनके इस कल्पना का समर्थक सिक्कों से नहीं होता। इनके पट और आधे भाग में गरूड़ और आधे भाग में 'श्री कुमारगुप्त' लेख है।

### 3. लक्ष्मी हवन कुण्ड भाँति :

यह कुमारगुप्त का नये भाँति का सिक्का है। इसके एक ओर लक्ष्मी किसी अस्पष्ट वस्तु पर (एलन के अनुसार दक्षिणाभिमुख बैठे सिंह पर और स्मिथ के अनुसार पद्यासन आसन पर) बैठी है। और दूसरी ओर हवनकुण्ड सृदश कोई वस्तु है। वह गरूड़ का विकृत रूप भी हो सकता है। उसके नीचे 'श्री कु' लेख है

कुमारगुप्त के सिक्कों के वजन का कहीं उल्लेख नहीं है। पर उपयुक्त भाँति के कुछ सिक्कों का भार 84 अथवा 58 ग्रेन है।

---

1. राजर्स, कैटलाग ऑव कायन्स कलेक्टेड बाई.सी. जे. पृ. 125–338

1. महाराज श्री  2. हरिगुप्त लेख है।

2. कलश भाँति :

इस भाँति के सिक्कों में कलश आसन पर रखा है। कनिंगहम की धारणा थी कि वह आसन पर रखा भगवान बुद्ध का भिक्षा पात्र है।"

पट और दो पंक्तियों में 1 श्री महाराज 2. हरिगुप्तस्य लेख है। इस भाँति के सिक्कों की चन्द्रगुप्त(द्वितीय) और रामगुप्त के कलश भाँति के सिक्कों से तुलना की जा सकती है; अन्तर केवल इतना ही है कि कलश आसन पर है और लेख में राजा की उपाधि का प्रयोग हुआ है।"[1]

## उपलब्धियाँ :

तथाकथित समुद्रगुप्त के सिक्के बंगाल में बर्दवान जिले में मिले थे। कुम्हार(प्राचीन पाटलिपुत्र) की खुदाई में चन्द्रगुप्त के 11 सिक्के मिले थे। स्मिथ ने चन्द्रगुप्त के सिक्के उत्तर प्रदेश में अयोध्या, कौशम्बी और अहिच्छत्रा से और पंजाब में सुनेत और पानीपत से मिलने की बात लिखी है। जे.पी. रॉलिस के संग्रह का एक सिक्का झेलम जिले में मिला था। रामगुप्त के अधिकांश सिक्के भिलसा(बिदिशा) और एरण में मिले हैं। एक सिक्का झाँसी से 35 मील दूर तालभट में मिला था। कुमारगुप्त का एक सिक्का अहिच्छत्रा में और दूसरा सम्भवतः अयोध्या में मिला था। स्मिथ ने कुमारगुप्त का पंजाब से मिला एक सिक्का हूण सिक्के के रूप में प्रकाशित किया है। हरिगुप्त के सभी सिक्के अहिच्छत्रा से मिले हैं। वे चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के सिक्कों के साथ मिले हैं।"

---

1. गुप्त, परमेश्वरी लाल– गुप्त साम्राज्य, पृ. 218

# अध्याय 4

# गुप्त तथा समसामयिक अभिलेखों में वैष्णव धर्म सम्बन्धी विवरण

# अध्याय 4

# गुप्त तथा समसामयिक अभिलेखों में वैष्णव धर्म सम्बन्धी विवरण

## गुप्त कालीन अभिलेख

गुप्त अभिलेखों मे प्रयुक्त संवत् का अध्ययन अनेक सभ्यताओं से पूरिपूर्ण है जिस समय फ्लीट ने 1888 ई. में गुप्त अभिलेख का स्वसम्पादित संग्रह 'कॉपर्स इन्सिक्रप्शनम इण्डिकेरम' प्रकाशित किया उस समय तक सबसे पुराना अभिलेख, जिसमें इस संवत् में तिथि दी गई थी, द्वितीय चन्द्रगुप्त का 82 वें वर्ष का उदयगिरि लेख था। लेकिन तब तक यह भी निश्चित नहीं हो पाया था कि इस संवत् का प्रवर्तन स्वयं गुप्तों ने किया था अथवा नहीं। "उस समय तक ज्ञात अभिलेखों में तिथियों के साथ मात्र 'संवत्' 'संवत्सर'" अथवा (संवत् या संवत्सर का संक्षेप) शब्द का प्रयोग किया हुआ मिला था जिसका तात्पर्य 'वर्ष' होता है। केवल स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ लेख की 15 वीं पंक्ति में गुप्त प्रकाले गणनां विधायं' पद आया है जिसका अर्थ है 'गुप्त के काल में गणना करके'। यद्यपि इससे इतना निश्चित हो गया, कि इस संवत् का सम्बन्ध गुप्तों से था। उनका विश्वास था कि गुप्त अभिलेख में प्रयुक्त संवत् मूलतः नेपाल के लिच्छवियों का था जिसे भारत के गुप्त सम्राटों ने उस समय जब समुद्रगुप्त के काल में नेपाल के लिच्छवियों का था जिसे भारत के गुप्त सम्राटों ने, उस समय जब समुद्रगुप्त के काल में उनके नेपाल से धनिष्ट सम्बन्ध स्थापित हुए, अपना लिया होगा।"[1]

1. अब यह निश्चित हो गया है, कि नेपाल के लिच्छवियों ने शक संवत् का प्रयोग किया था उस संवत का नहीं जो भारत में गुप्त कहलाया।

2. "द्वितीय कुमारगुप्त तथा बुधगुप्त के दो ऐसे अभिलेख मिल गये है। जिन पर क्रमशः 'वर्ष राते गुप्तानां सचतुः पच्वाशदुत्तते (गुप्तों के 154 वर्ष बीत जाने पर) तथा गुप्तानां समतिक्रान्ते सप्तपंचाशदुत्तरे शतें समाना (जब गुप्तों के 157 वर्ष व्यतीत हो गये) लिखा है। इनसे प्रश्नातीतरूपेण सिद्ध हो गया है कि गुप्त अभिलेखों में प्रयुक्त संवत् उनका अपना है, नेपाल के लिच्छवियों से उधार लिया हुआ नहीं।"

---

1. गोयल श्रीराम– गुप्तकालीन अभिलेख, पृ. 1

इनके परिणामस्वरूप गुप्त अभिलेखों में प्रयुक्त संवत् का प्रारम्भ कब हुआ। कनिंघम ने 1854 में अपने ग्रन्थ 'भील्साटोप्स' में अल्बरूनी द्वारा उल्लिखित गुप्त संवत् (जो अलबरूनी के अनुसार शक संवत् के 241 वर्ष बाद अर्थात 319 ई. में प्रारम्भ हुआ) तदुपरान्त फ्लीट ने अपने 'कॉपर्स' में अल्बरूनी के कथन का डब्ल्यू राइट द्वारा किया गया अनुवाद दिया जिससे यह सिद्ध हो गया है, कि गुप्त संवत् का प्रारम्भ गुप्तों के उच्छेद से हुआ।[1]

गुप्त अभिलेखों में प्रयुक्त गुप्त संवत् 319 ई.0 में प्रारम्भ हुआ यह तथ्य जैन साक्ष्य से भी ज्ञात होता है । यतिवृषभ कृत 'तिलोयपण्णति' में (जिसकी रचना छठी शती के उपरान्त कभी हुई) एक स्थल पर कहा गया है, कि शकों के 242 वर्ष तक शासन करने के उपरान्त गुप्तों ने 255 वर्ष राज्य किया (जादो स सगणिरिंदो रज्जं वस्सम दुसयवादला दोशी सदा पज्जावण्णा गुत्ताणं (1503–4) एक अन्य स्थल पर इस ग्रन्थ में गुप्तों का शासन काल 231 वर्ष बताया गया है।)

अभिलेखों में प्रयुक्त गुप्त संवत् 319 ई. में हो प्रारम्भ होने वाला संवत् ही है, इसको आभिलेखिक साक्ष्य से भी दर्शाया जा सकता है।

1. गौड़ नरेश शशांक के गज्जाम अभिलेख में गुप्त संवत् तीन सौ तिथि दी गई है (गौप्ताब्दे वर्ष शत त्रये वर्तमाने महाराजधिराज श्री शंशक राज्ये)

   शशांक हर्ष का समकालीन और पक्का शत्रु था और चीनी यात्री युवानच्वांग के अनुसार उसकी मृत्यु 637 ई. के पूर्व कभी हुई।[2] उनके द्वारा प्रयुक्त गुप्त संवत् को 19 ई. में प्रारम्भ मानने पर ही इस लेख की तिथि (300+319=619 ई) है।

2. यही बात कामरूप नरेश हर्ज्जरवर्मा के तेजपुर शिलालेख के विषय में है जिसमें गुप्त संवत् 510 तिथि दी गई है। मन्दसौर अभिलेख में कहा गया है कि कुमारगुप्त के काल में मालव संवत् 493 में दशपुर (मन्दसौर) में एक सूर्य

मन्दिर बनवाया गया था। इसका अर्थ है कि मालव संवत 493 (=436ई.) गुप्त संवत् 96 और 130 के बीच में(प्रथम कुमार गुप्त की ज्ञात तिथियां 154 द्वितीय कुमारगुप्त की ज्ञात तिथि के आस पास पड़ेगा। गुप्त संवत् का प्रारम्भ 319 ई. में मानने पर प्रथम कुमारगुप्त की ज्ञात तिथियों 415 से 449 ई. तक निर्धारित होता है। इससे मालव संवत् 493(=436 ई.) इन तिथियों के बीच में पड़ जाता है।"[3]

---

1. गोयल श्रीराम प्राचीन नेपाल का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास, पृ.32
2. महाजन बी.डी., प्राचीन भारत का इतिहास पृ. 613 आगे
3. गोयल श्रीराम, गुप्त कालीन अभिलेख, पृ. 2

फ्लीट का कथन है, कि परिव्राजक नरेश संक्षोम के गुप्त संवत् 209 के खोह दान पत्र से प्रमाणित है कि गुप्त संवत् के मासों के संयोजन में कृष्ण पक्ष शुक्ल पक्ष के पूर्व आता था अर्थात उसमें मास का प्रारम्भ कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को होता था। यदि ऐसा ही गुप्त काल में हुआ होगा तो अनुमान किया जा सकता है कि गुप्त संवत् का प्रारम्भ शक संवत् 241 में कभी हुआ तो अनुमान किया जा सकता है कि गुप्त संवत् का प्रारम्भ शक संवत् 241 में हुआ उसकी गणना उस वर्ष के चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से की गई। एक गणना के अनुसार 319 ई. में चैत्र के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा 1 मार्च को पड़ी थी अतः यही गुप्त संवत् के प्रारम्भ की तिथि होगी और गुप्त संवत् (गत) का आरम्भ 26 फरवरी 320 को हुआ होगा।

सबसे पुराना अभिलेख जिसमें गुप्त संवत् में तिथि दी गई है द्वितीय चन्द्रगुप्त का मथुरा अभिलेख है जो संवत् 61 में लिखवाया गया जब द्वितीय चन्द्रगुप्त के शासन का पांचवा वर्ष चल रहा था। इस लिये इस संवत् के प्रवर्तक की पहिचान के विषय में हमारे पास पांच विकल्प है।

1. या तो इसका प्रवर्तन महाराज गुप्त ने किया 2. या तो महाराज घटोत्कच ने 3. या महाराजधिराज प्रथम चन्द्रगुप्त ने। 4. या महाराजधिराज समुद्रगुप्त ने। 5. महाराजधिराज द्वितीय चन्द्रगुप्त ने।

क्योंकि गुप्त वंश के दो नरेश गुप्त और घटोत्कच सम्भवतः स्वतन्त्र होते हुए भी मामूली शासक थे, इसलिये इनमें प्रथम दो विकल्पों पर किसी ने भी गम्भीरतापूर्वक बल नहीं दिया है। हाल ही में यह तर्क जरूर खा गया है कि उन्होंने 231 वर्ष शासन किया। इसलिये महाराज गुप्त और घटोत्कच के (जो स्वतन्त्र नरेश थे) शासन की अवधि इन्हीं 231 वर्ष में सम्मलित होगी अर्थात गुप्त संवत् की गणना महाराज गुप्त के राज्यारोहण से प्रारम्भ हुई होगी। इसलिये महाराज गुप्त और घटोत्कच के शासन को गुप्त संवत् के प्रथम वर्ष के पूर्व रखा जा सकता है।

अगला विकल्प है, कि गुप्त संवत् का प्रवर्तन प्रथम चन्द्रगुप्त ने किया। क्योंकि प्रथम चन्द्रगुप्त पहला गुप्त नरेश था जिसने 'महाराजाधिराज' उपाधि धारण करके अपने वंश को साम्राज्यिक प्रतिष्ठा दिलाई। 319 ई. को उसके राज्यरोहण अथवा महाराजधिराज उपाधि धारण किये जाने का वर्ष मानते है) मजूमदार के अनुसार समुद्रगुप्त के 5वें तथा 9 वें वर्ष के नालन्दा और गया[1] दानपत्रों को दृष्टि में रखने

---

1. ये दोनों अभिलेख संदिग्ध हैं।

पर यह सर्वथा सम्भव लगता है, कि गुप्त संवत् का प्रवर्तन स्वयं समुद्रगुप्त द्वारा उनके अभिषेक की स्मृति में किया गया हो। मजूमदार का कहना है, कि यह बात निश्चित लगेगी अगर उसके 5 वें वर्ष के नालन्दा दानपत्र को उसका असली दानपत्र या असली दानपत्र की परवर्ती युग में तैयार की गई अनुकृति हो। समुद्रगुप्त 5वें वर्ष में अर्थात 319+5=324 ई. में शासन कर रहा था।"[1]

मजूमदार का उपयुक्त मत नालन्दा और गया दानपत्रों की विश्वसनीयता पर (जिस पर इन अभिलेखों पर लिखित एक परिशिष्ट में विचार किया है) "इसी प्रकार 783 ई. में जिनसेन द्वारा रचित जैन ग्रन्थ हरिवंश पुराण में बताया गया है, कि बाणभट्ट के 242 वर्ष शासन कर लेने के बाद गुप्तों ने 231 वर्ष राज्य किया।

इस दानपत्र को असली दानपत्र की प्रतिलिपि मान लेने से भी यह सिद्ध नहीं होता, कि समुद्रगुप्त 324 में शासन कर रहा था। द्वितीय चन्द्रगुप्त जो 376 ई. में गद्दी पर बैठा, जिसने गद्दी पर बैठने के बाद ध्रुवदेवी से प्रेम विवाह किया और लगभग 410 ई. में शकों के विरूद्ध लड़े गये युद्ध में व्यक्तिगतरूपेण भाग लिया 324 में व्यस्क नहीं हो सकता था। इसलिये नालन्दा दानपत्र की तिथि गुप्त संवत् का वर्ष नहीं है। अगर यह तिथि विश्वसनीय है तो यह समुद्रगुप्त के शासन का वर्ष होना चाहिए। उस अवस्था में गया दानपत्र की तिथि भी समुद्रगुप्त के शासन का वर्ष होगा।"[2]

प्रयाग, एरण तथा महरौली प्रशस्तियों में और नालन्दा तथा गया दानपत्रों में ही नहीं आया है। समुद्रगुप्त के शासन के अन्त तक गुप्त संवत् अस्तित्व में नहीं आया था। ऐसा ही द्वितीय चन्द्रगुप्त ने भी किया होगा और गुप्त संवत् की गणना अपने पितामह प्रथम चन्द्रगुप्त के राज्यारोहण अथवा 'महाराजधिराज' उपाधि धारण करने के वर्ष से कर दी होगी। "बिहार के शाहाबाद जिले से प्राप्त वर्ष 30 कव मन्दारगिरि गुहालेख[3] वर्ष 30 का ही मुण्डेश्वरी अभिलेख (भाण्डारकर–सूची सं. 1257 आई. ई. 1920 पृ.25 ) तथा वर्ष 64 का बोधगया अभिलेख (भाण्डारकर–सूची सं. 1258) दिनेशचन्द्र सरकार के अनुसार लिपिशास्त्रीय आधार पर ये सभी अभिलेख चौथी शती ई. के प्रतीत होते है। एन.जी. मजूमदार ने भी मुण्डेश्वरी लेख को लिपिशास्रीय आधार पर चौथी शती ई. का बताया है। मन्दारगिरि गुहा लेख

---

1. गोयल श्रीराम, गुप्त कालीन अभिलेख, पृ. 5
2. पी.एल. गुप्त – गुप्त साम्राज्य, पृ. 198
3. इपीग्राफिया इण्डिका, पृ. 304

में तो किसी राजा का नाम ही नहीं है (जबकि अगर यह तिथि किसी राजा के शासन काल के वर्ष होती तो उस राजा का नाम होना चाहिए था)।"[1]

मुण्डेश्वरी अभिनलेख में महाप्रतिहार, महासामन्त, महाराज उदयसेन का नाम दिया गया है। इस लेख की तिथि को भी उसके अपने शासनकाल का वर्ष मानना कठिन लगता है। बोधगया अभिलेख की तिथि 64 वाँ वर्ष है। किसी राजा के शासन की अवधि इतनी लम्बी होनी असम्भव न होते हुए भी दु:सम्भाव्य है। इसलिये इन अभिलेखों की तिथियों का किसी संवत् की तिथियाँ मानना अधिक उचित लगता है। और ऐसा एक मात्र संवत् जिसका 30 वां और 64 वां वर्ष चौथी शती ई. में पड़े गुप्त संवत् ही है।"[2]

इसलिये इन अभिलेखों में गुप्त संवत् का प्रयोग मानना पड़ेगा। इसका मतलब होगा कि गुप्त संवत् का अस्तित्व 319+30=343 ई. भी था। इसलिये इसका प्रवर्तन द्वितीय चन्द्रगुप्त के राज्याभिषेक के पूर्व ही उसके किसी पूर्वज प्रथम चन्द्रगुप्त अथवा समुद्रगुप्त ने कर दिया होगा। लेकिस उस अवस्था में समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में इसका प्रयुक्त न होना कुछ विचित्र सा प्रतीत होगा। वस्तुतः वर्तमान अवस्था में गुप्त संवत् के प्रवर्तक की पहिचान दुष्कर है।

---

1. जोशी विश्वेश्वानन्द, इण्डोलोजिकल जर्नल, भाग 2 पृ. 12
2. गुप्त परमेश्वरी लाल, गुप्त साम्राज्य, पृ. 211

# गुप्त इतिहास, राज्यक्रम और तिथिक्रम की संक्षिप्त रूपरेखा

## प्रारम्भिक गुप्त तिथिक्रम

प्रारम्भिक गुप्त राजाओं का अनुक्रम हमें गुप्त अभिलेख की वंशावली वाले भाग में मिलता है। इनके अनुसार स्कन्दगुप्त तक इस वंश में क्रमशः गुप्त, घटोत्कच, प्रथम चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमारगुप्त तथा स्कन्दगुप्त नामक शासक हुए जिनमें प्रत्येक अपने पूर्वगामी का पुत्र थे। क्योंकि गुप्त वंशावलियों में राजाओं के नाम पिता पुत्र परम्परानुसार मिलते है इसलिये इनमें ऐसे राजाओं के नाम नहीं मिलते जो अपने भाईयों के पूर्व अथवा किसी राजा के विरूद्ध विद्रोह करके शासन किया था। उनका अस्तित्व हमें अन्य साक्ष्य से ज्ञात होता है और उनकी तिथियां अज्ञात होने के कारण उनका गुप्त इतिहास में सही स्थान प्रायः विवादग्रस्त है। समुद्रगुप्त के साथ काच का (जो अनुमानतः समुद्रगुप्त का सौतेला भाई था) द्वितीय चन्द्रगुप्त के साथ रामगुप्त का, प्रथम कुमारगुप्त के साथ उसके सगे भाई गोवन्दिगुप्त का तथा स्कन्दगुप्त के साथ पुरूगुप्त (जो सम्भवतः स्कन्दगुप्त का सौतेला भाई था एवं घटोत्कचगुप्त का। वह भी हो सकता है स्कन्दगुप्त का भाई रहा हो) नाम इसी प्रकार जुड़े है। इनमें सिवाय गोविन्दगुप्त के सभी के द्वारा 'महाराजधिराज' रूप्र शासन किये जाने के आभिलेखिक अथवा मौद्रिक प्रमाण उपलब्ध है– केवल गोविन्दगुप्त के स्वतन्त्र रूपेण शासन करने की सम्भावना अभी तक प्रश्नातीत है।[1]

इस प्रकार स्कन्दगुप्त की मृत्यु तक सम्राटों का अनुक्रम निश्चित है, केवल विद्रोही भाईयों का सही स्थान निर्धारित करने की समस्या रह जाती है। स्कन्दगुप्त के उपरान्त शासन करने वाले परवर्ती गुप्त सम्राटों का अनुक्रम और तिथिक्रम दोनों ही विवादास्पद है।

जहां तक प्रारम्भिक गुप्त तिथिक्रम का सम्बन्ध है गुप्त अभिलेखों से हमें स्कन्दगुप्त तक शासन करने वाले गुप्त सम्राटों की निम्नलिखित तिथियां ज्ञात है।

1. प्रथम चन्द्रगुप्त :– 319 ई. में राज्यभिषेक या 'महाराजधिराज' उपाधि ग्रहण। (यह इस अनुमान निर्भर है कि गुप्त संवत् की

---

1. देखिये, प्रभाकर, मन्दसौर अभिलेख 467 ई.

गणना उसके अभिषेक या 'महाराजधिराज' उपाधि धारण करने से की गई।

2. द्वितीय चन्द्रगुप्त :— गुप्त सवंत् 61 (=380. ई.) से 93 (=412 ई.) तक ! (गुप्त संवत् 61 उसके शासन का 5 वा वर्ष था इसलिये उसने गुप्त संवत् 56 (=375—6 ई.) में शासन प्रारम्भ किया होगा।

3. प्रथम कुमारगुप्त :— गुप्त संवत् (=415 ई.) से 130(=449 ई.) तक! (उसकी अन्तिम ज्ञात तिथि उसकी रजतमुद्राओं पर मिलती है। इन पर 100 एवं 30 का चिन्ह स्पष्ट है, परन्तु दहाई का चिन्ह किसी सिक्के पर स्पष्ट नहीं है।[1]

4. स्कन्दगुप्त :— गुप्त संवत् 136 (=455 ई.) से 148 (=467 ई.) तक। (परन्तु उसके जूनागढ़ लेख से स्पष्ट है कि सने गु.सं. 136 के काफी समय पूर्व शासन करना प्रारम्भ कर दिया था)"[2]

द्वितीय चन्द्रगुप्त का जन्म लगभग 336 ई. में हुआ और समुद्रगुप्त लगभग 350 ई. में गद्दी पर बैठा[3] क्योंकि समुद्रगुप्त का एक अन्य पुत्र रामगुप्त भी था जो द्वितीय चन्द्रगुप्त से बड़ा ाि, इसलिये समुद्रगुप्त का विवाह लगभग 330 ई. में और उसका अपना जन्म 305—10 ई. के बीच में किसी समय हुआ होगा। इसके बाद में नहीं। इस निष्कर्ष्ज्ञ के प्रकाश में प्रथम चन्द्रगुप्त और कुमारदेवी का विवाह लगीाग 305 ई. में मानना अनिवार्य है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि लिच्छवियों के साथ विवाह सन्धि का नियोजन घटोत्कच के काल में हुआ था इसलिये उनकी महत्ता उसके पिता से कुछ अधिक मानी गई और उसको प्रभावती के दानपत्रों तथा स्कन्दगुप्त तक इन पांच पीढ़ियों के राजाओं ने 467—319 =148 वर्ष शासन किया। महाराज गुप्त ने लगभग 295 से लगभग 300 ई. तक और महाराज घटोत्कच ने लगीाग 300 से 319 ई. तक शासन किया होगा।

गुप्त राजाओं के इतिहास की स्कन्दगुप्त तक संक्षिप्त रूपरेखा जिससे इस युग के अभिलेखों को समझने में सहायता मिलती है।

---

1. गुप्त, पी.एल., गुप्त साम्राज्य, पृ. 179—181
2. गोयल, श्रीराम, गुप्तकालीन अभिलेख, पृष्ठ 8
3. को.हि.ई. III भाग 1 पृ. 37

## गुप्त और घटोत्कच

"ये गुप्त वंश के प्रथम दो नरेश थे। इन दोनों ने मात्र 'महाराज' की उपाधि धारण की। इनके न सिक्के मिलते हैं और न अभिलेख। कुछ ऐसी मुहरे अवश्य है मिलती है जिन पर 'गुप्तस्य', 'श्रीगुप्तस्य' जैसे लेख मिले है परन्तु उनको निश्चयतः प्रथम गुप्त नरेश की मानने के लिये कोई प्रमाण नहीं है। इन गुप्तो ने लगभग 295–300 ई. में शासन किया होगा।"[1]

## प्रथम चन्द्रगुप्त

वह अपने वंश का प्रथम 'महाराजधिराज' था। ऐसा प्रतीत होता है, कि गुप्त संवत् की गणना उसी के राज्यारोहण से की गई चाहे इसका प्रवर्तक कोई भी नरेश क्यों न रहा हो उसने लगभग 350 ई. तक शासन किया। उसका कोई अभिलेख नहीं मिला है। प्रथम चन्द्रगुप्त कुमारदेवी प्रकार की सुवर्णमुद्रायें उसी ने चलायी थी। ऐसा विचार गुप्त गोयल, त्रिपाठी और शर्मा आदि बहुत से विद्धानों का है।

## समुद्रगुप्त

प्रथम चन्द्रगुप्त और उसकी लिच्छवि पत्नी महादेवी कुमारदेवी का पुत्र समुद्रगुप्त (उपाधि पराक्रमांक आदि) था। उसका जन्म लगभग 305–10 ई. के बीच में हुआ, विवाह लगभग 336 ई. में हुआ था। उसके पुत्र रामगुप्त का जन्म 330–335 के बीच में दूसरे पुत्र द्वितीय चन्द्रगुप्त का लगभग 335 ई. में एवं स्वयं समुद्रगुप्त का राज्यारोहण लगभग 350 ई. में। उनकी स्वर्ण मुद्राये भी चलती थी। तथा कई अभिलेख भी जिनमें प्रयाग प्रशस्ति तथा एरण स्तम्भ लेख सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

---

1. ओझा, गौरीशंकर, हीराचन्द्र, भारतीय प्राचीन लिपिमाला, तृतीय संस्करण, पृ. 66

# समुद्रगुप्त पराक्रमांक (335–375 ई.)

## इलाहाबाद स्तम्भ अभिलेख

"सिक्कों की बहुत बड़ी संख्या के अतिरिक्त समुद्रगुप्त के राज्य के लिये इलाहाबाद स्तम्भ अभिलेख का महत्व सबसे अधिक है। यह अभिलेख अशोक के एक स्तम्भ पर अंकित है। अब यह स्तम्भ इलाहाबाद के किले में है और कौशाम्बी में स्थित अपने मूल स्थान से इसे हटा लिया गया था। इस अभिलेख की कोई तिथि नहीं है। फ्लीट का विचार था, कि यह अभिलेख समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् लिखा गया था। किन्तु अब यह विचार त्याग दिया गया गया है और सिक्कों तथा अन्य अभिलेखों पर अश्वमेघ यज्ञ का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार इस अभिलेख की तिथि दक्षिण से लौटने के बाद और अश्वमेघ यज्ञ से पहली रखनी होगी।

अभिलेख असाम्प्रदायिक और पूर्णतः ऐतिहासिक है। इसकी रचना समुद्रगुप्त के राजकवि हरिषेण ने की। अभिलेख की भाषा एवं शैली से स्पष्ट है, कि इसका रचयिता उच्चकोटि का कवि था। हरिषेण युद्ध का मंत्री (सन्धिविग्रहिक) था। प्रशस्ति का लेखक संस्कृत पद्य की सूक्ष्मताओं से पूर्णतः परिचित था। अभिलेख का कुछ अंश पद्य में और कुछ गद्य में है। बी.ए. स्मिथ के अनुसार 'राजकवि द्वारा रचित प्रलेख अभी भी लगभग पूर्णतः प्राप्य है और उस समय की घटनाओं का तत्कालीन विस्तृत वर्णन इससे प्राप्त होता है। असंख्य भारतीय अभिलेखों से यह सम्भवतः अधिक श्रेष्ठ है।'"

इलाहाबाद प्रशस्ति अभिलेख ने समुद्रगुप्त के अभियानों को चार श्रेणियों में विभक्त किया है। पहली श्रेणी में दक्षिण के बारह राजाओं के विरूद्ध अभियान है। दूसरी श्रेणी में 'आर्यवत' के नौ राजाओं के नाम है और उनके साथ कुछ अन्य राजा भी है जिनके नाम नहीं दिए गए हैं। तीसरी श्रेणी में बनवासी असभ्य जातियों के नेता है और चौथी श्रेणी में सीमावर्ती राज्य तथा प्रजातन्त्र है। कुछ विदेशी शासकों के साथ समुद्रगुप्त के सम्बन्धों का उल्लेख भी किया जाता है।

अभिलेखों का प्रारम्भिक भाग पद्य में है। इसमें आठ श्लोक है। इसमें समुद्रगुप्त की प्रारम्भिक शिक्षा तथा राजा बनने की योग्यता का उल्लेख है। पहले दो श्लोक तो लगभग पूर्णतः लुप्त हो चके हैं। उनके अवशेषों से प्रतीत होता है,

कि अपने पिता के समय उसने कुछ युद्धों में सफलतापूर्वक भाग लिया। पहले श्लोक में कहा गया है, कि समुद्रगुप्त एक योग्य विद्वान था। वह शास्त्रों का ज्ञाता था और विद्वान व्यक्तियों की संगति का अत्यन्त इच्छुक था। चौथे श्लोक में बताया गया है, कि समुद्रगुप्त को उसके पिता ने अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया और यह आर्शीवाद दिया 'समस्त संसार पर राज्य करो।' यह दरबारियों की उपस्थिति में किया गया, और ये अति प्रसन्न हुए। कुछ अन्य व्यक्ति ईर्ष्यावश पीले पढ़ गये। पॉचवे और छठे श्लोकों में सम्भवतः उन युद्धों का वर्णन है जिनमें उसने अपने शत्रुओं को परास्त किया। प्रतीत होता है, उन्हें क्षमता दान दिया गया था। उन्होंने पश्चाताप् किया और उनके मन प्रसन्नता तथा स्नेह से भर गए। सातवें और आठवें श्लोकों में समुदगुप्त के सैनिक अभियानों तथा विजयों के विवरण दिए गए हैं।

अभिलेख की तेरहवीं पंक्ति में कहा गया है, कि समुद्रगुप्त ने उत्तरी भारत के तीन राजाओं को पराजित किया जिनके नाम थे, अच्युत नाग, नागसेन, और गणपति नाग। ये राजा क्रमशः अहिछत्र, मथुरा और पद्मावती में राज्य करते थे यही तीन नाम इक्कीसवीं पंक्ति में 'आर्यावर्त' के अन्य राजाओं के साथ भी दिए गए है, जिन्हें समुदगुप्त ने दक्षिणी अभियान के पश्चात परास्त किया।

उन्नीसवीं और बीसवीं पंक्तियों में समुद्रगुप्त के दक्षिण अभियानों का वर्णन दिया गया[1] है। कहा गया है, कि दक्षिण के बारह राज्यों के शासकों को समुद्रगुप्त ने बन्दी बना लिया और फिर मुक्त कर दिया उनके राज्यों को साम्राज्य में विलीन नहीं किया गया था? उनके नाम कौशल का महेन्द्र, महाकान्ता का व्याघ्रराज, कोरल का मण्टराज, विष्टपुर का महेन्द्रगिरी, कोट्टूर का स्वामीदत्त, एरण्डपल्ल का दमन, कॉची का विष्णुगोप, अवमुक्त का नीलराज, वेङ्गी का हस्तिवर्मा,पालक्क का उग्रसेन, देवराष्ट्र का कुबेर और कुस्थलपुर का धनंजय थे। यह संतोष का विषय है, कि इनमें से अधिकांश का तादात्म्य निश्चित कर लिया गया है। इनसे ज्ञात होता है, कि समुद्रगुप्त के अभियान दक्षिण के पूर्वी तट तक ही सीमित थे। पहले फ्लीट और स्मिथ द्वारा प्रस्तावित विचार यह था, कि समुद्रगुप्त पश्चिमी तट के रास्ते वापस आया। यह विचार अब त्याग दिया गया है। क्योंकि बारह राजाओं के तादात्य पूर्वी तट पर ही निश्चित कर दिए गए है। यह उल्लेखनीय है, कि दक्षिण के केन्द्रीय और पश्चिमी भाग वाकाटकों के अधीन थे और दक्षिण में समुद्रगुप्त द्वारा पराजित राजाओं की सूची में वाकाटकों का नाम नहीं है। इससे सिद्ध होता है, कि समुद्रगुप्त के दक्षिणी अभियानों के समय में वाकाटक राज्य सुस्थिर रहा।

---

1. गोयल श्रीराम, गुप्तकालीन अभिलेख, पृ. 20–21, प्रयागप्रशस्ति पंक्तियाँ 19–20

दिलाने में उसके कर्मचारी दत्तचित रहते थे। अपनी तीक्ष्ण तथा परिष्कृत बुद्धि और गायन तथा संगीत में दक्षता से उसने देवताओं के स्वामी, इन्द्र के गुरू और टुम्बुरू और नारद को भी लज्जित कर दिया। अपने काव्यों से उसने कविराज की उपाधि प्राप्त की। उसकी रचनाएं इतनी उत्कृष्टकोटि की थी, कि वह उनके माध्यम से विद्वानों की तरह जीवन निर्वाह के साधन जुटा सकता था। मानवता की रीति रिवाजों को पूर्ण करने में ही वह मानव था, किन्तु वास्तव में वह पृथ्वी पर रहने वाला देवता था। वह चन्द्रगुप्त और कुमारदेवी का पुत्र, घटोत्कच का पौत्र और श्रीगुप्त का प्रपौत्र था। श्रीगुप्त और घटोत्कच के लिये 'महाराज' उपाधि का प्रयोग किया गया है और चन्द्रगुप्त प्रथम के लिए 'महाराजधिराज' उपाधि प्रयुक्त की गई है।अभिलेख की उन्तीसवीं पंक्ति में कहा गया है, कि यह स्तम्भ पृथ्वी की एक भुजा की भांति है, जो समुद्रगुप्त की ख्याति की घोषणा कर रहा है। समस्त संसार की विजय के कारण उसकी प्रसिद्धि समस्त भूतल पर फैली हुई थी।

## उत्तराधिकार (Succession)

इलाहाबाद स्तम्भ अभिलेख में कहा गया है, कि समुद्रगुप्त के पिता ने उनकी योग्यता के कारण उसे सिंहासन के लिये चुन लिया और परामर्शदाताओं की उपस्थित मे इसकी घोषणा करके राजकुमार से कहा 'इस पृथ्वी की रक्षा करो।' यह भी कहा है, कि जब यह घोषणा की गई तो उसके बराबर के अन्य सम्बन्धी (तुल्य कुलज) निराशा के कारण पीले पड़ गए। सभा के सदस्य अति प्रसन्न हुए। ऋद्धपुर अभिलेख में समुद्रगुप्त के लिए 'तत्पादपरिग्रहीत' शब्द का प्रयोग किया गया है। यदि डा. छाबड़ा द्वारा दिए गए इसके अर्थ को स्वीकार किया जाए तो चन्द्रगुप्त प्रथम ने राज्य त्याग कर दिया और समुद्रगुप्त को राजा बना दिया। एरण अभिलेख से ऐसी ही अर्थ की पुष्टि होती है।

कुछ विद्वानों का विचार है, कि अभिलेख का यह कथन कि समुद्रगुप्त के सम्बन्धी पीले पढ़ गये उत्तराधिकार के लिये झगड़े का केवल काव्यात्मक वर्णन है, कई सिक्के पर 'काच' नाम और एक मुद्रा लेख दिखाई देता है। कहा गया है, कि काच समुद्रगुप्त का बड़ा भाई था। जो राजा बन गया, और उसका बध करने पर ही समुद्रगुप्त सिंहासन प्राप्त कर सका। किन्तु यदि हम यह स्वीकार कर लें, कि चन्द्रगुप्त प्रथम ने समुद्रगुप्त के पक्ष में राज्य त्याग किया तो उत्राधिकार युद्ध का विचार कदापि मान्य नहीं है। इसके अतिरिक्त काच के सिक्के समुद्रगुप्त के सिक्के से इतने मिलते है, कि एलन ने यह निष्कर्ष निकाला, कि 'सम्राट का वास्तविक नाम

इक्कीसवीं पंक्ति में अच्युत नाग, नाग सेन, गणपति नाग, रूद्रदेव, मतिल, नागदत्त, चंद्रवर्मा नन्दी और बलवर्मा के नाम दिए गए हैं[1] इन सब राजाओं का समुद्रगुप्त ने पूर्ण उन्मूलन किया। सम्भव है कि ये ये नौ राजा समुद्रगुप्त के विरूद्ध एक संघ में सम्मिलित हुए हों, इसीलिए अच्युत नाग, नागसेन और गणपति नाग के नाम फिर दिए गए हैं। यह स्पष्ट नहीं है, कि युद्ध कहाँ हुआ शायद कौशाम्बी के निकट हुआ होगा।

समुद्रगुप्त ने 'आटविक' राजाओं या जंगली जातियों को भी आत्मसमर्पण करने पर विवश कर दिया। डा. फ्लीट का विचार था, कि ये जंगली प्रदेश उत्तर प्रदेश में गाजीपुर जिले से जबलपुर तक थे। इस प्रदेश की विजय की पुष्टि समुद्रगुप्त के ऐरण अभिलेख से होती है। बाईसवीं पंक्ति में कहा गया है, पांच 'प्रत्यन्त' या सीमावर्ती प्रदेशों के शासक भी उसकी आज्ञानुसार आत्म समर्पण करने आए और उन्होंने शुल्क भी दिया। उन पांच राज्यों के नाम समतट, उवाक, कामरूप, नेपाल और कर्तृपुर थे।[2]

मालक, अर्जुनायन, यौधेय, मद्रक, आभीर, प्रार्जुन, सनकानीक, काक और खरपारिक नौ जातीय गणों ने समुद्रगुप्त के प्रति आत्मसमर्पण किया। इन सबसे निवास स्थान निश्चित कर लिए गए हैं।[3]

तेईसवीं और चौबीसवीं पंक्तियों में कुछ विदेशी शासकों के नाम है, जिन्होंने आत्म समर्पण किया और राजनिष्ठा का प्रमाण देकर शान्ति मोल ली। ये उपहार स्वरूप कन्याएं लाए। उन्होंने गरूड़ के प्रतीक दिए। उन्होंने अपने राज्य भी अर्पित कर दिए और आज्ञा की प्रतीक्षा की। इस श्रेणी में दैवपुत्र, शाही, शाहानुशाही, शक, मुरूण्ड और सिंहल के लोग तथा द्वीपों के अन्य निवासी थें।

इस अभिलेख में समुद्रगुप्त की बहुत प्रशंसा की गई है। कहा गया है, कि समुद्रगुप्त ने अच्छाई का संचार किया और बुराई का नाश किया। वह दयालु था, वह नम्र था, जिसे अभीष्ट सेवा तथा आज्ञापालन से मोहित किया जा सकता था। उसने कई लाख गायें दान में दी। उसका मस्तिष्क दीन, निर्धन, पीड़ित और असहाय व्यक्तियों को पालने के साधन जुटाने में व्यस्त रहता था। मानव मात्र के प्रति करूणा का वह प्रतीक था। वह कुबेर, वरूण, इन्द्र और अंतक देवताओं के समान था। जिन राजाओं को वह परास्त करता था उनकी सम्पत्ति उन्हें वापस

---

1. गोयल श्रीराम, गुप्तकालीन अभिलेख, पृ. 20–21, प्रयागप्रशस्ति पंक्तियाँ 19–20
2. गोयल श्रीराम, गुप्तकालीन अभिलेख, पृ. 20–21, प्रयागप्रशस्ति पंक्तियाँ 19–20
3. गोयल श्रीराम, गुप्तकालीन अभिलेख, पृ. 20–21, प्रयागप्रशस्ति पंक्तियाँ 19–20। देखिये मिश्र, एस.एन. ऐंशियेण्ट इण्डियन रिपब्लिक्स, लखनऊ, 1976

काच था, और अपनी विजयों के संकेत में उसने 'समुद्रगुप्त' नाम धारण किया। " इस बात की पुष्टि इस तथ्य से होती है, कि काच के सिक्कों के पृष्ठ भाग पर 'सर्वराजोच्छेत्ता मुद्रा लेख पाया गया है। वंश के विश्वसनीय लेखों में यह उपाधि केवल समुद्रगुप्त की दी गई है, इसलिये काच का दूसरा नाम समुद्रगुप्त माना जा सकता है। सम्भव है, कि महासागर तक अपनी विजय कर लेने के बाद काच ने समुद्रगुप्त का नाम धारण किया। समुद्रगुप्त शब्द को दो भागों में बांट लिया गया है: 'समुद्र' को व्यक्तिगत नाम और 'गुप्त' को उपनाम माना गया है यह विचार इस तथ्य पर आधारित है, कि समुद्रगुप्त के पूर्वतम सिक्कों के मुख भाग पर 'समुद्र' नाम अंकित है, और इसके पृष्ठ भाग पर मुद्रा लेख 'पराक्रम' है। समुद्रगुप्त के सिंहासनरोहण की निश्चित तिथि ज्ञात नहीं है। यदि हम संदिग्ध नालन्दा पत्र को स्वीकार कर लें तो समुद्रगुप्त गुप्त संवत् 5 या 325 ई. से पहले ही राजा बना। कुछ लेखक समुद्रगुप्त को ही गुप्त संवत् का संस्थापक मानते हैं, और यदि उनका विचार स्वीकार कर लिया जाये तो समुद्रगुप्त 320 ई. में राजा बना। डां. आर.सी. मजूमदार के अनुसार समुद्रगुप्त की सिंहासनारोहण की तिथि 340 और 335 के मध्य में रखी जा सकती है। कृत्रिम गया ताम्र पत्र के अनुसार 328 में वह राज्य कर रहा था। डा. आर.के. मुखर्जी के अनुसार समुद्रगुप्त ने लगभग 335 ई. से 380 ई. तक राज्य किया। अभीष्ट सेवा तथा आज्ञापालन से मोहित किया जा सकता था। उसने कई लाख गायें दान में दी। उसका मस्तिष्क दीन, निर्धन, पीड़ित और असहाय व्यक्तियों को पालने के साधन जुटाने में व्यस्त रहता था। मूानव मात्र के प्रति करूणा का वह प्रतीक था। वह कुबेर, वरूण, इन्द्र और अंतक देवताओं के समान था। जिन राजाओं को वह परास्त करता था उनकी सम्पत्ति उन्हें वापस दिलाने में उसके कर्मचारी दत्तचित रहते थे। अपनी तीक्ष्ण तथा परिष्कृत बुद्धि और गायन तथा संगीत में दक्षता से उसने देवताओं के स्वामी, इन्द्र के गुरू और टुम्बुरू और नारद को भी लज्जित कर दिया। अपने काव्यों से उसने कविराज की उपाधि प्राप्त की। उसकी रचनाएं इतनी उत्कृष्ट कोटि की थी, कि वह उनके माध्यम से विद्वानों की तरह जीवन निर्वाह के साधन जुटा सकता था। मानवता की रीति रिवाजों को पूर्ण करने में ही वह मानव था किन्तु वास्तव में वह पृथ्वी पर रहने वाला देवता था। वह चन्द्रगुप्त और कुमारदेवी का पुत्र घटोत्कच का पौत्र और श्रीगुप्त का प्रपौत्र था। श्रीगुप्त और घटोत्कच के लिये 'महाराज' उपाधि का प्रयोग किया गया है और चन्द्रगुप्त प्रथम के लिये 'महाराजाधिराज' उपाधि प्रयुक्त की गई है।"[1]

---

1. महाजन, वी.डी. प्राचीन भारत का इतिहास पृ. 470, देखिये गोयल, श्रीराम, समुद्र पराक्रमाङ्क

# अश्वमेघ यज्ञ

दिग्विजय (धरणिबन्ध) की योजना की सफल कार्यान्विति के पश्चात समुद्रगुप्त ने अश्वमेघ यज्ञ का अनुष्ठान किया। उसक`पहले पुष्णमित्र शुंग, वाकाटक प्रवरसेन प्रथम तथा भारशिव नागों ने अश्वमेघ यज्ञ का संपादन किया था। प्रयाग की प्रशस्ति में समुद्रगुप्त को 'गोशतसहस्रप्रदायिनः' अर्थात एक लक्ष गौओ का दान देने वाला कहा गया है। इतनी अधिक संख्या में गांए अश्वमेघ यज्ञ के अवसर पर दान दी जाती थी। गुप्तवंशी अभिलेखों मे ंउसे "चिरोत्सन्नश्वमेघाहर्तुः अर्थात् 'चिरकाल से परित्यक्त अश्वमेघ यज्ञ का अनुष्ठान करने वाला' कहा गया है।1 परन्तु उसका यह दावा यथार्थ नहीं माना जा सकता यह एक सुविदित तथ्य है, कि गुप्त काल के पूर्व उत्तरी एवं दक्षिणी भारत वर्ष के कई राजवंशों ने इस कोटि के यज्ञ का सम्पादन किया था। यवन विजेता पुश्यमित्र शुंग के अश्वमेघ यज्ञ की स्मृति सदियों तक जनता में बनी रही। गुप्तकालीन कालिदास ने इस घटना का सजीव वर्णन अपने 'मालविकाग्निमित्रम्' नामक ग्रन्थ में किया है। पुराणों के अनुसार वैदिक धर्म के प्रकाण्ड उन्नायक प्रवरसेन ने चार वाजपेय यज्ञो ंका अनुष्ठान किया था। भारशिव महाराज भवनाग ने दस अश्वमेघ यज्ञों का अनुष्ठान किया था।

---

1. *श्री परमेश्वरी लाल गुप्त का कथन है कि 'चिरोत्सन्न' का जो अर्थ साधारणतया लगाया गया है, वह समीचीन नहीं माना जा सकता । इस समस्तपद का वास्तविक अर्थ होना चाहिए समुद्रगुप्त ने उस अश्वमेघ यज्ञ का पुनरूद्धार किया था, जिसका चिरकाल से विधिवत् सम्पादन नहीं हुआ था। इससे तात्पर्य पूर्व काल में सम्पादित अश्वमेघ यज्ञों की त्रुटियों एवं कमियों से है। लेखक का वास्तविक आशय है कि समुद्रगुप्त ने बड़े ही विस्तार एवं पूर्ण विधानों सहित अश्वमेघ यज्ञ का सम्पादन किया था (गुप्त साम्राज्य, पृष्ठ 273–75)। श्री गुप्त के इस मत के सम्बन्ध में 'उत्सन्न' का शाब्दिक अर्थ एवं इसके प्रयोग विचारणीय हो जाते है। कोशकारों के अनुसार उत्सन्न (उद्+सद्+क्त) का अर्थ 'नष्ट, 'उजड़ा हुआ' अथवा ' व्यवहार' में न आने वाला होता है। (आप्टे, संस्कृत हिन्दी–कोष, पृष्ठ 190)। छमहण्णवो' में इसका अर्थि 'छिन्न', 'खण्डित' अथवा 'नष्ट' बताया गया है। (पृष्ठछ 147)। संस्कृत एवं प्राकृत साहित्य में 'उत्सन्न' शब्द का प्रयोग नष्ट अथवा खण्डित के ही अर्थ में हुआ है, उदाहरणार्थ गीता 'उत्सन्नकुलधर्माणाम्' तथा कादम्बरी (उत्सन्नोऽस्मि)। समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में ही एक दूसरे स्थान पर 'उत्सन्न' शब्द का प्रयपेग इसी अर्थ में किया गया है (भ्रष्राज्योत्सन्न–राजवंश–प्रतिष्ठापन) 'चिरोत्सन्न' शब्द का प्रयोग करते समय हरिषेण का आशय एक दूसरा हो सकता है। सदियों से उत्तरी भारत में शक, कुषाण एवं मुरूण्ड राज्य कर रहे थे। विदेशी शासपन के कारण, पुष्यमित्र शुंग के अनन्तर विशेष रूप में गंगा घाटी एवं उसके पश्चिम एवं पश्चिमोत्तर में अश्वमेघ यज्ञ की परम्परा दीर्घ काल तक छिन्न हो गई। बौद्ध धर्म के प्राश्रय के कारण कुषाण प्रशासन में ऐसे अनुष्ठान के लिए स्थान नहीं था हरिषेण का संकेत यहां पर इसी ऐतिहासिक तथ्य की ओर हो सकता है। देखिये, मालविकाग्निमित्रम्।*

(दशाश्वमेघावभृयस्नातानाम्) समुद्रगुप्त की अश्वमेघ वर्ग की मुद्राओं पर उसकी उपाधि अश्वमेघ पराक्रमः मिलती है उनके पुरोभाग पर यज्ञ यूप में बंधे हुए अश्व का चित्र अंकित मिलता है और पृष्ठतल पर प्रधानमहिषी सुन्दर वस्त्र एवं आभूषणों से अंलकृत प्रदर्शित की गई है। स्पष्ट है, कि यह समुद्रगुप्त की महादेवी दत्तदेवी का चित्र है, जिससे चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) उत्पन्न हुआ था। उसके अश्वमेघ वर्ग के सिक्कों पर दो प्रकार के लेख प्राप्य है–

1. राजाधिराजः पृथिवी विजित्वा दिवं जयत्याद्दतवाजिमेध :

2. पृथिवी विजित्य दिवं जयत्याकृत वाजिमेघ :

इससे लगता है, कि ये मुद्रायें दो विभिन्न अवसरों पर ढाली गई अर्थात समुद्रगुप्त ने कम से कम दो अश्वमेघ यज्ञों का अनुष्ठान किया होगा। अयोध्या लेखक के अनुसार पुष्यमित्र शुंग ने दो अश्वमेघ यज्ञों का आदर्श प्रस्तुत किया है। (द्विरशमेधयाजिनः सेनापतिः पुष्यमित्रस्य)। प्रभावती गुप्ता के पूना के ताम्रलेख में समुद्रगुप्त को 'अनेकाश्वमेधयाजिन्' अर्थात कई अश्वमेघ यज्ञों का अनुष्ठान करने वाला कहा गया है। इससे निर्विवाद है, कि उसने एक से अधिक वाजिमेध अवश्य किया होगा। रैप्सन का अनुमान है, कि समुद्रगुप्त ने सम्भवतः कुछ राजकीय मुहरों पर भी अश्वमेघ यज्ञ से संबंधित दृश्यों को अंकित कराया होगा। ब्रिटिश संग्रहालय में मिट्टी की एक मुद्रा (मुहर) पर अश्वमेघ का अश्व यज्ञ यूप से बंधा हुआ अंकित है। इसके ऊपर 'पराक्रम' लेख प्राप्त है। यह समुद्रगुप्त का 'अश्वमेघ पराक्रमः' उपाधि का स्मरण दिलाता है, जो उसकी अश्वमेध मुद्राओं पर उत्कीर्ण है।"[1]

## रामगुप्त और द्वितीय चन्द्र गुप्त

"समुद्रगुप्त ने सम्भवतः अपने छोटे पुत्र द्वितीय चन्द्रगुप्त (उपाधि विक्रमादित्य) को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया था, लेकिन उसके ज्येष्ठ पुत्र रामगुप्त[2] ने जिसका अस्तित्व पहिले केवल साहित्य से ज्ञात था, पूर्वी मालवा में विद्रोह कर कुछ

---

*रैप्सन के अनुसार उक्त मुहर समुद्रगुप्त की रही होगी। उसकी अश्वमेघ मुद्राये प्रचुर संख्या में प्राप्त है। बयाना निधि में ही इस वर्ग के बीस सिक्के मिले है। इसके अतिरिक्त सात ब्रिटिश संग्रहालय, तीन ऐशमोलियन संग्रहालय, दो भारतीय संग्रहालय एवं पांच लखनऊ संग्रहालय में भी इस कोटि की मुद्राये उपलब्ध है।*

---

1. गुप्त परमेश्वरी लाल– गुप्त साम्राज्य पृ. 140
2. मध्य प्रदेश के सागर जिले की खुरई तहसील में स्थित एरण में भी रामगुप्त के सिक्के मिले हैं। देखिये त्रिवेदी, एस.डी., बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, झाँसी 1984

समय तक स्वतन्त्र रूप से शासन किया। पूर्वी मालवा में रामगुप्त की ताम्रमुद्राये मिली है। तथा दुर्जनपुर ग्राम से उसके शासन काल के तीन तिथिविहीन जैन प्रतिमा अभिलेख मिले है। द्वितीय चन्द्रगुप्त ने किसी प्रकार उसे मार दिया और उसकी विधवा ध्रुवदेवी से विवाह कर लिया। द्वितीय चन्द्रगुप्त की एक अन्य रानी कुबेरनागा थी जिससे उत्पन्न प्रभावतीगुप्ता का विवाह द्वितीय रूद्रसेन वाकाटक से हुआ था। द्वितीय चन्द्रगुप्त ने ही सम्भवतः गुप्त संवत् का प्रवर्तन किया था। प्रथम चन्द्रगुप्त के राज्यारोहण से उसकी ज्ञात तिथियां गु.सं. 456 से 93 (=376 से 412) ई. है उसके शासन काल में अनेक अभिलेख मथुरा, सांची, उदयगिरि तथा गढ़वा आदि स्थलों से मिले है। बहुत से इतिहासकार महरौली स्तम्भ लेख को भी उसी का मानते हैं। यद्यपि प्रथम कुमारगुप्त के टुमैन अभिलेख में उसके द्वारा समुद्रपर्यन्त (अरबसागर तक) पृथ्वी जीतने की चर्चा मिती है।

## प्रथम कुमार गुप्त

द्वितीय चन्द्रगुप्त के पुत्र और उत्तराधिकारी प्रथम कुमारगुप्त (उपाधि महेन्द्रादित्य) की जो ध्रुवदेवी का पुत्र था, प्रथम ज्ञात तिथि गु.सं. 96 (=415 ई.) है। गोविन्दगुप्त, जिसका उल्लेख एक वैशाली मुहर में तथा प्रभाकर के 467 ई.0 के मन्दसौर लेख में मिलता है, उसका सगा भाई था; परन्तु उसने कभी शासन किया या नहीं यह ज्ञात नहीं है। प्रथम कुमारगुप्त के शासन के अनेक अभिलेख विल्सड़, मानन्कुवर (मंकुवार) मथुरा उदयगिरि, गढ़वा, दामोदरपुर, बेलग्राम, जगदीशपुर, कुलैकुरी, तुमैन तथा करमदण्डा आदि स्थलों से मिले है। इनसे उसके शासन काल की आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक स्थिति का ज्ञात होता है। बंगाल से प्राप्त उसके शासनकाल के ताम्रपत्र लेखन गुप्तकालीन भूमि व्यवस्था तथा प्रशासन के अध्ययन के लिये विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। उसके किसी अभिलेख से उसकी किसी सैनिक विजय का ज्ञान प्राप्त नहीं होता।

प्रथम कुमारगुप्त की अभिलेखों से ज्ञात अन्तिम तिथ गु.सं. 128 (=449 ई.) है। स्मिथ आदि पुराने इतिहासकारों ने उसकी कुछ रजत मुद्राओं पर गुप्त सवंत् 136 (=455 ई.) तक तिथियां पढ़ी थी, इसलिये उसकी अन्तिम ज्ञात तिथि 455 ई. मानी जाती रही है। स्कन्दगुप्त गुप्त संवत् 136 (=455 ई.) से जब सुदर्शन झील का बांध टूटा, कई वर्ष पूर्व गद्दी पर बैठा होगा।इसलिये प्रथम कुमारगुप्त की मुत्यु अब 450 ई. के बहुद बाद में हुई नहीं मानी जा सकती है।"[1]

---

1. फ्लीट, जॉन फेथफूल, कार्पस इन्सक्रीप्शनम वाल्यूम 3 पृ. 112

## स्कन्दगुप्त, पुरूगुप्त और घटोत्कच

प्रथम कुमार गुप्त के पुत्र स्कन्दगुप्त (उपाधियाँ 'विक्रमादित्य' तथा क्रमादित्य) की ज्ञात तिथियां गुप्त संवत् 136 से 148 (=455 से 467 ई.) है। यह मान्यता विवादग्रस्त है, कि वही अपने पिता की किसी रखैल का पुत्र था और इसलिये अपने पिता का वैध उत्तराधिकारी नहीं था संभवत उसने अपने भाई पुरूगुप्त के विद्रोह का सामना करना पड़ा। बिहार शरीफ से प्राप्त द्वितीय पाषाण स्तम्भ लेख जिसे फ्लीट ने स्कन्दगुप्त का बताया था, सम्भवतः पुरूगुप्त का नहीं है। इसमें, और उसके उत्तराधिकारियों के अभिलेखों ने उसे 'महाराजाधिराज' कहा गया। घटोत्कच (उपाधि क्रमादित्य) जिसकी दो स्वर्ण मुद्राये अभी तक मिली है। यह स्कन्दगुप्त का दूसरा विद्रोही भाई था उसका उल्लेख तुमैन अभिलेख में हुआ है। स्कन्दगुप्त के अभिलेख जूनागढ़, भीतरी, इन्दौर, कहांव तथा सूपिया से मिले है। उनकी सुवर्ण, रजत, और ताम्र मुद्रायें भी मिलती है। उसके जूनागढ़ तथा भीतरी लेखों में उसकी महान उपलब्धियों का वर्णन है। जिनमें उनके द्वारा पुष्यमित्रों और हूणों पर विजय सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

## परवर्ती गुप्त सम्राटों का अनुक्रम और तिथिक्रम

स्कन्दगुप्त के उपरान्त शासन करने वाले निम्नलिखित गुप्त सम्राटों की तिथियां ज्ञात है:–

1. द्वितीय कुमारगुप्त :– गुप्त संवत् 154 (=473 ई.) यह तिथि उसके सारनाथ अभिलेख में मिलती है। इसमें उसके पिता का नाम नहीं दिया गया है।

2. बुधगुप्त :– स्कन्दगुप्त के भाई पुरूगुप्त का पुत्र ज्ञात तिथियां गु. सं. 157 (=476 ई.) से 176 (=495 ई.)।

3. वैन्यगुप्त :– पुरूगुप्त का अन्य पुत्र/ ज्ञात तिथि गु.सं. 187 (=506 ई.)।

4. भानुगुप्त :– पिता का नाम अज्ञात है। एरण लेख से उसकी तिथि गुप्त संवत् 191 (=510 ई.) मालूम है।

5. विष्णु गुप्त :– उसका उल्लेख सम्भवत गु.सं. 224 (=543 ई.) के पंचम दामोदरपुर दान पत्र में हुआ है। इस लेख में

उसके नाम का पूर्व भाग मिट गया है। उसे अनुमानतः विष्णुगुप्त माना गया है। फिर भी इस लेख से कम से कम इतना सिद्ध है कि गुप्त वंश का अस्तित्व इस तिथि तक अवश्य था।

इन नरेशों के अलावा भीतरी मुहर से पुरूगुप्त के एक अन्य पुत्र नरसिंहगुप्त के पुत्र एवं नरगुप्त के पुत्र द्वितीय कुमारगुप्त के बारे में पता चलता है, कि वह बालादित्य का पुत्र था जिसके वंश में एक और बालादित्य हो चुका था। विष्णुगुप्त की नालन्दा मुहर में भी उसके पिता कुमारगुप्त तथा पितामह नरसिंहगुप्त का उल्लेख मिलता है।

इससे यह पता चलता है, कि नरसिंहगुप्त की उपाधि बालादित्य थी, कुमारगुप्त की क्रमादित्य, बुधगुप्त की विक्रम, वैन्यगुप्त की द्वादशादित्य तथा विष्णुगुप्त की चन्द्रादित्य। सिक्कों से हमें तृतीय चन्द्रगुप्त तथा प्रकाशादित्य नामक गुप्त सम्राटों का अस्तित्व भी ज्ञात होता है।"[1]

साहित्य में परवर्ती गुप्त सम्राटों के विषय में उपलब्ध प्रमुख सूचनाएं निम्नलिखित है।

1. परमार्थ (छठी शती ई.) द्वारा लिखित 'वसुबन्धु की जीवनी' कें अनुसार विक्रमादित्य के उपरान्त बालादित्य ने शासन किया।

2. युवान च्वांग के अनुसार नालन्दा में बिहार बनवाने वाले सम्राटों में शक्रादित्य, बुद्धगुप्तराज, तथागतराज, बालादित्यराज, वज्र तथा मध्य देश का एक राजा सम्मिलित थे।

3. युवान च्वांग के ही अनुसार मिहिरकुल (लगभग 512–27 ई.) का विजेता बालादित्य राज था।

4. आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प में एक स्थान परपरवर्ती गुप्त सम्राटों का क्रम इस प्रकार दिया गया है:– 'सकार '(=स्कन्दगुप्त) बाल (=बालादित्य) कुमार (=कुमारगुप्त) उकार (वह जिसके नाम का प्रथम 'भ' है) को क्रमशः एक दूसरे के बाद रखा गया है तथा एक तीसरे स्थान पर 'भकार' का उत्तराधिकारी 'प्रकार' (वह जिसके नाम का प्रथम अक्षर 'प्र है) को बताया गया है। वैन्यगुप्त द्वादशादित्य

---

1. गोयल, श्रीराम, गुप्तकालीन अभिलेख, पृ. 7–8

(506 ई.) तथा 'भकार भानुगुप्त' 510 ई. है, क्योंकि इस ग्रन्थ में 'भकार' के मित्र गोप का नाम भी आता है जिसकी चर्चा भानुगुप्त के एरण लेख में हुई है। इसलिये 'चन्द्र' को मुद्राओं से ज्ञात तृतीय चन्द्रगुप्त तथा 'देव' को बुद्धगुप्त (देव=बुद्व =बुध) माना जा सकता है।

भीतरी मुहर के कुमारगुप्त को 473 ई. के सारनाथ अभिलेख  का कुमारगुप्त मानकर पन्नाला के 'मार्डन रिव्यु'(1919) ई. मे उनके पिता नरसिंह गुप्त बालादित्य को; जो पुरूगुप्त का पुत्र था, 470 ई. के आसपास रखा था। लेकिन युवान च्वांग के साक्ष्य से स्पष्ट है, कि बालादित्य मिहिरकुल (512 –27 ई.) का समकालीन था।

## प्रथम नरसिंहगुप्त तथा द्वितीय कुमार गुप्त

"स्कन्दगुप्त का कोई पुत्र ज्ञात नहीं है। गुप्त अभिलेखों में स्कन्दगुप्तोत्तर युगीन राजाओ को पुरूगुप्त का वंशज बताया गया है। और छठी शती में परमार्थ द्वारा लिखित 'वसुबन्धु की जीवनी तथा आर्यमुञ्जुश्रीमूकल्प से संकेतित है, कि स्कन्दगुप्त का उत्तराधिकारी बालादित्य था। यह बालादित्य मुद्राओं से ज्ञात नरसिंहगुप्त बालादित्य होगा आर्यमुञ्जुश्रीमूलकल्प के अनुसार उसने 36 वर्ष 1 माह की आयु में आत्महत्या करली थी। 473 ई. के सारनाथ अभिलेख का कुमारगुप्त का ही मानना चाहिए। 472 ई. का मन्दसौर लेख जो रेशम बुनने वालों की श्रेणी में लिखवाया गया था उन्हीं के शासन काल का होगा। अगर उसके पिता नरसिंहगुप्त ने 36 वर्ष 1 माह की आयु में आत्महत्या कर ली थी तो राज्यारोहण के समय वह 13–14 वर्ष के रहे होंगे।

## बुधगुप्त

बुधगुप्त पुरूगुप्त का पुत्र और द्वितीय कुमार गुप्त का चाचा (ताऊ) था। उसने अपने भतीजे को अल्पवयस्क देखकर साम्राज्य पर अधिकार कर लिया। युवान च्वांग ने उसके द्वारा साम्राज्य छीन लिए जाने का उल्लेख किया है। इस चीनी यात्री ने बुद्धगुप्तराज (=बुधगुप्त) द्वारा नालन्दा में विहार बनसाये जाने का उल्लेख भी किया है। बुधगुप्त की ज्ञात तिथियों गुप्त संवत् 157 (= 476 ई.) से गु.सं. 176 (= 495 ई.) है। उसके अभिलेख सारनाथ, एरण दामोदरपुर आदि स्थानों से मिले है।

## तृतीय चन्द्रगुप्त, वैन्यगुप्त द्वादशादित्य तथा भानुगुप्त

आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प में एक स्थान पर देव, चन्द्र द्वादश व भकार इन चार राजाओं का उल्लेख है। इससे स्पष्ट है, वैन्यगुप्त द्वादशादित्य (ज्ञान तिथि 506

ई.) है तथा 'भकार' भानुगुप्त( ज्ञात तिथि 510 ई. है) वैन्यगुप्त का एक दानपत्र गुणैधर से मिला है तथा एक मुहर नालन्दा से। भानुगुप्न्त का उल्लेख 510 ई. के एरण लेख में है इन राजाओं के शासन काल में गुप्तवंश में आन्तरिक झगड़े हुए (जिनकी चर्चा आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प में मिलती है।"[1]

## प्रकाशादित्य द्वितीय नरसिंहगुप्त बालादित्य, तृतीय कुमारगुप्त क्रमादित्य तथा विष्णुगुप्त चन्द्रागुप्त

द्वितीय नरसिंहगुप्त बालादित्य का एक पुत्र संभवतः प्रकाशदित्य था जिसका उल्लेख एक सारनाथ अभिलेख में है। इसमें प्रकाशदित्य अपने को उस बालादित्य (= द्वितीय नरसिंहगुप्त बालादित्य) का पुत्र कहता है। जिसके वंश में एक और बालादित्य (=प्रथम नरसिंहगुप्त बालादित्य) हो चुका था। द्वितीय नरसिंहगुप्त बौद्ध था उसने नालन्दा में एक विहार बनवाया, ऐसा युवान च्वांग बताता है। उसके उपरान्त नालन्दा में विहार बनवाने वाला वज्र हो सकता है, स्वयं प्रकटारदित्य रहा हो। द्वितीय नरसिंहगुप्त को मिहिरकुल को परास्त करने का यश प्राप्त है। विष्णुगुप्त ही सम्भवतः वह सम्राट है जिसके काल में 543 ई. का पंचम दामोदार दानपत्र जारी हुआ। इस दानपत्र में सम्राट के नाम का प्रथम भाग मिट गया है, परन्तु उसका नाम दो अक्षर वाला था इसलिये उसे विष्णुगुप्त माना जा सकता है।

विष्णुगुप्त का कोई उत्तराधिकारी ज्ञात नहीं है। एक जैन परम्परानुसार गुप्तों ने 231 वर्ष शासन किया; इसलिये गुप्त साम्राज्य का पतन 550 ई. में हुआ होगा इसी समय के आसपास मौरवरि ईशानवर्मा (ज्ञात तिथि 554 ई) द्वारा 'महाराजधि राज' उपाधि धारण किया जाना इसका अतिरिक्त प्रमाण है, लेकिन एक अन्य जैन परम्परा के अनुसार गुप्त वंश का पतन 270 ई. में मानना होगा। इस तथ्य के प्रकाश में 567 ई. के एक अभिलेख में उडीसा में गुप्तों के शासन का उल्लेख महत्वपूर्ण हो जाता है। सम्भवतः इस दूसरी परम्परा में गुप्त शासन के उडीसा में समय तक बने रहने की स्मृति सुरक्षित है।

---

1. गोयल, श्रीराम, गुप्तकालीन अभिलेख, पृष्ठ 13–14

# गुप्तकालीन अभिलेखों में वर्णित वैष्णव धर्म

"भारतीय संस्कृति के इतिहास में गुप्त काल एक नक्षत्र की भांति रहा है। इस युग में भारतीय सभ्यता और संस्कृति अपनी उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुंच गई थी क्या समाज, राजनीति साहित्य, कला और धर्म सभी क्षेत्र में गुप्त काल को जिसमें नवाभ्युथान का आन्दोलन प्राप्त करता हुआ विकास की चरम पराकाष्ठा तक पहुंच गया था, हिन्दू धर्म का स्वर्ण युग और हिन्दू नवाभ्युथान का काल कहते है। गुप्त वंश का संस्थापक चन्द्रगुप्त प्रथम था। उसके उपरान्त उसके पुत्र समुद्रगुप्त अपनी गौरवपूर्ण विजयों द्वारा साम्राज्य की सीमाओं को बहुत दूर दूर तक बड़ाया। समुद्रगुप्त के बाद इस युग का सर्वाधिक महत्सपूर्ण शासक चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य सिंहासनारूढ़ हुआ, जिसने और असाधारण बल, विक्रम और नेतृत्व शक्ति के द्वारा साम्राज्य विस्तार किया। तो दूसरी ओर कुशल प्रशासन और धार्मिक सहिष्णुता के द्वारा जनता में लोकप्रियता प्राप्त की। स्कन्दगुप्त इस स्वर्ण युग का अन्तिम प्रतापी नरेश था जिसके प्रताप का सूर्य समस्त उत्तरी भारत पर चमकता रहा।[1]

## गुप्त नरेश और वैष्णव धर्म

अधिकतर गुप्त नरेश तथा उनके समकालीन अन्य नरेश वैष्णव धर्म के अनुयायी थे। चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा स्कन्दगुप्त की मुद्राओं में उनके लिये 'परम भागवत' विरूद का उल्लेख किया गया ।

परिव्राजक महाराज समक्षोम के एक अभिलेख की प्रारम्भिक पंक्तियों में ' नमो भगवते वासुदेवाय' शब्द मिलते है। चन्द्रगुप्त द्वितीय के महरौली लौह स्तम्भ का उद्देश्य 'विष्णु ध्वज की प्रतिष्ठापना करना था। स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ लेख विष्णु की प्रार्थना से प्रकट होता है कि गुप्त सम्राट विष्णु की पूजा करते थे तथा इस काल में सर्वप्रथम धर्म वैष्णव धर्म ही था। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने विष्णु पद नामक पर्वत पर विष्णु ध्वज की स्थापना की थी। इस समय भगवान विष्णु का वाराहावतार रूप प्रचलित था।

"गुप्तकाल में वैष्णव धर्म के प्रचार के साथ–साथ वैष्णव मन्दिरों का निर्माण भी प्रचुर मात्रा में हुआ। स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ वाले लेख में सौराष्ट्र के गवर्नर के पुत्र द्वारा विष्णु मन्दिर के बनवाये जाने का उल्लेख हुआ है। दक्षिण भारत में भी विष्णु पूजा का प्रचलन था और इसका श्रेय अलबार सन्तों को है जिन्होंने अपने

---

1. एस.पी. श्रीवास्तव, प्राचीन अद्भुत भारत की सांस्कृतिक झलक, पृ. 158

भावपूर्ण गीतों के द्वारार लोगों को विष्णु भक्ति की ओर आकृष्ट किया। गुप्त युग में विष्णु के अनेक अवतारों को स्वीकार किया गया है। वाराह, कृष्ण मत्स्य, वामन आदि इसमें प्रमुख थे। कृष्ण की बाल लीला के अनेक चित्र प्राप्त हुये है। राम को बिष्णु का अवतार स्वीकार किया गया है। अस्तु कालिदास के रघुवंश के एक स्थान पर राम को विष्णु का अवतार माना गया है। इससे यह स्पष्ट है कि राम की पूजा का भी गुप्तकाल में प्रचलन था। विष्णु के अतिरिक्त शिव, कार्तिकेय, सूर्य, लक्ष्मी, दुर्गा, पार्वती देवी देवता थे। गंगा और यमुना की मूर्तियां भी बनने लगी थी। यज्ञों का महात्म्य भी बढ़ गया था।"[1]

## समुद्रगुप्त के शासनकाल (350–376 ई.) के अभिलेख

गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त से गुप्तकालीन अभिलेखों का क्रम प्रारम्भ होता है उसके अभी तक 5 अभिलेख मिले है जिनमें दो गया और नालन्दा ताम्रपत्र सन्दिग्ध माने जाते है। यह विवादाग्रस्त है परन्तु इतना है कि अपने वर्तमान रूप में ये समुद्रगुप्त के बहुत बाद के है। महरौली लौह स्तम्भ लेख को अधिकांश विद्वान द्वितीय चन्द्रगुप्त का मानते है, परन्तु इसमें समुद्रगुप्त का वर्णन हुआ प्रतीत होता है।[2]

1. इलाहाबाद तिथि विहीन पाषाण स्तम्भ लेख
2. एरण पाषाण स्तम्भव लेख
3. नालन्दा ताम्रपत्र अभिलेख वर्ष 5
4. गया ताम्रपत्र अभिलेख वर्ष 7
5. महरौली तिथिविहीन लौह स्तम्भ अभिलेख

---

1. एस.पी. श्रीवास्तव, प्राचीन अद्भुत भारत की सांस्कृतिक झलक, पृ. 165–166
2. गोयल, श्रीराम, गुप्तकालीन अभिलेख, पृ. 77

## प्रयाग स्तम्भ लेख/प्रयाग प्रशस्ति

समुद्रगुप्त की प्रयोग प्रशस्ति अर्थात इलाहाबाद स्तम्भ लेख गुप्त काल का सर्वाधिक महत्वपूर्ण लेख है इसमें समुदगुप्त के जीवन और विजयों का इतने विस्तार से वर्णन किया गया है। इतना भारतीय इतिहास में गुप्तकाल के अन्त तक अशोक के अतिरिक्त किसी अन्य राजा के लेखों में नहीं मिलता है। इस लेख की 29 वीं 30 वी पंक्ति में जिस गर्व के साथ इस स्तम्भ को देवलोकाभिमुख कीर्ति की घोषणा कहा गया है।(समुद्रगुप्त अयं स्तम्भ) वह पहिले से ही वहां स्थापित था।

## लेखक, भाषा, लिपि और वर्तनी

प्रयाग प्रशस्ति का लेखक समुद्रगुप्त का सन्धिविग्रहिक, कुमारामाय महादण्डनायक हरिषेण था। उसकी भाषा संस्कृत थी और लिपि चौथी शती ई. की उत्तर भारतीय वर्ग की ब्राही। बहुत से विद्वान इस लिपि के कुषाणकालीन रूप को कुषाण लिपि कहते है और गुप्तकालीन रूप को गुप्त लिपि। क्योंकि हर प्रदेश में इस लिपि का कुछ भिन्न रूप विकसित हुआ था। इन रूपों को स्थूलतः उत्तर भारतीय तथा दक्षिण भारतीय इन दो वर्गो में बांट कर सरकार ने इनके तीन युग माने है।

1. प्रारम्भिक– मौर्यकालीन
2. मध्यवर्ती– कुषाणकालीन
3. परवर्ती– गुप्त कालीन

इस दृष्टि से समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति तथा अन्य गुप्तकालीन अभिलेखों की लिपि उत्तर भारतीय वर्ग की परवर्ती ब्राह्मी कही जायेगी।

प्रयाग प्रशस्ति के अक्षर 7/10 से लेकर 3/4 तक आकार के है। इनकी वर्तनी की एक विशेषता 'ल' का प्रयोग है (जैसे 'व्याकुलितेन' और 'कोरालक' में) श्लोकों के अन्त में संख्यवाचक अंकों का प्रयोग किया गया है। क्रिया वर्तनी की कुछ अन्य विशेषताएं है 'विक्क्रम', पराक्रम और 'क्रिया' जैसे शब्दों में अनुवर्ती 'ई' के संयोग से 'क' का द्वित्व और 'अद्वध्येय' जैसे शब्दों में अनुवर्ती 'य' के संयोग में 'ध' का द्वित्व है।

## समुद्रगुप्त विष्णु उपासक के रुप में

"फलीट ने 'अप्रतिरथ' का अर्थ 'अप्रतिरथ' मानकर पृथिव्यामप्रतिरथ का अर्थ है वह जिसका प्रथिवी पर कोई प्रतिद्वन्दी नहीं है वी.सी. पाण्डेय (जे.आई. एच. 51,2,

पृ. 245–8) तथा मजूमदार (को.हि. इ.3 भाग 1 1981 प्र.29) विष्णु सहस्रनाम के श्लोक 68 में 'अप्रतिरथ' विष्णु का एउक नाम बताया गया है। इसका अर्थ है पृथ्वी पर बिचरण करने वाला(अर्थात विष्णु) भी हो सकता है। समुद्रगुप्त के धनुर्धारी प्रकार के, सिक्के पर उपलब्ध 'अप्रतिरथों' विजित्स क्षिति सुचरितै दिवजयति लकेख में अप्रतिरथ न होकर नाम है। ऐसा लगता है कवि ने समुद्रगुप्त पर विष्णु का व्यक्तित्व अध्यारोपित कर दिया। तु. भितरी लेख आदि में द्वितीय चन्द्रगुप्त का स्वयं च अप्रतिरथ रूप में जिसका अर्थ है 'साक्षात् अप्रतिरथ' अर्थात विष्णु। प्रयाग प्रशस्ति मूं इसके आगे भी इसी पद में समुद्रगुप्त को 'अचिन्त्य' कहा गया है।

स्पष्ट है, कि समुद्रगुप्त अपने को विष्णु का अवतार मानता था। स्वयं उसके नाम समुद्र का पर्याय 'अम्मोनिधि' विष्णु का एक नाम है उसके द्वारा गरूड़ को अपने वंश का राजचिहन बनाना एवं उसका 'परमभागवत'[1] उपाधि धारण करना इसका अतिरिक्त प्रमाण है। इस लेख में ही आगे हरिषेण उसे स्पष्ट 'लोकधाम्नोदेवस्य' अर्थात 'पृथिवी' पर वास करने वाला देवता कहता है। तैतिरिय ब्राह्यण्ड के अनुसार (1,7,4,4) राजा अपने को विष्णु से पहिचान कर विश्व को जीत सकता है। वायु पुराण के अनुसार (57,72) में चक्रवर्ती शासक में विष्णु अंश बताया गया है। 'महाभारत'(12,59,127) में कहा गया है कि विष्णु वैन्य पृथु में समा गये जिससे वह पूजित होता था। 'कैवल्योपनिषद'(1.8) रघुवंश (16.82) अवैमि कार्यान्तर मानुषस्य विष्णों: सुताख्यामपरां तनुव्वाम तथा द्वितीय जूनागढ़ लेख जिसमें विष्णु को अपनी इच्छा से मनुष्य धारण करने वाला (स्वतन्त्र विधिकारण मानुषस्य) कहा गया है। मतान्तर के लिये दे.सोहनी (पूर्वी) उन्होंने लोकधाम्न का अर्थ किया है वह जिसकी प्रभा समस्त विश्व में व्याप्त है।"[2]

समुद्रगुप्त की तुलना चार लोकपालों से किया है जिसका अर्थ यह हो सकता है कि:–

1. उसने चारों दिशाओं में विजय प्राप्त की।

2. वह कुबेर के समान धनपति, वरूण के समान समुद्रों का स्वामी, इन्द्र के समान यशस्वी और यम के समान शत्रुहन्ता था।

3. वह कुबेर के समान धनी, वष्णु के समान न्यायी, इन्द्र के समान शक्तिशाली और यम के समान अजेय था।

---

1. श्रीमद्भागवत महापुराण के एकादश स्कन्ध के 29 वें अध्याय में भागवत धर्म का निरुपण किया गया है
2. गोयल, श्रीराम, गुप्तकालीन अभिलेख, पृ. 20–21

उसकी यम के साथ तुलना उसकी 'कृतान्त परशु' उपाधि में भी की गई है जो उसकी परशुधारी प्रकार की मुद्राओं और परवर्ती लेखों में मिलती है।

'विष्णुसहस्रनाम में खण्ड परशु' विष्णु का नाम नाम बताया गया है( श्लोक 31) इस ग्रन्थ में द्रविणप्रद(=कुबेर) वरूण, महेन्द्र (=इन्द्र तथा अन्तक भी विष्णु के नामों में गिनाए गए है समुद्रगुप्त ने अपने को विष्णु के समान पूजनीय बताया है।)

# मूल पाठ

## समुद्रगुप्त (लगभग 350 – 76 ई.) का प्रयाग प्रशस्ति अभिलेख पंक्ति 24

पंक्ति 24 – सर्व्व द्वीप वसिभिरात्मनिवेदन कन्योपायदान– गरूत्मदक्ड स्वविषय भुक्तिशासन(य) चनाद्युपायसेवा– कृत–बाहु–वीर्य प्रसरधरणि बन्धस्य प्रिथिव्यामप्रतिरथस्य।

पंक्ति 26 – (कृप) ण– दीनानाथतुर जनोद्वरण–स (म) दीक्षाभ्युपगत– मनसः समिद्वस्य विग्रहवतो लोकनुग्रहस्य धनद वरूणेन्द्यन्तक समस्य स्वभुज–बल–विजितानेक– नरपति विभव प्रत्यर्प्पणा नित्यव्यापृता युक्त पुरूषस्य।

पंक्ति 27 – निशितविदग्धमति–गान्धर्व्लनललितैर्प्रीडित त्रिदश पति गुरू–तुम्बरूनारददादे– र्व्विद्वज्जनोप लोकानुग्रहस्य धनद– वरूणेन्द्रान्तक– समस्य स्वभुज बल विजिनातेक– नरपति– विभव प्रत्यर्प्पणा नित्यव्यापृतायुक्त पुरूषस्य

## अर्थात्

पंक्ति 24 – जो पृथ्वी पर (विचरण करने वाला) अप्रतिरथ( अर्थात विष्णु है, जिसने अपने सैकड़ों सुन्दर आचरणों से अलंकृत अपने गुणगानों के उद्रेक से अन्य राजाओं की कीर्ति को अपने चरण तल से रौद डाला है; जो सज्जनों के उत्कर्ष और दुर्जनों अपकर्ष (अर्थात विनाश) का कारण है; जो अचिन्त्य है; जिसका मृदु हृदय कृपालु होने के कारण भक्ति और विनम्रता मात्र से ग्राह्य है (अर्थात वशीभूत हो जाता है) जिसने लाखों गाए (दान) दी है।

पंक्ति 26 – जिसका मन दुःखी, गरीब, अनाथ और आर्त जनों के उद्धार मन्त्र(या यज्ञ) की दीक्षा में लगा हुआ है, जो लोक कल्याण का ज्वलन्त विग्रह है। जो कुबेर,

वरूण, इन्द्र, और यम के समान है; जिसके राजपुरूष उसके बाहुबल से जीते गये अनेक राजाओं के वैभव को लौटाने में नित्य (अर्थात निरन्तर) व्यस्त रहते है।

पंक्ति 27 – जो अपनी तीक्ष्ण एवं प्रखर बुद्धि से बृहस्पति को और संगीत कला के विलास में तुम्बुरू और नारदमुनि आदि को लज्जित करता है; जिसने विद्वानों को नवीन विचार देने वाले अनेक काव्यों की रचना द्वारा अपनी 'कविराज' उपाधि को प्रतिष्ठित कर लिया है; जिसके अनेक अद्भुत और उदार चरित्र (अर्थात कार्य) चिरकाल तक प्रशंसा किये जाने योग्य है, जो लोक व्यवहार के अनुष्ठान (अर्थात पालन) मात्र की दृष्टि से ही मनुष्य है (सरन) पृथ्वी पर (मानव रूप में निवास करता है हुआ देवता है:–

जो महाराज श्रीगुप्त का प्रपौत्र, महाराज श्री घटोत्कच का पौत्र, महाराजधिराज श्री चन्द्रगुप्त का पुत्र (तथा) लिच्छवि दौहित्र है, जो महादेवी कुमारदेवी (के गर्भ) से उत्पन्न हुआ है–(उस) महाराजधिराज श्री समुद्रगुप्त की, समस्त पृथ्वी विजय से उत्पन्न, अखिल भुवन मण्डल में व्याप्त यहां से (अर्थात इस लोक से) इन्द्रलोक पहुंचने में ललित और सुखमय गति रखने वाली कीर्ति की घोषणा के समान पृथ्वी भुजा जैसया यह उन्नत स्तम्भ(विराजमान है)।"[1]

## प्रयाग प्रशस्ति का उद्देश्य

समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति प्राचीन भारत के सर्वाधिक महत्वपूर्ण अभिलेखों में से एक है। इसका महत्वपूर्ण होने का कारण यह है, कि इसमें समुद्रगुप्त के व्यक्तित्व के विविध पक्षों का वर्णन है। इस वर्णन से लगता है, कि उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। वह न केवल एक महान योद्धा और सेनापति तो था साथ ही एक कुशल राजनीतिज्ञ, उद्भट विद्वान, महान संगीतज्ञ और दानवीर भी था। भारतीय परम्परा में वीरों की तीन कोटियां मानी गई है। दानवीर, युद्धवीर और शान्तवीर। कवि हरिषेण समुद्रगुप्त में इन तीनों प्रकार के वीरों के गुण दिखाना चाहता था। उनके वर्णन से ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त की संगीत व साहित्य में भी रूचि थी।

प्रयाग प्रशस्ति गुप्त सम्राट के राजनीतिक आदर्शो को समझने में भी सहायता मिलती है। इससे स्पष्ट होता है कि समुद्रगुप्त अपने को विष्णु का अवतार, 'पृथ्वी पर मानव रूप में विचरण करने वाला देवता समझा गया है।'

---

1. गोयल, श्रीराम, गुप्तकालीन अभिलेख, पृ. 56

# समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति का महत्व

समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति प्राचीन भारत के सर्वाधिक महत्वपूर्ण अभिलेखों में से एक है। स्वयं समुद्रगुप्त के जीवन काल में उसके सन्धिविग्रहिक, कुमारामात्य महादण्डनायक हरिषेण द्वारा रचित एवं तथ्यात्मक शैली में लिखित होने के कारण यह जहां तक तथ्यों का सम्बन्ध है पूर्णतः विश्वसनीय है। हरिषेण ने अपने स्वामी के व्यक्तिगत चरित्र को अवश्य ही अति रंजित रूप में लिखा है उनकी विजयों का वर्णन याथार्थिक रूप में ही किया है।

प्रयाग प्रशस्ति का सर्वाधिक महत्व राजनीतिक दृष्टि से है( दे.पं. 28,30 की टि.9 पृ. 47,48) में समुद्रगुप्त की विजयों का विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। जो उसने अपने पिता के जीवन काल में लड़े हो।

समुद्रगुप्त की विविध नीतियों की दृष्टि से भी प्रयाग प्रशस्ति बड़ी महत्वपूर्ण है उसने

1. प्रसभोद्धरण
2. ग्रहण मोक्ष
3. अनुग्रह
4. परिचारकीकरण
5. प्रत्यर्पण
6. भ्रष्टराज्योत्सनराजवंश प्रतिष्ठापन
7. सर्व करदान
8. आज्ञाकरण
9. प्रणामागमन
10. आत्म निवेदन
11. कन्योपायनदान
12. गरूत्मदक्डस्वविषय

भुक्ति शासन याचन द्वारा परितुष्ट किया था। इससे स्पष्ट है कि समुद्रगप्त ने साम, दाम और दण्ड इन तीनों नीतियों का तो अवलम्बन अवश्व ही किया था इन

नीतियों के अध्ययन से समुद्रगुप्त की राजनीतिक व्यवस्था को समझने में सहायता मिलती है।

समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति के अनुसार वह अपने आप को विष्णु का अवतार प्रथ्वी पर मानव रूप में विचरण करने वाला देवता समझता था प.24,26। प्रयाग प्रशस्ति में समुद्रगुप्त युगीन बहुत से पदनामों/सेनाधिकारियों की चर्चा आती है जैसे आयुक्तपुरूष, खाटपाकिक, महादण्डनायक, कुमारामात्य और सान्धिविग्रहिक आदि।"[1]

## समुद्रगुप्त का तिथिविहीन खण्डित एरण पाषाण लेख

"प्रस्तुत अभिलेख का प्राप्ति स्थल मध्य प्रदेश सागर जिले की खुरई तहसील में बीना नदी के तट पर बसा हुआ एरण नामक गांव है जो प्राचीन काल में ऐरिकण नामक नगर था। अभिलेख एक चौकोर लाल बलुहे पत्थर पर उत्कीर्ण है। यहां एक भग्न वराह मन्दिर के ध्वंसावशेषों से कुछ दूर तोरमाण का एरण अभिलेख प्राप्त हुआ है। आजकल यह पाषाण खण्ड कलकत्ता संग्रहालय में रखा हुआ है। अभिलेख सम्पूर्ण पाषाण खण्ड जिसका आकार 9 1/2'' 3'1'' है उत्कीर्ण है।

एरण अभिलेख की भाषा संस्कृत है। इसका उपलब्ध भाग पूर्णत पद्यात्मक है। उपलब्ध भाग में 8 श्लोक है। ये सभी वसनततिलका छन्द में है। लेख तिथिविहीन है और इसका लेखक अज्ञात है। इसकी लिपि प्रधानतः पेटिका शीर्ष प्रकार की बाह्मी है जो हमें द्वितीय प्रवरसेन वाकाटक के दानपत्रों तथसा द्वितीय चन्द्रगुप्त के 82 वें वर्ष के उदयगिरि लेख तथा तीवरसेन के राजीन दानपत्र आदि में मिलती है। जबकि कनिंधम का सुझाव था कि यह लेख विष्णु की उस विशाल प्रतिमा से सम्बन्धित रहा होगा जो एरण में वराह मन्दिर के तुरन्त बाद उत्तर की तरफ स्थित है।"[2]

---

1. फ्लीट, जान फेथफुल कार्पस इन्स्क्रीप्शनम वाल्यूम 3, पृ. 249–253
2. उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन पृ. 16–19

# मूलपाठ

पंक्ति 1 (पुत्रो) वभूव धनदान्तक– तुष्टि–कोप–तुल्य

(पराक्र) म–नयेन समुद्रगुप्तः(1)

## एरण अभिलेख का उद्देश्य

एरण अभिलेख कई दृष्टि से बड़ा ही रोचक एवं महत्वपूर्ण अभिलेख हे। एक धन धान्य और समृद्धियुक्त बहुत से पुत्र पौत्रों से भरे सपत्नीक परिवार की चर्चा करके यह समुद्रगुप्त के पारिवारिक जीवन की झांकी प्रस्तुत करता है।

## एरण अभिलेख का महत्व

एरण अभिलेख परोक्षतः एरण स्थल के महत्व की ओर संकेत करता है। जैसा कि हमने अन्यत्र लिखा है(हि.इ.गु.पृ.142) किसी भी उत्तर भारतीय विजेता के लिये ऐरिकेण का बड़ युद्धगीतिक महत्व था गंगा की उपत्यका की सुरक्षा की दुष्टि से भी तथा बुन्देलखण्ड, मालवा और दक्षिणापथ पर दबाव रखने की दृष्टि से भी। इसीलये ऐरिकेण में अनेक महत्वपूर्ण युद्ध लड़े गए (दे.शक. महालक्षत्रप श्रीधरवर्मा का एरण अभिलेख, जिसमें एरण में लड़े गये इसी युद्ध का वर्णन है। तथ भानुगुप्त एवं गोपराज का 510 ई. का अभिलेख जिसमें उस युद्ध का उल्लेख है)।

समुद्रगुप्त ने भी एरण में महत्वपूर्ण युद्ध लड़ा और उसमें विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य में वहां स्तम्भ या मन्दिर आदि बनवाया हो यह प्रशस्ति उस निर्माण कार्य का उल्लेख करने के लिये लिखवायी गयी है।"[1]

## समुद्रगुप्त का सन्दिगध नालन्दा ताम्रपत्र अभिलेख

ताम्रपत्र अभिलेख 1927–28 में नालन्दा (बिहार) में बड़गांव के (जहां नालन्दा महाविहार के अवशेष विद्यमान है) पुरातात्विक उत्खनन के दौरान मिला था।

---

*पंक्ति 1*

*अर्थात –* *समुद्रगुप्त नाम पुत्र था जो तुष्टि और कोप में (क्रमशः) धनद(=कुबेर) और अन्तक(=यम) के समान था, (तथा ) जिसको पाकर (अर्थात जिसके सामने)(उसके) पराक्रम और नीति द्वारा पृथिवी पर राजाओं का सफल समूह राज्यविभव से वंचित और उन्मूलित कर दिया गया।( समुद्रगुप्त की तुलना गुप्त अभिलेखों में धनद, वरूण, इन्द्र और अन्तक से बराबर की गई मिलती है।)*

---

1. डा. गोयल श्रीराम, गुप्तकालीन अभिलेख, पृ. 59–61

आजकल यह ताम्रपत्र कलकत्ता राष्ट्रीय संग्रहालय में रखा हुआ है। इसका आकार 10 1/2''ग9'' है और भार 45 तोला। इसके साथ कोई मुहर जुड़ी नहीं मिली है। यह गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त के काल का है, परन्तु अपने वर्तमान रूप में यह समुद्रगुप्त कालीन नहीं माना जा सकता है। लेकिन यह प्रश्न किब यह कोई कूट (=जाली) अभिलेख है या समुद्रगुप्त के किसी मौल (=असली) अभिलेख की नकल (=प्रतिलेख) बड़ा, विवादग्रस्त है, वंशावली वाले भाग को छोड़कर यह सम्भवतः किसीह असली दानपत्र की प्रतिलिपि है इसलिये इसे समुद्रगुप्त का 'संदिग्ध' अभिलेख कहा है।

अभिलेख जो एक ताम्रपट्टिका पर एक ही ओर लिखा है, नालन्दा में बिहार सं. 1 के उत्तरी बरामदे से प्राप्त हुआ था। यह टीले की खुदाई करने पर 19 नीचे, फर्श से करीब डेढ़ फुट ऊपर मिला था। लेख की भाषा संस्कृत है और यह सम्पूर्णतः गद्य में है। इसकी लिपि उत्तरी वर्ग की ब्राह्मी है और पंक्ति 10 में 5 और 2 अंकों का प्रयोग है।

# मूलपाठ

पं.1 "स्वाति (1) महानौहस्त्यश्व जयस्कन्धावारानन्दपुर–वासका(त्स)धर्वरा–(जोच्छे–तु) पृथिव्यामप्रतिरथ चतुरूदधि–सलि(लास्वा)

---

*पं.1*

*अर्थात्*

*ओऽम! सिद्धि हो! आनन्दपुर(नगर) में स्थित जलपोतों हाथियों और घोड़ों से युक्त विजयी सैनिक शिविर से सर्वराजोच्छेता, पृथिवी पर अप्रतिरथ(=विष्णु) के समान विचरण करने वाले, चारों समुदों के जल को (अपने) यश का आस्वादन कराने वाले, धनद(=कुबेर) वरूण इन्द्र(और )अन्तक(=यम) के समान, (क्रोधित होने पर ) कृतान्त, (=यमराज) के परशु(के सदृश) न्यायपूर्वक अर्जित करोड़ों गायों और स्वर्ण का (दान) देने वाले, चिरोत्सन्न प्रकार का अश्वमेघ करने वाले परमभागवत महाराजधिराज श्री समुद्रगुप्त जो महाराज श्री गुप्त के प्रपौत्र, महाराज श्री घटोत्कच के पौत्र, महाराजधिराज श्री( प्रथम) चन्द्रगुप्त के पुत्र लिच्छवि दौहित्र( तथा) महादेवी कुमारदेवी (के गर्भ) से उत्पन्न है ताविगुण्य विषय के भद्रपुष्करक ग्राम तथा क्रिमिला विषय के पूर्णनाग ग्राम में स्थित ब्राह्माणों सहित ग्रामवलत्कौशों के प्रति कहते है (अर्थात उन्हें निर्देश देते है)*

## समुद्रगुप्त का सन्दिग्ध गया ताम्रपत्र अभिलेख

इस अभिलेख का प्राप्ति स्थल बिहार का गया नामक सुप्रसिद्ध नगर है, जहां ये सह जनरल कनिंधम को 1883 ई. के कभी किसी ब्राह्मण से मिला था। आजकल यह ब्रिटिश संग्रहालय में रखा है। नालन्दा दानपत्र के समान इसके अन्दर भी कहा गया है, कि यह सम्राट समुद्रगुप्त के काल का है। वर्तमान रूप में इसे समुद्रगुप्तकालीन नहीं माना जा सकता है।

इसकी बंशावली वाले भाग को छोड़कर यह सम्भवतः किसी असली दानपत्र की प्रतिलिपि है। इसलिये इसे समुद्रगुप्त का 'सन्दिग्ध' ताम्रपत्र कहा गया है।

गया ताम्रपत्र 8"ग7 1/2" आकार की एक ही ताम्रपट्टिका पर जिसका मुहर सहित भार लगभग 1 किलोग्राम है। इसके किनारे न मोटे और न पट्टियों के रूप में उभरे है लेख काफी सुरक्षित अवस्था में है। इसमें कुछ 15 पंक्तियां है जो एक ही और लिखी है। ताम्रपट्टिका के दाहिनी ओर बीच में एक अण्डाकार मुहर संलग्न है जिसका आकार 2 7/8"ग3 3/8" है। इसका ताम्र शेष पट्टिका के ताम्र से भिन्न है। तथा इसकी भाषा संस्कृत है।

## अभिलेख का उद्देश्य एवम् महत्व

नालन्दा दानपत्र का महत्व इसकी विश्वसनीयता पर निर्भर करता है। यह दानपत्र समुद्रगुप्त के एक असली दानपत्र पर परवर्ती युग में तैयार की गई प्रतिलिपि है। यद्यपिन इसका वंशावली वाला भाग समुद्रगुप्त के किसी उत्तराधिकारी के दानपत्र में प्रदत्त वंशावली की सहायता से तैयार कि गया है। इस लेख से यह सिद्ध होता है कि समुद्रगुप्त ने 'परमभागवत' उपाधि धारण की थी।

दूसरे इस लेख में कुमार चन्द्रगुप्त (=द्वितीय चन्द्रगुप्त) का उल्लेख है। समुद्रगुप्त 324 ई. में वह लगभग बीस वर्ष का और तदनुसार 376 में सिंहासन पर बैठते समय लगभग 72 वर्ष का रहा होगा। यह असम्भव है क्योंकि हम जानते है कि 376 ई. में सिंहासन पर बैठते समय उसने रामगुप्त को मारकर ध्रुवदेवी से प्रेम विवाह किया था और लगभग 410 ई. में शकयुद्ध में व्यक्तिगत रूप से भाग लिया था। इसलिये नालन्दा दानपत्र की तिथि गुप्त संवत् का वर्ष न ाहेकर समुद्रगुप्त के राज्यारोहण का वर्ष होनी चाहिए जो हमने लगभग 350 ई. माना है।"[1]

---

1. गुप्त परमेश्वरी लाल, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, खण्ड–1 पृ. 15

# मूल पाठ

1. स्वास्ति महानौ– हस्त्यश्व–जयस्कन्धावाराजायोदृध्वा–वासकात्सर्व्य, राजो च्छेतु–प्र.

2. थित्यामप्रतिरू चतुरूदधि–सलिलस्वादित–यश (सो) धनद–वरूणेन्द्रा–

3– न्तक–समस्य कृतान्त–परशोर्न्यायागतानेक–गो. हिरण्य–कोटी–प्रदस्य चिरोच्छ–

4. ब्राश्वमेधाहर्तु महाराज श्री–गुप्त प्रपौत्रस्य महाराज–श्री घटोत्कच–पौत्रस्य

5. महाराजधिराज श्री–चन्द्रगुप्त पुत्रस्य लिच्छिवि दौहित्रस्य महादेव्या

## 'चन्द्र' का तिथिविहीन महरौली लौह स्तम्भ लेख

इस लेख का प्राप्ति स्थल दिल्ली से 9 मील दक्षिण और स्थित महरौली नामक स्थान है जहां यह कुतुबमीनार के पास स्थित एक लौह स्तम्भ पर उत्कीर्ण है। इसमें उल्लिखित नरेश का नाम 'चन्द्र' दिया गया है लेकिन डा. श्रीराम गोयल ने इस अभिलेख को समुद्रगुप्त का बताया है। पहिले यह देहली लौट स्तम्भ लेख नाम से प्रसिद्ध था। फ्लीट ने इसे महरौली लौह स्तम्भ लेख नाम दिया।

महरौली स्तम्भ 23'8"ऊँचा है। इस का व्यास आधार के पास 16" और शीर्ष के पास 12" है। इस पर यह लेख 2" 91/2ग10 1/2" क्षेत्रफल में लिखा है। लेख की सबसे निचली पंक्ति धरातल पर बने चबूतरे से 7 ' से भी अधिक ऊँचाई पर है लेख अत्यन्त सुरक्षित रूप में उपलब्ध है। इसके अक्षरों का आकार 5/16 से 1/2 तक है।

---

*अर्थात पं.1 से 5 तक*

*ओऽम! सिद्धि हो! अयोध्या (नगर) में स्थित जलपोतों, हाथियों और घोडों से युक्त विजयी सैनिक शिविर से सर्वराजोच्छेता, पृथिवी पर अप्रतिरथ (=विष्णु) (के समान विचरने वाले), चारों समुद्रों के जल को (अपने) यश का आस्वादन कराने वाले, धनद (=कुबेर) वरूण इन्द्र (और) अन्तक (=यम) के समान (क्रोधित होने पर ) कृतान्त (=यमराज) के परशु (के सदृश) न्यायपूर्वक अर्जित करोड़ों गायों और सुवर्ण का (दान) वाले चिरोत्सन्न प्रकार का अश्वमेघ करने वाले, परमभागत महाराजधिराज श्री समुद्रगुप्त, जो महाराज श्री गुप्त के प्रपौत्र महाराज श्री घटोत्कच के पौत्र महाराजधिराज श्री (प्रथम) चन्द्रगुप्त के पुत्र, लिच्छिवि (= लिच्छिवी) दैहित्र (तथा) महादेवी कुमार देवी (के गर्भ) से उत्पन्न है, गया विषय खेतिका ग्राम में स्थित ब्राह्मणों सहित ग्राम बलत्कौणों के प्रति कहते है (अर्थात उन्हें निर्देश देते है।*

महरौली लेख की भाषा संस्कृत है और यह सम्पूर्णतः गद्यात्मक है। इसमें तीन लोक है और तीनों ही शार्दूलविकीडित छन्द में है।

# मूलपाठ

पं.5 प्राप्सेन स्व–भुजाजिर्जतज्च सुचिरचैकाधिराज्यं क्षितौ

चन्द्राहेन समग्र– चन्द्र(स) द्वर्शी वक्त्र श्रियं विभ्रता

तेनाय प्राणिधाय भूमि– पतिना धावेन विष्णो मूर्ति

प्रा.शुर्व्विष्णुपदे गिरौ भगवतो विष्णोर्ध्वजः स्थापितः!!

## अभिलेख का उ्देश्य

अधिकांश तत्कालीन लेखों के विपरीत इस लेख में इसके चन्द्र(समुद्रगुप्त) का न पूरा नाम दियाह ै और न इसमें उसके वंश का वर्णन है। यह एक वैष्णव लेख है जिसका उद्देश्य 'चन्द्र' के द्वारा विष्णुपदगिरि पर विष्णुध्वज के रूप में इस स्तम्भ की स्थापना का उल्लेख करना है। वे विष्णु के सम्मान में स्थापित ध्वज स्तम्भ को देवताओं के सम्मान में ध्वज स्थापना का गुप्त कालीन समय में बहुत प्रचलन था। तथा गुप्तकालीन नरेश विष्णु के उपासक थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस स्तम्भ पर गरूड़ की प्रतिमा स्थापित की गई थी। यह स्तम्भव गुप्तकाल में हिन्दुओं द्वारा धातुशास्त्र में प्राप्त उपलब्धियों का सुन्दर उदाहरण है। छः टन भारी इस लौह स्तम्भ की ढलाई एक साथ हुइ थी और यह इतने अच्छे लोहे का बना है कि इसमें अभी तक जंग नहीं लगा है।

समुद्रगुप्त के वैष्णव होने से द्वितीय चन्द्रगुप्त के वैष्णव होने के प्रमाण अधिक है। समुद्रगुप्त वैष्णव था उसने भगवान विष्णु के वाहन गरूड़ को अपना राजचिन्ह बनाया। इसके अतिरिक्त गया और नालन्दा अभिलेखों में उसे 'परमभागवत' भी कहा गया है।

---

*पं.5*

*अर्थात्*

*जिसने पृथ्वी पर अपनी भुजाओं से अर्जित एकाधिराज्य का चिरकाल तक उपभोग किया; जो पूर्ण चन्द्र के समान मुखश्री धारण करने के कारण 'चन्द्र' नाम से विख्यात था, जो शुद्ध हृदय वाला था; उस राजा द्वारा विष्णु में श्रद्धा रखते हुए विष्णुपदगिरि पर यह उन्नत विष्णुध्वज स्थापित कराया गया।*

## अभिलेख का महत्व

महरौली अभिलेख गुप्त काल का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अभिलेख है। यह प्रकृत्या एक प्रशस्ति है और वैष्णव से सम्बन्धित है। इसका महत्व विशेषतः' राजनीतिक दृष्टि से है, क्योंकि इसमें नरेश 'चन्द्र' अर्थात समुद्रगुप्त के साम्राज्य की सीमाएं ज्ञात होती है इससे पता चलता है कि उस नरेश ने पूर्व में बंगाल, उत्तर–पश्चिम में सप्तसिन्धु तथा दक्षिण में हिन्द महासागर तक विजय यात्रा की थी।"[1]

## द्वितीय चन्द्रगुप्त का तिथिविहीन मथुरा पाषाण लेख

यह अभिलेख 10''ग11 1/2'' आकार के जिस पाषाण खण्ड पर उत्कीर्ण है वह मथुरा से प्राप्त हुआ था। अब यह लाहौर संग्रहालय में है। इसका प्राप्त भाग जिसमें दस पंक्तियों है,किसी बड़े अभिलेख का प्रारम्भिक भाग है– शेष भाग टूट कर खो गया है। अभिलेख बहुत क्षत अवस्था में मिला है। लेख की भाषा संस्कृत है तथ लिपि चौथी शती के उत्तरार्द्ध की ब्राह्मी है। लेख पूर्णत गद्य में है। अक्षरों का आकार 3/8'' से 3/4'' तक है।

# मूलपाठ

1. (सव्वराजोच्छेतुः पृथिव)य (मप्रतिरथ)
2. स्य चतुरूदधिसलि) लास्वादितय(शसो ध)
3. (नदवरूणेन्द्रान्तकस) मस्य कृतान्त(परशोः)
4. (न्यायातानेकगो) हिरण्यकोटिप्रद( स्य चिरो)
5. त्सन्नाश्वमेधाहर्त्तुम्म) हाराजश्रीगुप्तप्रपौ(त)र(स्य)
6. (महाराजश्री घटोत्क) चपौत्रस्य महाराजाधि(ज)
7. श्रीचन्द्रगुप्तपु) त्रस्य लिच्छविदौहित्रस्य महा(दे)
8. (व्यां कुमार)द() व्यामुल्यपन्नस्य महाराजधिरा
9. (ज श्री स) मुद्रगुप्तस्य पुत्रेणत्परग्रि

---

1. मिश्र, शिवनंदन, गुप्त कालीन अभिलेख, पृ. 40

10 (ही) त() न महादेव (य)दित्(त) देब्(य)ामुत(प)न(न)

11. (न स्वयं चाप्रतिरथेन परमभागवतेन)

12. (महाराजधिरज श्री चन्द्रगुप्ततेन)

## अभिलेख का उद्देश्य एवं महत्व

द्वितीय चन्द्रगुप्त के उदार एवं धार्मिक दृष्टिकोण का प्रमाण है कि चन्द्रगुप्त स्वयं वैष्णव था। वैष्णव गुप्त सम्राट के शासन में धार्मिक सहिष्णुता के वातावरण का ज्ञान उसके अभिलेखों से पता चलता है।"[1]

## प्रथम कुमार गुप्त(415–55ई.) का बिल्सड़ पाषाण स्तम्भ लेख वर्ष 96 (=415ई.)

इस लेख का प्राप्ति स्थल एटा जिलेग में अलीगंज तहसील के अन्तर्गत स्थित बिल्सड़ या बिलसण्ड नाम का गांव है जो अलीगंज कस्बे से चार मील उत्तर पूर्व की ओर स्थित है। इस गांव में तीन टीले है जिसमें बिल्सड़ पुवांया नामक टीले के दक्षिण पश्चिमी कोने में लाल बलुहे पाषाण के चार एकाश्म स्तम्भ मिलतू है दो गोल और दो चोकोर। इनमें दोनों गोलस्तम्भों पर एक ही लेख की दो प्रतियां उत्कीर्ण मिली है लेकिन इनमें से एक में कुछ छोटी 16 पंक्तियां है और दूसरे में कुछ बड़ी 15 पंक्तियां है।

अभिलेख का क्षेत्रफल 2' 1 3/4''ग10 1/2'' है। इसएकी भाषा संस्कृत है और यह गद्य पृद्य मिश्रित है। इसकी लिपि उत्तरी वर्ग की ब्राह्मी है।

---

*पं. 1–12*

*अर्थात (अनुवाद) महाराज श्रीगुप्त के प्रपौत्र महाराज श्री घटोत्कच के पौत्र, महाराजधिराज श्री चन्द्रगुप्त के पुत्र, लिच्छिवि दौहित्र, महादेवी कुमार देवी(के गर्भ) से उत्पन्न महाराजधिराज श्री समुद्रगुप्त(हुए) जो समस्त राजाओं का उच्छेद करने वाले, पृथिवी पर अप्रतिरथ(=विष्णु) (के समान विचरण करने वाले) चारों समुद्रों के जको अपने यशस का आस्वादन कराने वाले, कुबेर, वरूण, इन्द्र, और अन्तक के समाजन (क्रोधित होने पर) कृतान्त(=यम) के परशु के सदृश, न्यायपूर्वक अर्जित अनेक करोड़ गौओ एवं सुवर्ण का दान देने वाले(तथा) चिरोत्सन्न प्रकार का अश्वमेघ करने वाले (थे) उनके पुत्र, उनके द्वारा (अपने उत्तराधिकारी के रूप में) स्वीकृत, महादेवी दत्तदेवी(के गर्भ) से उत्पन्न साक्षात अप्रतिरथ(=विष्णु) (के समान) परमभागवत महाराजधिराज श्री चन्द्रगुप्त के द्वारा!*

---

1. ओझा, रामप्रकाश उत्तरी भारतीय अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 76

# मूलपाठ

पं.1 (सिद्धम11)(सव्व राजोच्छेतु: पृथिव्यामप्रतिरथस्य चतुरूदधि–स)(लिला)

खादित–यशसो2(धनद वरूणेन्द्रान्तक–समस्य कृतान्त–परशोः न्यायगतानेक गो–हि) रण्यकोटि प्रदस्य चिरोत्सन्नाश्वमेधाहर्तुः

3. (महाराज श्रीगुप्त प्रपौत्रस्य महाराज श्री घटोत्कच–पौत्रस्य म)(हा) राजधिराज श्री धन्द्रगुप्त पुरत्रस्य!

4. लिच्छ(वि–दौहित्त्रस्य)(महादेव्यां कुमारदेव्यामुत्पन्नस्य महाराजा)

धिराजश्रीसमुद्रगुप्त पुत्रस्य

## अभिलेख का उद्देश्य एवं महत्व

यह अभिलेख प्रथम कुमारगुप्त का सबसे पुराना अभिलेख है इससे कुमारगुप्त की सबसे पहिली तिथि गु.सं. 96 (=415 ई.) ज्ञात होती है। यह धार्मिक इतिहास की दृष्टि से भी बड़ा महत्वपूर्ण है। इसमें ध्रुवशर्मा नामक व्यक्ति स्वामिमहासेन(=कार्तिकेय) के मन्दिर में कुछ निर्माण कार्यो के बारे में उल्लेख करता है। कि कुमारगुप्त परमभागत उपाधिधारी होने के बावजूद कार्तिकेय की उपासना में रूचि रखता था। उसने अपने पुत्र का नाम 'सकन्द' रखा था जो कार्तिकेय का ही दूसरा नाम है, कार्तिकेय प्रकार की सुवर्ण मुद्रायें चलाई गई थी तथा मध्यदेशीय रजत मुद्राओं पर गरूड़ के स्थान पर मयूर का अंकन करवाया था।"[1]

---

*अर्थात*

*सिद्धि हो! महाराज श्री गुप्त के प्रपौत्र महाराज श्री घटोत्कसच के पौत्र महाराजधिराज श्री (प्रथम) चन्द्रगुप्त के पुत्र, लिच्छवि दौहित्र, महादेवी कुमारदेवी (के गर्भ) से उत्पन्न महाराजधिराज श्री समुद्रगुप्त (हुए) जो समस्त राजाओं का उच्छेद करने वाले, पृथिवी पर अप्रतिरथ(=विष्णु) (के समान विचरण करने वाले) चारों समुद्रों के जल को अपने यश का आस्वादन कराने वाले, कुबेर, वरूण, इन्द्र और अन्तक(=यम) के समान (क्रोधित होने पर) कृतान्त(=यम) के परशु के सदृश, न्यायपूर्वक अर्जित अनेक करोड़ों गौओ एवं सुवर्ण करने वाले(तथा) चिरोत्सन्न प्रकार का अश्वमेघ करने वाले(थे) उनके पुत्र महरादेवी दत्तदेवी(के गर्भ) से उत्पन्न, साक्षात् अप्रतिरथ(=विष्णु)(के समान) परमभागवत महाराजधिराज श्री(द्वितीय) चन्द्रगुप्त (थे।)!*

---

1. फ्लीट, जान फेथफुल, कार्पस इन्स्क्रीप्शनम वाल्यूम 3, पृ. 42

## प्रथम कुमारगुप्त शासनकालीन खण्डित तुमैन पाषाण लेख गु.सं. 116=435–6 ई.

यह लेख एम.बी. गर्दे ने फरवरी 1919 में मध्य प्रदेश के गुना जिले में, जो तब ग्वालियर रियासत में था, तुमैन नामक ग्राम से प्राप्त किया था। तुमैन एरण से 40 मील उत्तर मील उत्तर–पश्चिम की तरफ है। जिस पाषाण पर यह उत्कीर्ण है वह एक टूटी फूटी मस्जिद में लगा हुआ था। आजकल यह ग्वालियर आर्क्योलोजिकल म्यूयिम में रखा हुआ है।

उपलब्ध लेख का आकार 24''ग7'' है और इसमें केवल छः पंक्तियां लिखी है। इसमें प्रथम पंक्ति अधूरी है। शेष पंक्तियों के कुछ अक्षर गायब है। लेख की भाषा संस्कृत है और लिपि उत्तर वर्ग की पांचवीं शती के मध्य की पश्चिमी ब्राह्मी है। इसके अक्षर औसतन 5/8'' ऊँचे है। लेख काफी अच्छी तरह से लिखा गया है।

# मूलपाठ

पं.2 "श्रीचन्द्रगुप्तस्य महेन्दकल्प

कुमारगुप्तस्यनयस्य(मग्राम)

रक्ष सावधीमिव धर्म्मपत्नीम्

वीर्याग्रहस्तैरूपगुह य भूमिम्!!

## अभिलेख का उद्देश्य एवं महत्व

यह लेख जो प्रथम कुमार गुप्त के शासनकाल का है इसका उद्देश्य पांच भाईयों द्वारा जो, तुम्बवन (तुमैन) के निवासी थे, उनके द्वारा एक मन्दिर बनवाये जाने का उल्लेख है। मन्दिर के देवतार के देवता का नाम मिट गया है। अनुमान है कि यह एक वैष्णव मन्दिर रहा होगा। मन्दिर निर्माता भाइयों के नाम उनकी वरिष्ठता के अनुसार क्रमशः हरिदेव, श्रीदेव, धन्यदेव, भद्रदेव एवं संघदेव थे। अनुमान है कि कुमारगुप्त का अनुज या पुत्र तुम्बवन का गर्वनर रहा होगा।"[1]

---

*अर्थातः*

*श्री चन्द्रगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त ने, जो इन्द्र के समान है, अपनी बलिष्ठ भुजाओं से पृथिवी का जो(उनके लिये) एक साध्वी पत्नी के समान थी आलिंकन करके रक्षा की।*

---

1. गोयल, श्रीराम, गुप्तकालीन अभिलेख, पृ. 78–79

# पुरुगुप्त कालीन तिथिविहीन बिहार पाषाण स्तम्भ लेख

यह अभिलेख बिहार या बिहारीशरीफ से प्राप्त उसी पाषाण स्तम्भ पर उत्कीर्ण है जिस पर प्रथम कुमारगुप्त कालीन लेख लिखा है इस लेख में कुल 20 पंक्तियां है जो स्तम्भ की गोलाई से तीन चौथाई भाग में लिखी है इसकी प्रत्येक पंक्ति में करीब 27 अक्षर थे जिसमे प्रारम्भ के 18 अक्षर मिट चुके है।

भाषा और लिपि की दृष्टि से यह प्रथम कुमारगुप्त के लेख के समान है।

## मूलपाठ

1. (सर्व्व राजोच्छे) तुः प्रिथित्यागप्रतिरथ
2. (चतुरूदधि–सलिलास्वादित–यशसो धनद वरूणो) न्द्रान्तकसगस्य कृतान्त
3. (परशोः न्यायागतानेक–गो–हिरण्य–कोटि–प्रदस्थ चिरो) त्वत्राश्वमेधाहर्त्तुः
4. (महाराज श्रीगुप्त प्रपौत्रस्य महाराज श्रीघटो) त्कच–पौत्रस्य महाराज–
5. (धिराज श्री चन्द्रगुप्त पुत्रस्य लिच्छवि दौहित्रस्य म) हादेव्यां कुमारदेव्यामुत्पत्रस्य
6. (महाराजधिराज–श्रीसमुद्रगुप्त पुत्र) स्तत्पपरिग्रहीतो महादेव्यां
7. (दत्तदेव्यमुत्पन्न स्वयं पाप्रतिरथःपर) भभोगवतो महाराज
8. (धिराज श्रीचन्द्रगुप्तस्य पुत्रस्यत्पादानुद्धया) तो महादेव्यां ध्रुवदेवया
9. (मुत्पन्नःपरम–भागवतो महाराजधिराज श्रीकुमारगुप्तस्य) पुत्रस्तपादानुद्वयातः
10. (परम–भागवतो महाराजधिराज यीपू)(रू)गुप्तः!!

---

*अर्थात*

*महाराजश्रीगुप्त के प्रपौत्र, महाराज श्री घटोत्कच के पौत्र महाराजधिराज श्री(प्रथम) चन्द्रगुप्त के पुत्र, लिच्छवि दौहित्र, महादेवी कुमारदेवी (के गर्भ) से उत्पन्न महाराजधिराज श्री समुद्रगुप्त (हुए) जो समस्त राजाओं का उच्छेद करने वाले पृथिवी पर अप्रतिरथ (=विष्णु) के (समान विचरण करने वाले) चारों समुद्रों के जल को अपने यश का आस्वादन कराने वाले, कुबेर, वरूण, इन्द्र और अन्तक के समान (क्रोधित होने पर) कृतान्त(=यम) के परशु के सदृश, न्यायपूर्वक अर्जित अनेक करोड़ गोओं एवं सुवर्ण का दान देने वाले (तथा) चिरोत्सन्न प्रकार का अश्वमेघ करने वाले (थे) उनके पुत्र, उनके द्वारा (उनके उत्तराधिकारी के रूप में)स्वीकृत, महादेवी दत्तदेवी(के गर्भ) से उत्पन्न, साक्षात अप्रतिरथ(=विष्णु) ( के समान ) परमभागवत महाराजधिराज श्री(द्वितीय) चन्द्रगुप्त(थे) उनके पुत्र, उनके चरणों का ध्यान करने वाले, महादेवी ध्रुदेवी(के गर्भ) से उत्पन्न परगभागवत महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्त थे( उनके) पुत्र उनके चरणों का ध्यान करने वाले परमभागवत महाराजाधिराज श्री पुरुगुप्त (है)*

## अभिलेख का उद्देश्य एवं महत्व

अभिलेख का महत्व कई दृष्टि से है यह पुरूगुप्त का एकमात्र ज्ञात अभिलेख है, बी.पी. सिन्हा तथा अन्य विद्वान मानते है कि इसकी पंक्ति 10 में पुरूगुप्त का नाम ही लिखा था। इस अभिलेख में स्कन्दगुप्त का उसके पिता से सम्बन्ध बताते समय 'तत्पादानुध्यात' पद का प्रयोग हुआ है जिसकी भीतरी अभिलेख में अनुपलब्धि को वह स्कन्दगुप्त के अधिकार की वैधता के विरूद्ध दूसरा बड़ा प्रमाण मानते है गुप्त वंशावलियों में अभिलेख या मुहर लिखवाने वाले राजा की माता कभी–कभी अनुल्लिखित रह जाता है इस विषय में कोइ निश्चित नियम नहीं था।"[1]

## स्कन्दगुप्त का तिथिविहीन भीतरी पाषाण स्तम्भ लेख

यह स्कन्दगुप्त का दूसरा महत्वपूर्ण अभिलेख है। यह उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले की सैदपुर तहसील में इसी नाम के कस्बे से करीब 5 मील उत्तर पूर्व की तरफ स्थित भीतरी ग्राम से मिला है। यह इस गांव के ठीक बहार स्थित भूरे बलुहे पत्थर के एक स्तम्भ की चौकार आधार पीठ पर उत्कीर्ण है। इसकी सबसे पंक्ति भूमि के कुछ ही इंच ऊपर है यह 2'' 41/4''ग621/4 क्षेत्रफल में लिखा है। इसके अक्षर पत्थर पर ऋतुओं के प्रभाव टूट, फूट तथा एक दरार पड़ जाने के कारण काफी क्षत हो गयग है, फिर भी यह लगभग सम्पूर्णतः पठ्य है। कम से कम ऐतिहासिक महत्व का कोई अंश अपठ्य नहीं हो पाया है। लेख की भाषा संस्कृत है और यह कुल 19 पंक्तियों में लिखा है छठी पंक्ति के मध्य तक का भाग गद्य में है और शेष भाग 12 श्लोकों के रूप में। इसकी लिपि उत्तरी वर्ग की ब्राह्मी है जिसका आकार 1/4'' से 7/16 तक है तथा कुछ चौकोरपन अधिक है।

# मूल पाठ

पं. (स्व)–पितुः कीर्ति

(कर्त्तव्या?) प्रतिमा काचित्प्रतिमा तस्यशाङ्गिः

---

*अर्थात*

*जब तक चांद तारे विद्यमान है (तब तक स्थायी रह सके ऐसी) कोई प्रतिमा उस शाड्गी(=विष्णु) की बनवायी जानी चाहिए (ऐसा सोचकर) उस परम यशस्वी(=स्कन्दगुप्त ने इस प्रतिमा को बनवाया)।*

---

1. गोयल, श्रीराम, गुप्तकालीन अभिलेख, पृ. 205

## अभिलेख का उद्देश्य तथा महत्व

प्रस्तुत अभिलेख तिथिविहीन है, लेकिन स्कन्दगुप्त के शासनकाल के प्रारम्भ में लिखवाया गया लगता है। यह प्रकृत्या वैष्णव अभिलेख है। इसका उद्देश्य प्रथम कुमारगुप्त की स्मृति में स्कन्दगुप्त द्वारा भगवान शाड्.गी(=विष्णु) की प्रतिमा स्थापित करवाये जाने तथा उस गांव को जहां यह स्तम्भ खड़ऋ.ा है प्रतिमा के नाम पर दान दिये जाने की घोषणा है।

इस अभिलेख का विशेष महत्व इसलिये भी है क्योंकि यह स्कन्दगुप्त की प्रारम्भिक कठिनाईयों का वर्णन रकता है पर यह तिथिविहीन है, परन्तु इसमें उसकी कठिनाईयों का वर्णन करते समय आए 'पितरिदिवमुपेतेविप्लुता' वंश लक्ष्मी' वाक्य से निश्चित है कि स्कन्दगुप्त को अपने शासन के प्रा. आरम्भ से ही कठिनाईयां उठानी पड़ी।

भीतरी लेख स्कन्दगुप्त के चरित्र के कुछ पाों का अच्छा चित्र उपस्थित करता है पहला पक्ष उसकी शूरता और पराक्रम। दूसरे श्लोक में उसे ''जगतिभुजबलाढ़यः' तथा 'गुप्तवंशकैवीर' कहा गया है पांचवे श्लोक में उसने शत्रुओं के शस्त्र प्रताप को विध्वस्त कर दिया था। और अपने भुजबल से शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। लेकिन उसकी शूरता और युद्धप्रियता सबसे अधिक उजागर हुई जब उसने पुष्यमित्रों और हूणों का मान मर्दन किया उसने सम्पूर्ण रात भूमि पर सो कर बिताई थी।

भीतरी लेख में स्कन्दगुप्त के व्यक्तित्व का जो अन्य पक्ष उभरा है। वह है उसकी सचरित्रता दूसरे श्लोक में कहा गया है उसका चरित्र उतना ही उत्कृष्ट था जितना चरित्र ग्रन्थों में वर्णित महापुरूषों का। इसी श्लोक में वह अमलात्मा, इन्द्रियों का लक्ष्य जान लेने के कारण विनीत, अगले श्लोक में सुनीति तथा विनय युक्त 5 वें श्लोक में अमल चरित्र वाल 6 वें में विजित दुखियों पर दया दिखाने के चरित्र की दो विशेषताओं शूरता व चारित्रिक विमलता– ने सर्वाधिक प्रभावित किया।"[1]

---

1. फ्लीट, जान फेथफुल, कार्पस इन्स्क्रीप्शनम, वाल्यूम 3, पृ. 119

## स्कन्दगुप्त (ज्ञात तिथियां 455 से 467 ई.) का प्रथम जूनागढ़ शिलालेख गु.सं0. 1369 137 (=455 एवं 456 ई.)

स्कन्दगुप्त का प्रथम जूनागढ़ शिलालेख इस सम्राट का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अभिलेख है और गुप्त अभिलेखों में अत्यन्त विशिष्ट स्थान रखता है। जूनागढ़ आधुनिक गुजरात राज्य में स्थित है। प्रथम रूद्रदामा के शिलालेख में इसका प्राचीन नाम 'गिरिनगर' दिया गया है। यह नाम बाद में गिरनार हो गया। यह अभिलेख तथा स्कन्दगुप्त का इसी स्थान से प्राप्त दूसरा लेख जूनागढ़ नगर से करीब एक मील पूर्व की ओर स्थित उस शिला पर 10''ग7.3'' क्षेत्रफल में खुदे है इन लेखों की प्रथम 21 पंक्तियां बहुत टूटी फूटी नहीं है पर अक्षरों के गहराई से न खोदे जाने से शिला के धरातल के उबड़ खाबड़ होने तथा शिला धरातल में बीच-बीच में खाली जगह छोड़ दिये जाने के कारण इसको पढ़ने में बहुत परेशानी होती है।

जूनागढ़ लेख (प्रथम) संस्कृत भाषा में है प्रथम शब्द 'सिद्धम' और अन्तिम वाक्य को छोड़कर यह सम्पूर्ण गद्य में लिखित है इसमें कुल 39 श्लोक है।

स्कन्दगुप्त का द्वितीय जूनागढ़ लेख प्रकृत्या एक वैष्णव अभिलेख है जिसका उद्देश्य चक्रपालित द्वारा भगवान चक्रभृत(=विष्णु) के मन्दिर का निर्माण करवाये जाने का उल्लेख है।

---

*जूनागढ़ नगर के करीब एक मील पूर्व की ओर स्थित (मौर्यकाल) अशोक के चौदह शिला प्रज्ञापनों का एक सेट तथा प्रथम रूद्रदामा का अभिलेख भी उत्कीर्ण है।*

# मूल पाठ

पं.1 'सिद्धम्'

श्रियमभिमतभोग्यां नैककालापनीतां

त्रिदशपति सुखार्त्थं यो बलेराजहार

कमल–निलयानायाः शाश्वत् धाम लक्ष्म्याः

पं.2 स जयति विजितार्तिविष्णुरत्यन्त–जिष्णुः।।

तदनु जयति शाशवत् श्री परिक्षित वक्षाः

स्वभुज– जनित वीर्यो राजराजाधिराजःनरपति।

पं.3 भुजगानां मानदर्प्पोत्फणानां

प्रतिकृति–गरूड़ा (ज्ञां) निर्व्विषी()चाककर्त्ता।।2

नृपति–गुण–निकेतः स्कन्दगुप्तः पृथुःक्षीः

चतुरू(दधि–जल) ान्ता स्फीत–पर्यन्त देशाम्।

---

*अर्थात*

*पं.1 सिद्धि हो! दुदखों का निवारण करने वाले, पूर्ण जेता( अर्थात सर्वदार विजयी होने वाले, निरन्तर जयशील) (उस) विष्णु की जय हो जो पद्मवासा लक्ष्मी के शाशवत धाम है, जिन्होंने इन्द्र के सुख के लिये राजा बलि से अनेक काल से (अर्थात चिरकाल से अथवा अनेक बार) अपहृत सम्भ्रान्त जनों द्वारा उपभोग्या लक्ष्मी को छीन लिया था।*

*पं.2 तदन्तर लक्ष्मी द्वारा आलिंगित वक्षवाले, अपनी भुजाओं के बल से अर्जित विक्रम वाले, मान और दर्प से फल उठाये हुए राजाओं रूपी भुजंगों को अपनी गरूड़ के चित्र द्वारा सम्प्रेशित आज्ञाओं (अर्थात गरूड़ की मुहर युक्त आशाओं ) से निर्विष कर देने वाले राजाओं की राजधि राज!।*

*पं.3 नृपतियों के गुणों के आगार, विपुल लक्ष्मी वाले, शत्रुओं को अवनत करने वाले स्कन्दगुप्त की जय होवे जिन्होने पिता द्वारा आत्मशक्ति से देवताओं का सामीप्य प्राप्त कर लेने पर (अर्थात उनके दिवंगत हो जाने पर) चारों समुद्रों के जलों तक(अर्थात तटों तक) विस्तृत समृद्ध देशों वाली पृथिवी को अपने अधीन कर लिया।*

पं.5 क्रमेण बुद्धया निपुण प्रधार्य

ध्यात्वा च कृत्स्नान्गुण–दोष–हेतुन

व्यपेल्य सर्व्वान्मनुजेन्द्रा–पुत्रां(त्राँ)

लक्ष्मीः स्वयं यं वरयांचकार

तस्मिन्नृपे शासति नैव कश्चिद्धर्म्मादपेतो

मनुजः प्रजासु

पं.9 एवं विनिश्चित्य नृपाधिपेन

नैकान्हो रात्र गणान्स्व–मत्या।

यः संनियुक्तों र्थनया कथंचित्

सम्यक्सुराष्ट्रावनि–पालनाय

नियुज्य देवा वरूणं प्रतिच्यां

स्वस्था यथा नोम्मनसो बभूवु

पूर्व्वतरस्यां दिशि पर्णदत्त

नियुज्य राजा धृतिमांस्तथाभूत

---

*अर्थात*

*पं.5 जिसको स्वयं लक्ष्मी ने गुण दोष के समस्य हेतुओं का ध्यान रखते हुए क्रमानुसार बुद्धि द्वारा निपुण पाकर मनुजेन्द्र के समस्त पुत्रों का (उनको अपने योग्य न पाकर) परित्याग करके अपना पति वरण किया।।5।। उस नृप के शासन में प्रजा में कोई मनुष्य (ऐसा) नहीं है जो धर्मच्युत हुआ हो और न कोई ऐसा है जो आर्त्त, दरिर्द, व्यसनी, लोभी, या दण्ड द्वारा अत्यधिक सताया हुआ है।*

*पं.9 इस प्रकार राजा द्वारा अनेक दिन रात अपने मन में विचारपूर्वक निश्चय कर लिए जाने के बाद जो (अर्थात पर्णदत्त) सम्यक सुराष्ट्र भूमि का पालन करने के लिए किसी प्रकार ( अर्थात कठिनाई के साथ ) अनुरोध द्वारा (दबाव डालकर) नियुक्त किया गया जिस प्रकार देवगण वरूण को प्रकार पश्चिम में पर्णदत्त की नियुक्ति करके राजा निश्चित हो गए।*

पं.10 तस्यात्मजो ह्यात्मज भाव युक्तो

द्विधेव चात्मात्म वशेन नीतः।

सर्व्वात्मनात्मेव च रक्षणीयो

नित्यात्मवानात्मज कान्त रूपः।

रूपानुरूपैर्ललिततैर्विचित्रैः

नि(र्नि) प्रमोदान्वित सर्वभावः

प्रबुद्ध पद्माकर पद्मवक्त्रो

नृपा शरण्यः शरणागतानाम्

---

*अर्थात*

*उनका (अर्थात पर्णदत्त का ) पुत्र– जो पिता के प्रति आदर्श पुत्र में मिलने वाले) पुत्रोचित भावों से युक्त उसकी ही दूसरी आत्मा (अर्थात प्रतिरूप) के समान, आत्म संयम में कुशल, सर्वभूतों में व्याप्त प्रभु द्वारा अपनी के समान रक्षणीय, नित्य जितेन्द्रिय तथा नैसर्गिक(अथवा कामदेव) जैसे सौन्दर्य से युक्त अपने रूप के अनुरूप ललित और विचित्र विविध भावनाओं से युक्त, सदैव प्रमोद युक्त( अर्थात सदैव हर्षित रहते वाला) विकसित पद्मों के समूह (अथवा पद्मों से परिपूर्ण सरोवर) से तुलनीय मुख कमल वाला तथा शरणागत जनों शरण स्थल था, पृथ्वी पर 'चक्रपालित' इस नाम से प्रसिद्ध हुआ।(वह ) जनता का प्रिय(था)! अपने उदात्त और निष्कलंक गुणों के द्वारा उसने पिता (की कीर्ति) को विशेष कर दिया! (अर्थात अपने पिता को गौरव प्रदान किया।)*[1]

---

1, गोयल, श्रीराम, गुप्तकालीन अभिलेख, पृ. 223–225

## जूनागढ़ अभिलेख का उद्देश्य एवं महत्व

प्रस्तुत अभिलेख एक वैष्णव अभिलेख है। यह भगवान विष्णु की स्तुति से प्रारम्भ होता है जिसमें विष्णु के वामन अवतार की कथा का उल्लेख है। उसने अपने पुत्र का नाम 'चक्रपालित'(=भगवान विष्णु के चक्र द्वारा रक्षित) रखा और चक्रपालित स्वयं भगवान विष्णु का भक्त था।

उन अभिलेखों का उद्देश्य चक्रपालित द्वारा भगवान विष्णु के मन्दिर का निर्माण करवाये जाने का उद्देश्य है।

स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ अभिलेख गुप्तकाल के सर्वाधिक महत्वपूर्ण अभिलेखों में से है इससे स्कन्दगुप्त के शासनकाल की प्रमुख घटनायें ज्ञात होती है। जूनागढ़ लेख के प्रथम श्लोक में ही भगवान विष्णु की स्तुति की गई है। कवि ने स्कन्दगुप्त की कीर्ति और विजयों का वर्णन किया है। दूसरे श्लोक में वह उन भुजग रूपी नरपतियों का उल्लेख करता है जिन्हें स्कन्दगुप्त ने निर्विष किया, तीसरे में स्कन्दगुप्त द्वारा अपने पिता की मृत्युपरान्त चारों समुद्रों तक पृथ्वी जीत लेने का, तीसरे में म्लेच्छों के पराभव का, पांचवे में मनुजेन्द्र' अर्थात कुमारगुप्त के अन्य पुत्रों का परित्याग करके लक्ष्मी द्वारा स्कन्दगुप्त को अपना पति वरण किये जाने का छठा श्लोक मुख्यतः यह बताता है, कि जब स्कन्दगुप्त ने साम्राज्य पर अधिकार कर लिया और समस्त प्रदेशों में सुशासन की स्थापना की स्कन्दगुप्त ने सुदर्शन झील का निर्माण करवाकर जिससे उसकी प्रजा अत्यन्त सुखी और सम्पन्न थी।

## स्कन्दगुप्त का द्वितीय जूनागढ़ अभिलेख वर्ष 138 (= 457 ई.)

यह अभिलेख अब तक स्कन्दगुप्त के पूर्वगामी जूनागढ़ अभिलेख का द्वितीय भाग माना जाता है। यह सर्वथा पृथक और स्वतन्त्र अभिलेख है। यह स्कन्दगुप्त के प्रथम जूनागढ़ लेख के नीचे लिखा है। लेकिन विद्वानों का मानना है ये एक ही अभिलेख के दो भाग है लेकिन भाषा और लिपि की दृष्टि से यह स्कन्दगुप्त प्रथम के जूनागढ़ लो के सदृश है इसमें कुल छः पंक्तियां है और यह आद्यन्त पद्यात्मक है इसमें कुल आठ श्लोक है। लेकिन यह अभिलेख बहुत खण्डित अवस्था में मिला

---

*अगर हम शार्पेण्टियर का अनुसरण कर यह माने की पर्णदत्त और चक्रपालित पल्लव थे और उनके नाम पह्लव थे और उनके नाम पह्लव नाम फर्नदात और चकरपात का संस्कृत रूपान्तर है। जो भी हो स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ अभिलेख पांचवी शती ई. में सौराष्ट्र में वैष्णव मत के प्रसार का द्योतक है।*

है इसमें दी गई तिथि प्रथम जूनागढ़ लेख की तिथि के एक वर्ष बाद की गुप्त संवत् 138 है– और इसका उद्देश्य चक्रपालित के द्वारा जो प्रथम अभिलेख के अनुसार इसमें विष्णु मन्दिर बनवाये जाने का उल्लेख है।

# मूलपाठ

पं.2 द्विषतां दमाय।

तस्यात्मजेनात्मगुणान्वितेन

गोविन्द पादर्पित जीवितेन

गर्ध

पं.4 कारितमक्र मतिना चक्रभृतः चक्रपालितेन गृह (हम्)।

वर्षशते ष्टात्रिंशे गुप्ताना काल(क्रम–गाणिते)

(स) ार्थमुत्थितमिवोर्जयतो चलस्य

---

*अर्थात*

*पं.2 उसके पुत्रों(चक्रपालित) द्वारा जो उसके ( अर्थात पर्णदत्त के) अपने से युक्त है और जिसका जीवन (भगवान) गोविन्द के चरणों (की पूजा) के लिये अर्पित है।*

*उसके द्वारा जो अपने प्रभाव से पौरे जनों को मत कर देता है, वहां प्राप्त करके और (भगवान) विष्णु के चरणकमलों में प्रभूत धन व्यय करके और अल्पकाल में.... चक्र को धारण करने वाले शत्रुओं उसका (मन्दिर बनवाया गया) जो स्वयं अपनी इच्छा शक्ति से ( अवतार लेकर) मनुष्य बने...।*

*पं.4 (इस प्रकार ) सरल बुद्धि वाले चक्रपालित द्वारा (भगवान) चक्रभतृ(=विष्णु) का गृह (=मन्दिर) गुप्तों के काल में गणना करने पर एक सौ अड़तीसवें वर्ष में बनवाया गया।*

## अभिलेख का उद्देश्य एवं महत्व

इस अभिलेख से केवल यह ज्ञात होता है, कि चक्रपालित की सार्वजनिक निर्माण कार्य में रूचि केवल सुदर्शन झील के बांध के साथ समाप्त नहीं हो गई थी इसके बाद उन्होंने वैष्णव मन्दिर का निर्माण भी कराया था। गुप्तकाल में सौराष्ट्र में वैष्णव धर्म लोकप्रिय होता जा रहा था। पर्णदत्त द्वारा अपने पुत्र का नाम 'चक्रपालित' रखा जाना और चक्रपालित द्वारा चक्रभृत का मन्दिर बनवाया जाना एवं अपने को भगवान गोविन्द के चरणों में अर्पित जीवन वाला कहना यह सिद्ध करता है। कि ये दोनों पिता पुत्र वैष्णव धर्मावलम्बी थे।"[1]

## स्कन्दगुप्त कालीन कहाव पाषाण स्तम्भ लेख वर्ष 141(=460 ई.)

यह अभिलेख जिस पाषाण स्तम्भ पर उत्कीर्ण है वह उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले में सलमपुर मझौली परगने के मुख्य कस्बे सलमपुर मझौली से पांच मील दक्षिण पश्चिम की ओर स्थित कहांऊ या कहांव नामक गांव से मिला है यह अभिलेख 2''2 1/2 चौड़े और 1.8 ऊँचे क्षेत्रफल में लिखा है। इसकी सबसे निचली पंक्ति धरातल से लगभग साढ़े सात फुट ऊपर है लेख की भाषा संस्कृत है और लिपि उत्तरी वर्ग की ब्राह्मी जो समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति से सादृश्य रखती है।

# मूल पाठ

सिद्ध

1. यस्योपस्थान भूमिन् पति–शत–शिरः पात वातावधूता
2. गुप्तानां वन्शजस्य प्रणिसृत–यशसस्तस्य सर्वोतमर्द्धे
3. राज्य शक्रोपमस्य क्षितिप शत पते स्कन्दगुप्तस्य शान्ते
4. वर्षे लिन्शद्दशैकात्तरक शततमें ज्येष्ठ मासिक प्रयन्ने।।

---

*स्तम्भ में स्थित पांच मूर्तियां भी मिली है मूर्तियों और लेख से यह सिद्ध है कि यह जैन अभिलेख है ये पांच जैन तीर्थकर है–आदिनाथ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ तथा महावीर की मूर्तियां है।,*

*अर्थात*

*सिद्धि हो। जिनका सभाभवन सैकड़ों राजाओं के शिरों के समान (सम्मान प्रदर्शन की क्रिया में) गिरने (अर्थात झुकने) से उत्पन्न वायु से हिल उठता है;(जो) गुप्तों के वंश में उत्पन्न हुए है; जो दूर तक फैले हुए यश वाल ेळै है;( जो) सर्वोत्त्म समृद्धि वाले है; (जो) शक्र(=इन्द) के समान है( तथा ) सैकड़ों राजाओं के स्वामी है(उन) स्कन्दगुप्त के शान्तिपूर्ण शासन के एक सौ इकतालीसवें वर्ष में (अथ्रात गुप्त संवत् एक सौ इकतालीस में) ज्यैष्ठ मास आ जाने पर।*

---

1. गोयल, श्रीराम, गुप्तकालीन अभिलेख, पृ. 250–251

## अभिलेख का उद्देश्य एवं महत्व

यह अभिलेख अनेक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इससे गुप्त साम्राज्य के प्रशासन की सामन्तीय व्यवस्था का रूप स्पष्टतर होता है। इससे ज्ञात होता है कि स्कन्दगुप्त की सभी कठिनाईयां 460 ई. तक अवश्य ही दूर हो चुकी थी और उसके साम्राज्य में शान्ति स्थापित हो चुकी थी। स्कन्दगुप्त का सूपिया लेख भी, जो 460 ई. का ही है, किसी प्रकार की अशान्ति की ओर संकेत नहीं करता। यह अभिलेख जैन धर्म के विषय में कुछ महत्वपूर्ण सूचनाएं देता है।"[1]

## स्कन्दगुप्त का इन्दौर ताम्रपत्र अभिलेख वर्ष 146 (=465 ई.)

इस ताम्रपत्र अभिलेख का प्राप्ति स्थल उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जिले की अनूपशहर तहसील के डिबाई परगने का इन्दौर नामक गांव है जो अब एक छोटा सा खेड़ा है। इस स्थल की पहिचान इस ताम्रपत्र में ही उल्लिखित इन्द्रपुरद से की जा सकती है।

यह अभिलेख एक ही ताम्रपत्र पर लिखा है जो 8 1/2" लम्बा तथा सिरों पर 5 1/2 चौड़ा है बीच में इसकी चौड़ाई 5 7/8" है। इसका भार एक पाउण्ड दो औंस है। ताम्रपत्र के किनारे बीच के भाग की अपेक्षा स्थूलतर है। लेख में मुहर जोड़ने के लिये छेद नहीं है। इस ताम्रपत्र की सतह खराब हो गई है परन्तु आद्योपान्त पठ्य है। इस ताम्रपत्र में कुल बारह पंक्तियां है। इसकी भाषा संस्कृत है और यह गद्य पद्य मिश्रित है। लेख की लिपि उत्तरी वर्ग की पांचवी शती ई. के मध्य की ब्राह्मी है।

प्रस्तुत लेख में स्कन्दगुप्त के शासनकाल का वर्ष एक सौ छियालीस (अर्थात गुप्त संवत् 146) का फाल्गुन मास तिथि रूप में उल्लिखित है। यह एक सौर अभिलेख है। जिसका उद्देश्य देवविष्णु नामक ब्राह्मण द्वारा इन्द्रपुर (आधुनिक इन्दौर) के सूर्य मन्दिर को अक्षयनीवीदान दिये जाने का उल्लेख है।

---

1. उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, पृ. 51–52

# मूलपाठ

पं.6 "नस्य प्राच्यां दिशिन्द्रपुशधिष्ठान–माडस्यात–लग्नमेव प्रतिष्ठापितक

भगवते सवित्रे दीपोपयोज्यमात्म यशो

पं.8 भिवृद्वये मूल्यं प्रयच्छतिः इन्द्रपुर निवासिन्यास्तैलिक श्रेण्या जीवन

प्रवराया इतो धिष्ठानादपक्रम।

## अभिलेख का उद्देश्य एवं महत्व

यह एक महत्वपूर्ण अभिलेख है एक यह सौर सम्प्रदाय से सम्बनिधत अभिलेख है। इसका प्रथम श्लोक सूर्य की स्तुति में रचा गया एक सुन्दर श्लोक माना जाता है। इससे स्कन्दगुप्त के साम्राज्य की एक प्रादेशिक इकाई 'अन्दर्वेदी' तथा उसके अधिकारी शर्वनाग का ज्ञात होता है।

यह अभिलेख तैलिक श्रेणी से परिचित कराता है इस तैलिक श्रेणी का अध्यक्ष जीवन्त नामक व्यक्ति था। यह श्रेणी अपने पास मन्दिरों को मिले दान को जमा रखती थी और ब्याज देती थी। इसकी साख इतनी अधिक थी कि ब्राह्मण देवविष्णु ने यहां तक स्वीकार किया कि अगर यह श्रेणी अविभाजित रहे तो अक्षय नीवों का दान उसी के पास जमा रहे। आनुषंगिक रूप से इसमें श्रेणीयों के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश जाने सम्भावना मानी गयी है जिसका यथार्थ प्रमाण लाट देश से आकर दशपुर में बसने वाले रेशम बुनकरों की श्रेणी है जिसका विवरण मालव सवंत 529 के मन्दसौर लेख में मिलता है।[1]

---

*अर्थात*

*(भगवान) सूर्य (के मन्दिर) का यह ब्राह्मण दान (अर्थात सूर्य मन्दिर को ब्राह्मण द्वारा दिया गया यह दान) इन्द्रपुर में निवास करने वाली तथा जीवन्त के नेतृत्व में स्थित तैलिक श्रेणी की(तब तक) अविच्छिन्न स्म्पत्ति है जब यह अर्थात(तैलिक श्रेणी) यथा स्थिर(=एकतायुक्त) है–(यहां तक कि) इस स्थान से दूर जाने और लौटने पर भी किन्तु इस श्रेणी द्वारा अविच्छिन रूप से तथा मूल मूल्य में बिना किसी ह्रास के चन्द्र और सूर्य की स्थिति तक(अर्थात जब तक चन्द्र और सूर्य विद्यमान है तब तक) दो ूल के तौल का ( अथवा अंकों में)2 (पल) तौल तेल देय है।*

---

1. उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, पृ. 85–86

## प्रथम नरसिंहगुप्त का नालन्दा मोहर लेख

गुप्त सम्राटों की नालन्दा से लाल मिट्टी की पकी हुई हो राजकीय मुहर छापें प्राप्त हुई है वे, पुरूगुप्त के पो् द्वितीय कुमारगुप्त की एक मुहर को छोड़कर, सभी खण्डितावस्था में है। लेकिन इनके अवशिष्टाशों से स्पष्ट है कि ये सभी बनावट में द्वितीय कुमारगुप्त की मुहर के आधार पर इन सभी मुहरों की बनावट का अनुमान लगाया जा सकता है। द्वितीय कुमारगुप्त की मुहर का पुरोभाग अण्डाकार है। इसके ऊपरी भाग में ऊँची रिलीफ में मानव मुखी गरूड़ मूर्ति बनी है। गरूड़ के पंख फैले है, सिर पर 'विग'(कृत्रिम केश सज्जा) है, पर वैष्णव तिलक है तथा गले में नाग और सूर्य बना है तथा दाहिनी ओर अर्धचन्द्र है, उसके नीचे क्रमशः लध ुत्तर होती गई पंक्तियों में लेख लिखा है जतो गरूड़ मूर्ति से एक रेखा द्वारा पृथक किया गया है।

## मूलपाठ

1. (सर्व्वराजोच्छेत्तुः पृथि)(व्या) मप्रतिरथस्य महाराज

   श्री गुप्त–प्र(पौ) त्रस्य महाराज(श्री) घटोत्कच(पौ)

2. (त्त्रस्य महाराजधिरा) ज श्री चन्द्रगुप्त पुत्रस्य(लि)च्छवि

   दौहि(त्र) स्य(महादेव्यां)कुमारदेव्यामुत्पन्न

3. (स्य महाराजधिरा ज) श्री समुद्रगुप्तस्य पुत्रस्तत्प(रि)

   गृह(ी) महादेवरूान्तत्तदेव्यामुत्पन्न

4. (स्सवदाप्रतिरथ)(परम) भागवतो महाराजधिराज

   श्री चन्द्रगुप्तस्तस्य पुत्रस्तत्पादानु

5. (ध्यातो महादेव्यां)(ध्रुव) देव्यामुत्पन्नो महाराजधिराज

   श्री कुमारगुप्तस्यस्य पुत्रस्तत्पा

6. (दानुध्यातो म)(हादे) व्याममन्तदेव्यामुत्प(न्नः)

   महाराजाधिराज पुरूगुप्तस्तस्य पु–

7. (त्रस्तत्पादानुध्यातो) महादेव्यां श्री चन्द्रदेव्यामुत्पन्न

परमभाग

8. (वतो महाराजधिराज)ज श्र (ी) नरसिंहगुप्त

## मोहर अभिलेख का उद्देश्य एवं महत्व

गुप्त सम्राटों की भितरी तथा नालन्दा मुहरों में प्रथम कुमारगुप्त की महादेवी तक के नामों में सम्मानसूचक 'श्री' शब्द प्रयुक्त नहीं है। लेकिन पुरूगुप्त की महादेवी से लेकर आगे आने वाले सभी राजाओं की महादेवियों के नामों में पूर्व 'श्री' शब्द का प्रयोग है।

प्रस्तुत मुहर लेख स्कन्दगुप्त के उपरान्त शासन करने वाले राजाओं का प्रथम लेख है यह पुरूगुप्त को स्पष्टतः महाराजाधिराज घोषित करता है। गुप्तों की नालन्दा व भीतरी मुहरों में 'परमभागवत' उपाधि का प्रयोग एक तो द्वितीय चन्द्रगुप्त के लिये है। और दूसरे अन्तिम राजा अर्थात मुहर जारी करने वाले नरेश के लिये स्कन्दगुप्त वैष्णव धर्म को मानता था।"[1]

## बुधगुप्तकालीन एरण प्रस्तर स्तम्भ लेख गु.सं. 165(=484)

यह स्तम्भ अभिलेख मध्य प्रदेश के सागर जिले के एरण नामक स्थल से 1838 ई. में कैप्टन टी.एस. वर्ट को मिला था। यह एक लाल बलुहा एकाश्मीय स्तम्भ कि निचले चौकोर भाग पर उत्कीर्ण है। लेख का आकार 2'6 1/2'ग1''7 1/2 है।

---

*अर्थात*

*महाराज श्री गुप्त के प्रपौत्र, महाराज श्री घटोत्कच के पौत्र महाराजधिराज श्री (प्रथम) चन्द्रगुप्त के पुत्र लिच्छवि दौहित्र, महादेवी कुमारदेवी( के गर्भ ) से उत्पन्न महाराजधिराज श्री समुद्रगुप्त(हुए) जो समस्त राजाओं का उच्छेद करने वाले (तथा) पृथ्वी पर अप्रतिरथ(=विष्णु) (के समान विचरण करने वाले) थे उनके पुत्र द्वारा (अपने उत्तराधिकारी के रूप में) स्वीकृत, महादेवी, दत्तदेवी(के गर्भ) से उत्पन्न, साक्षात्, अप्रतिरथ (=विष्णु) (के समान)परमभागवत महाराजधिराज श्री(द्वितीय) चन्द्रगुप्त थे उनके पुत्र उनके चरणों का ध्यान करने वाले, महादेवी ध्रुवदेवी( के गर्भ) से उत्पन्न महाराजधिराज श्री(प्रथम) कुमारगुप्त थे उनके पुत्र उनके चरणों का ध्यान करने वाले महादेवी अनन्त देवी (के गर्भ) से उत्पन्न महाराजाधिराज श्री पुरूगुप्त( थे) उनके पुत्र, उनके चरणों का ध्यान करने वाले महादेवी श्री चन्द्रदेवी(के गर्भ) से उत्पन्न परमभागवत महाराजाधिराज श्री नरसिंहगुप्त है। (जिसकी यह मुहर है)।*

---

1. गोयल, श्रीराम, गुप्त कालीन अभिलेख, पृ. 272

और यह काफी अच्छी अवस्था में है। अक्षरों का आकार 1/2 से 3/4 तक है। इसकी भाषा संस्कृत है और लिपि पांचवी शती के उत्तरार्द्ध की उत्तर भारतीय ब्राह्मी है। लेख में कुल नौ पंक्तियां है।

इस लेख का उद्देश्य बुधगुप्त के शासन काल में महाराज मातृ विष्णु एवं उसके भाई धन्यविष्णु द्वारा भगवान जनार्दन (विष्णु) के सम्मान में ध्वजस्तम्भ की स्थापना का वर्णन करना है।

# मूल पाठ

पं.1 "जयति विभुश्चतुर्भजश्चतुरर्ण्णव विपुल–सलिल–पय्र्यकः

जगतः स्थित्युत्पति–न्य(यादि)

हेतुर्ग्गरूड–केतु

पं.8 तस्यैवानुजेन तदनुविधायिन तत्प्रसाद –परिग्र(ही)

तेन धन्यविष्णु च। मातृप्रित्वोः प्रणयाप्यायनार्थमेष भगवतः।

## अभिलेख का महत्व

यह एक महत्वपूर्ण अभिलेख है। इसमें गुप्त साम्राज्य में सामन्ती व्यवस्था के सबलतर होने का संकेत मिला है कि बुधगुप्त के काल में यमुना व नर्मदा के मध्य 'महाराज' सुरश्मिचन्द्र शासन कर रहा था। इस लेख में बताया गया है, कि मातृविष्णु के वंश का प्रथम सदस्य इन्द्रविष्णु यज्ञधर्म व शास्त्रों में रूचि रखने वाला ब्राह्मण था। उसका पुत्र वरूण विष्णु अपने पिता के गुणों के अनुरूप था। इस वंश की वृद्धि का कारण बना वरूणविष्णु और पुत्र हरिविष्णु। हरिविष्णु के पुत्र

---

*अर्थात*

*पं.1 चारों समुदों के विपुल जल की शय्या वाले, जगत की स्थिति (=पोषण), उत्पत्ति व प्रलय(=संहार) के कारण, गरूड़ के प्रतीक भगवान चतुर्भुज(=विष्णु) की जय हो।।1।।*

*पं.8 (उन मातृ विष्णु के द्वारा )तथा उनके ही अनुज, उनके प्रति आज्ञाकारी, उनके अनुग्रह से स्वीकृत धन्यवविष्णु द्वारा माता–पिता के पुण्यच की अभिवृद्धि के हेतु, दैत्यपीड़क भगवान जनार्दन(=विष्णु) का यह ध्वज स्तम्भ स्थापित किया गया।*

मातृविष्णु ने अपना यश चारों समुद्रों तक फैलाया, अनेक शत्रुओं पर विजय पायी तथा 'महाराज' उपाधि पायी। इस प्रकार इस अभिलेख में मूलतः यज्ञ धर्म व शास्त्रों में रूचि रखने वाले एक वंश के द्वारा राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने का वर्णन है।

## बुधगुप्त का नालन्दा मोहर लेख

बुधगुप्त की नालन्दा से केवल एक खण्डित मुहर प्राप्त हुई है। इसका केवल दाहिना अर्द्धांश मिला है। बनावट में यह प्रथम नरसिंहगुप्त व द्वितीय कुमारगुप्त की मुहरों के सदृश है उपलब्धांश में गरूड़ का मुख व दाहिने ओर का पंख अवशिष्ट है। गरूड़मूर्ति व लेख के बीच में दो रेखायें खिंची है। पृष्ठभाग पर डोर बांधने एवं कपड़े के निशान मिले है।

# मूलपाठ

1. (सव्वराजोच्छेतुः पृथिव्यामप्रतिरथस्य महाराज) श्रीगुप्तप्रपौत्रस्य महाराज श्री घटोत्कच

2. (चपौत्रस्य महाराजधिराज– श्रीचन्द्रगुप्त पुत्रस्य लिच्छवि)

   दौहिस्य महादेव्यां कुमारदेव्यामुत्पन्न

3. (स्य महाराजाधिराज श्री समुद्रगुप्तस्य पुत्रस्तपरि) गृहीतो महादेव्यां दत्त्देव्यामुत्पन्नः

4. (स्वचप्रतिरथःपरमभागवतो महाराजाधिराज श्री)चन्द्रगुप्तस्य पुत्रस्यत्पादुध्यातो

5. (महादेव्या ध्रुवदेव्यामुत्पन्नो महाराजधिराज) श्री कुमारगुप्तस्य पुत्रस्रत्पादा

---

*पालयति लोकपालगुणैः* — *लोक पालों को हिन्दु धर्म में दिशाओं का रक्षक और स्वामी माना गया है इनकी संख्या 8 बतायी गयी है। (पूर्व के इन्द्र, दक्षिण पूर्व के अग्नि, दक्षिण के यम, दक्षिण पश्चिम के सूर्य, पश्चिम के वरूण, उत्तर–पश्चिम के वायु उत्तर के कुबेर और उत्तर–पूर्व के ईशान या चन्द्र या पृथिवी।)कभी –कभी केवल चार लोकपाल माने गये है– इन्द्र,यम,वरूण, तथा कुबेर। भाण्डारकर के अनुसार इस लेख में 'लोकपाल' शब्द का प्रयोग 'राजा' अर्थ में हुआ है। 'राजतरंगिणी'1.344।*[1]

---

1. फ्लीट, जॉन फेथफुल, कार्पस इन्स्क्रीप्शनम वाल्यूम 3, पृ. 200

6. (नुध्यातो महादेव्यामनन्तदेव्यामुत्पन्नो म) हाराजधिराज श्री (पुरू) गुप्तस्य पुत्र

7. (सग्रन्पादानुध्यातो महादेव्या श्री) (महा) देव्यानुत्पन्न

8. (परमभागवतो महाराजधिराज–श्री) बुधगुप्तः

## लेख का महत्व

प्रस्तुत मुहर अभिलेख का महत्व बुधगुप्त के इतिहास की दृष्टि से है। बुधगुप्त गुप्त वंश का एक महत्वपूर्ण नरेश था। उसने कम से कम 476 ई. 495 ई. तक शासन किया परन्तु इस मुहर के मिलने के पूर्व उसके किसी अभिलेख से उसका साम्राज्यिक गुप्तवंश के साथ सम्बन्ध प्रमाणित नहीं था। फ्लीट के समय तक तो उसे मालवा का गुप्त शासक ही माना जाता था। प्रस्तुत अभिलेख उसे पुरूगुप्त का पुत्र सिद्ध करके इस कमी को पूरा करता है।"[1]

परन्तु और भी शासक इस काल 'गुप्त काल' में हुये है अनेक नाम है; परन्तु इनके काल में विष्णु की उपासना का वर्णन दिखाई नहीं पड़ता है।

---

*अर्थात*

*महाराज श्री गुप्त के प्रपौत्र, महाराज श्री घटोत्कच के पौत्र,महाराजधिराज श्री(प्रथम) चन्द्रगुप्त के पुत्र लिच्छवि–दौहित्र,महादेवी कुमारदेवी( के गर्भ) से उत्पन्न महाराजधिराज श्री समुद्रगुप्त(हुए) जो समस्त राजाओं का उच्छेद करने वाले( (तथा)पृथ्वी पर अप्रतिरथ (विष्णु) (के समान विचरण करने वाले) थे उनके पुत्र उनके द्वारा (अपने उत्तराधिकार के रूप में) स्वीकृत महादेवी दत्त्देवी(के गर्भ) से उत्पन्न, साक्षात अप्रतिरथ(=विष्णु)(के समान) परमभागवत महाराजधिराज श्री(द्वितीय) चन्द्रगुप्त( थे)। उनके पुत्र उनके चरणों का ध्यान करने वाले महादेवी ध्रुवदेवी(के गर्भ) से उत्पन्न महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्त( थे) उनके पुत्र उनके चरणों का ध्यान करने वाले महादेवी अनन्तदेवी(के गर्भ) से उत्पन्न महाराजाधिराज श्री पुरूगुप्त( थे!) उनके पुत्र उनके चरणों का ध्यान करने वाले महादेवी श्री महा(?) देवी (के गर्भ) से उत्पन्न परमभागवत महाराजधिराज श्री बुद्धगुप्त है(जिनकी यह मुहर है)।*

---

1. गोयल. श्रीराम, गुप्तकालीन अभिलेख, पृ. 305

## अध्याय – 5

# गुप्तकालीन वैष्णव प्रतिमायें एवं मंदिर

# अध्याय – 5

# गुप्तकालीन वैष्णव प्रतिमायें एवं मंदिर

मूर्तिकला की दृष्टि से गुप्त काल में पर्याप्त सृजन हुआ। मथुरा, सारनाथ और पाटलिपुत्र भारतीय उत्कृष्ट आकार मूलक अभिव्यक्ति के प्रमुख केन्द्र थे। गुप्त कला की उत्कृष्टता प्रारंभिक यज्ञ और वृक्ष पूजा के लोक प्रचलित मतों के बीच समन्वय की स्पष्टता में निहित है। बौद्ध और जैन धर्मो की अनीश्वरवादिता और ब्राह्मण पुनरुत्थान सभी भगवतवाद के उत्कर्ष और साहित्य के द्वारा संयोजित हुए। साहित्य की तरह कला में भी यह समन्चय स्पष्ट है।

"गुप्तकालीन कला संयत और नैतिक है। कुषाण कालीन मूर्तियों में शरीर के सौन्दर्य का जो रूप था उसके विपरीत गुप्त काल की मूर्तियों में नग्नता नहीं है। गुप्तकालीन मूर्तिकारों ने मोटे उत्तरीय वस्त्र का प्रदर्शन किया। सारनाथ केन्द्र की मूर्तियों पर गंधार कला का प्रभाव नहीं मिलता। यहां की मूर्तियों में सुसज्जित प्रभामण्डल बनाए गए, जबकि कुषाण कालीन मूर्तियों का प्रभामण्डल सदा था। मानव आकृति में बुद्ध प्रतिमाओं के समान महत्वपूर्ण हिन्दू देवी देवताओं को भी मूर्तियों में ढाला गया। वैष्णव धर्म के विकास के कारण वैष्णव मूर्तियों का निर्माण स्वाभाविक था। देवताओं को मानव आकार दिया गया। हालाँकि उनकी अनेक भुजायें बनाई जाती थी, उनमें उस देवता के गुण से संबंधित प्रतीक बना दिये जाते थे। गुप्तकाल की शिल्पकला का जन्म विशेषतः मथुरा शैली द्वारा स्थापित प्रतिमानों पर आधारित था। मुख्यतः विष्णु के अवतारों की प्रतिमाएँ बनाई गई।[1]

विष्णु की प्रसिद्ध प्रतिमा देवगढ़ के दशावतार मंदिर में है। इस 'अनंतशायी' मूर्ति में विष्णु को शेषनाग की शय्या पर दर्शाया गया है। वे कुंडल मुकुट, माला, कंकण, हार आदि से सुशोभित है। एक ओर शिव और इन्द्र आदि की प्रतिमाएं हैं। इनके समीप ही दो शस्त्रधारी पुरूष बने हैं। कार्तिकेय मयूर पर आसीन है तथा नाभि से निकले कमल के ऊपर चार मुख वाले ब्रह्मा विराजमान है। लक्ष्मी उनके चरण दबा रही है। काशी से प्राप्त गोवर्धन पर्वत को गेंद के समान उठाए हुए कृष्ण की मूर्ति भी काफी सुन्दर है।

"अवतारों में बराह की अनेक प्रतिमाएं बनाई गई उदयगिरि में प्राप्त मूर्ति में शरीर मनुष्य का था तथा मुख वराह का। यह मूर्ति गुप्तकालीन मूर्तिकारों की

---

1. झा, वी.डी. एवं के.एम., श्रीमाली, प्राचीन भारत का इतिहास पृ. 325, 326

प्रतिभा का स्मारक है। वराह के कन्धे के ऊपर भूमि देवी की आकृति है, पृथ्वी को प्रलय से बचाने के लिये वराह अपने दांतों पर पृथ्वी को उठाए है, जिसे नारी रूप में बनाया गया है। वराह का बॉया पैर शेषनाग के मस्तक पर है। तंरगित रेखाओं से समुद्र बनाया गया है। गंगा और यमुना दोनों नारी रूप में वराह भगवान् का अभिषेक करने के लिए जल कलश लिये हुए है। वराह के बाई और अप्सतराएं तथा दाई ओर ब्रह्मा, शिव आदि देवता और ऋृषि हैं। वराह की वास्तविक आकृति में निर्मित मूर्ति एरण से प्राप्त हुई है। जिसका निर्माण मातृविषणु के भाई धन्यविष्णु ने किया था।[1]

गुप्त मूर्तियों से ज्ञात होता है, कि विष्णु और उसके विभिन्न अवतारों की पूजा उस समय बहुत लोकप्रिय थी। मथुरा से प्राप्त विष्णु की मूर्ति गुप्त कला का श्रेष्ठ उदाहरण है। इसमें सन्तोष और शान्त आत्म चिन्तन दिखाई देता है। गढ़वाल और मथुरा की विष्णु की मूर्तियों में एक केन्द्रीय मानव आकृति के चारों ओर दीप्तिमान सिर दिखाए गए है। उदयगिरि की विशाल वराह मूर्ति (लगभग 400 ई.) को गुप्त मूर्तिकारों की और सशक्त परिष्कृति इसकी पृष्ठभूमि के छोटे आकार के दृश्यों के सम्मुख सुन्दर विषमता के रूप में प्रस्तुत होती है। दो पार्शिवक दृश्य भी असाधारण महत्व लिए हुए है। जिनमें गंगा यमुना के जन्म, प्रयाग में उनके संगम और सागर में उनके विलीन होने के दृश्य प्रस्तुत किये गये है। इनके चिन्ह थे गंगा औरयमुना देवियां जो अपने अपने वाहन मगर और कछुए पर खड़ी है।

"गुप्त कलाकारों ने विष्णु के विभिन्न अवतारों की कथाओं को कुशलतापूर्वक व्यक्त किया। देवगढ़ मन्दिर में राम और कृष्ण की काव्य कथाओं के दृश्यों को चित्रित किया है। कृष्ण से सम्बन्धित किंवदन्तियाँ भी दिखाई गई है। जैसे कृष्ण का गोकुल जाना, दूध की गाड़ी को ठोकर मारना, कंस के बालों को पकड़ना आदि। एक दृश्य में कृष्ण रूकमणी और सुदामा को इकट्ठे किया गया है। रामायण के कुछ दृश्य भी प्रस्तुत किये गये है।[2] जैसे राम, लक्ष्मण और सीता का वन प्रस्थान अगस्त्य ऋषि से उनकी भेंट, लक्षण द्वारा शूर्पणखा की नाक काटना आदि।

## गुप्तकाल में वैष्णव धर्म तथा मूर्ति कला

"वैष्णव या भागवत् सम्प्रदाय का केन्द्र भगवत या विष्णु पूजा है। वैदिक काल विष्णु एक गौण देवता के रूप में पूजे जाते थे। दूसरी शती ई. पू. के आस–पास

---

1. महाजन, वी.डी. गुप्तकालीन भारतीय, पृ. 543–545
2. गुप्त, परमेश्वरी लाल, गुप्त साम्राज्य, पृ. 106–107

नारायण, नामक एक अन्य देवता की कल्पना कर इन्हें नारायण विष्णु कहा जाने लगा। नारायण मूलतः एक कबायली देवता थे, इन्हें भागवत कहा जाता था। कालक्रम से वर्क्ति कुल के पौराणिक महापुरूष कृष्ण वासुदेव को विष्णु से अभिन्न मान लिया गया। इस प्रकार 200 ई. पू. तक विष्णु नारायण तथा वासुदेव मिलकर एक हो गये तथा वैष्णव सम्प्रदाय का उद्भव हुआ। गुप्तकाल में वैष्णव सम्प्रदाय अपनी चरम उन्नति पर पहुंच गया तथा इसमें अवतारवाद नामक नये तत्व का समावेश किया गया। यद्यपि विभिन्न ग्रन्थों में अवतारों की संख्या अलग–अलग बतायी गयी पर सर्वमान्य दश अवतार रहे, मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि। इसमें नौ अवतार हो चुके है। कल्कि अभिशेष है। गुप्त काल में इन दश अवतारों में वराह, नृसिंह तथा वामन को ही अधि

ाक महत्ता मिली।

"इस युग में ही ब्राह्माण और बौद्ध धर्म का नई दिशा में विस्तार हुआ। नवीन सिद्धांतों एवं धार्मिक क्रियाओं का समावेश हुआ। इन धर्मो के नए रूप समाज के सामने आने लगे जैन धर्म भी इस प्रगति से अप्रभावित न रह सका, यद्यपि इसमें परिवर्तन की गति धीमी रही।"[1]

धार्मिक विचारों के विकास का एक प्रबल कारण तांत्रिक पूजा और उपासना का वेग है जिसने बौद्ध धर्म के मूल रूप को ही बदल दिया। इन तांत्रिक विचारों ने ब्राह्मण धर्म के विभिन्न संप्रदायों में भी प्रवेश किया और उनके आधारभूत विचारों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। विभिन्न धार्मिक संप्रदाओं ने एक–दूसरे को प्रभावित किया। वैष्णव और शैव धर्म की तरह बौद्ध और जैन धर्मों में ईश्वरवादी प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं। बुद्ध और जिन देवता माने जाने लगे और उनकी मूर्तियों की पूजा मंदिरों में भक्तिमय गीतों से हाने लगी। बुद्ध और जिन को विष्णु का अवतार माना जाने लगा। समन्वयवादी प्रवृति का उदाहरण हरिहर तथा बुद्धशिव की मूर्तियां हैं।

## वैष्णव मत

गुप्तकाल में वैष्णव धर्म पूर्ण रूप से विकसित हो चुका था और विष्णु के अवतारों का सिद्धान्त स्थापित हो चुका था। विष्णु के अनेक अवतारों की मूर्तियाँ उत्कीर्ण की जाती थी, जैसे वराह और अनंतशायी की। अवतारवाद के विकास एवं प्रचार में पुराणों का प्रमुख योगदान है। अवतारवाद जनसाधारण में पुनरूत्थान

---

1. गुप्त, परमेश्वरी लाल, गुप्त साम्राज्य, पृ. 108–109

आशा एवं महत्वकांक्षा का प्रतीक है। बारहवीं शताब्दी में भक्ति आन्दोलन ने जो जोर पकड़ा उसकी पृष्ठभूमि में जनसाधारण की यही आशा की। अवतारों में वराह, कृष्ण और राम अधिक लोकप्रिय थे। आदि वराह की मूर्तियों बादामी की गुफाओं, महाबलिपुरम, मध्यप्रदेश, गुजरात, राजस्थान, बंगाल, उड़ीसा तथा उत्तर प्रदेश में मिली है। प्रतिहार नरेश भोज ने आदि वराह की उपाधि धारण की थी। और इसी शैली के सिक्के भी जारी किये थे। अभिलेखों तथा स्माराकों से विदित होता है कि गुप्तोत्तर काल में वैष्णव धर्म भारतवर्ष में प्रचलित था, और अनेक राजवंश इसके अनुयायी थे, जैसे कश्मीर के दुर्लभवर्धन, ललितादित्य, बंगाल के नरेश, प्रतिहार नरेश देशक्ति और अपनेक गुहिल, चंदेल व चौहान नरेश। किन्तु वैष्णव धर्म का गढ़ दक्षिण में तमिल प्रदेश में था। यहाँ वैष्णव मत के आदि प्रवर्तक अलवार संत थे। 9 वीं और 10 वीं शताब्दी के अंतिम चरण में धार्मिक पुनरूत्थान का उत्कर्ष काल है। इस भक्ति आन्दोलन में तिरूमंगाई, पेरिय अलवार, स्त्री अंदाल तथा नाम्मालवार के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अलवार भक्ति आंदोलनों की प्रमुख विशेषता है, कि यह आंदोलन मूलतः भावनात्मक है, दार्शनिक नहीं। उनकी दृष्टि में भक्ति, प्रेम तथा शरणगति से मोक्ष की प्राप्ति संभव है। वे एकेश्वरवादी थे और विष्णु की ही पूजा करते थे। विष्णु परमदेव विश्वात्मा, सर्वज्ञानमये, अनंत, अभेय है, असीम ब्रह्या होते हुए भी प्राणियों के अनुग्रह के लिए वह पृथ्वी पर अवतार लेता है, और मूर्ति के रूप में सीमित रहता है। अवतारों में कृष्ण का अवतार लोकप्रिय है। विष्णु के अर्चनाकारों की पूजा से बैकुंठ में ईश्वर की सेवा का अवसर मिलता है। प्रपत्ति द्वारा ईश्वर से ऐक्य ऊँच और नीच सभी को प्राप्त हो सकता है। इसमें ज्ञान, सामाजिक स्तर तथा ब्रत के बंधन नहीं है। अलवार संतों में कुछ शूद्र थे, जैसे तिरूमंगाई वेल्लाल जाति का था।

## सूर्य पूजा

"भारत में सूर्य पूजा बहुत प्राचीन काल से प्रचलित रही है, किन्तु बृहत् संहिता, भविष्य पुराण, अभिलेखों, अनेक सूर्य प्रतिमाओं और मंदिरों से पता चलता है कि सूर्य इस युग में अधिक लोक प्रसिद्ध था। आदित्य सेन और जीवितगुप्त के शाहपुर और देववर्नाक अभिलेख मे सूर्य पूजा का उल्लेख है। वल्लभी नरेश शीलादित्य प्रथम (609) ई ने सूर्य मंदिर के लिये भूमि दान दी। हर्ष ने प्रयाग की सभा में बुद्ध, शिव और सूर्य की पूजा की। हर्ष के पूर्वज प्रभाकर वर्धन और आदित्य वर्धन सूर्य के उपासक थे।

कुछ प्रतिहार नरेश परम आदित्य भक्ति थे। पालों के समय में बंगाल में सूर्य की अनेक मूर्तियां मिली है। जिससे यह अनुमान स्वाभाविक है, कि सूर्यपूजा लोकप्रसिद्ध थी। बंग्राल के सेन शासक विश्वरूप सेन तथा केशव सेन सूर्योपासक होने के कारण 'परमसोर' पदवी से विभूषित किए गए । ललितादित्य, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है। सूर्योपासक था। उसने कश्मीर में सूर्य का प्रसिद्ध मार्तदण्ड मंदिर बनवाया। इसके वर्तमान ध्वंसावशेष उसकी भव्यता का आभास देते है।

सूर्य पूजा का प्रसिद्ध केन्द्र मुल्तान में था। मुल्तान के सूर्य मंदिर का उल्लेख ह्यूनत्सांग, आवूजइद, अलमसूदी तथा अलबीरूनी ने किया है। अलबीरूनी के विवरण से पता चलता है, कि यह बहुत प्राचीन तथा विशाल मंदिर था। सूर्य के उपलक्ष में शाम्बपुर, यात्रोत्सव माना जाता था। बंगाल में पाल शैली में सूर्य की काले पत्थर की मूर्तिया बनती रहीं, जिनमें से सूर्य को पद्मासन पर बैठे हुए, दोनों हाथों में कमल लिए हुए, सात घोड़ों वाले सारथी युक्त रथ में सवार और उषा तथा संध्या के साथ दिखाया गया है। पाल तथा सेन युग की अनगिनत प्रतिमाएं मिली है।"[1]

## गुप्त काल में सूर्योपासना

"गुप्तकाल में सूर्योपासना का अधिक प्रचलन था। कुमारगुप्त के मन्दसौर शिलालेख में भगवान सूर्य की उपासना बड़े ही भावोत्पादक शब्द में की गई है। इसी अभिलेख में दशपुर में तन्तुकारों की श्रेणी द्वारा मन्दिर के पुनः निर्माण का भी उल्लेख मिलता है। वैशाली तथा भीटा से प्राप्त मुद्राओं पर 'भगवती आदित्याय' शब्द उत्कीर्ण है। गुप्त काल में निर्मित अश्व वाले रथ पर आरूढ़ सूर्य देवता की प्रतिमा अजमेर संग्रहालय में आज भी देखी जा सकती है। राजग्रह में नागदेवता के मन्दिर का निर्माण कराया गया था। नागपूजा का प्रचार समाज के निम्न वर्ग में प्रचलित था। यज्ञ तथा दक्षिणी की अनेक मूर्तिया मिली। इससे स्पष्ट होता है, कि यक्ष पूजा का भी प्रचार था, गणेश पूजा का भी प्रचलन था।

वैष्णव और शैव धर्म के प्रसार होने के साथ–साथ गुप्त युग में बौद्ध धर्म को भी समुन्नति का अवसर प्राप्त हुआ, यद्यपि बौद्ध धर्म उस समय राजधर्म न रहा, परन्तु गुप्त सम्राटों की धार्मिक सहिष्णुता की नीति ने इसे बढ़ने का पर्याप्त अवसर प्रदान किया था। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय में भारत भ्रमण करने वाले चीनी यात्री फाह्यान ने इस धर्म के प्रचलन पर प्रकाश डाला है। फाह्यान ने वर्तमान, उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्य भारत में बौद्ध धर्म को विकसित रूप में पाया था।"[2]

---

1. श्रीवास्तव एम.पी. प्राचीन अद्‌भुत भारत की झलक, पृ. 79–85
2. श्रीवास्तव एम.पी. प्राचीन अद्‌भुत भारत की झलक, पृ. 111–115

गुप्त युग में बौद्ध धर्म का एक प्रधान केन्द्र आन्ध्र प्रदेश भी था। वहाँ नागार्जुनी, कोण्डा नामक एक अतिसमृद्ध बिहार था बौद्ध सम्प्रदाय महायान, पर्याप्त लोकप्रिय रहा है इस समय में बौद्ध धर्म पर भक्तिवाद का प्रभाव पड़ा।

गुप्त युग में भगवान बुद्ध की जितनी मूर्तियां बनी उतनी सम्भवतः किसी काल में निर्मित नहीं हुई है। इसी भांति अनेक स्तूपों, चैत्यों तथा विहारों का निर्माण भी गुप्तकाल में हुआ। बोधिसत्य कीद पूजा का भी प्रचार हुआ 'अवलोकितेश्वर' की अनेक मूर्तियां बनाई गई। बौद्ध धर्म के अनेक ग्रन्थों की रचना इसी युग में हुई 'दिव्यावदान' और 'जानकमूल' नामक ग्रन्थों की रचना गुंप्त काल में हुई 'विशुद्धिमग' 'अभिधन्मकोश', 'प्रमाण समुच्च्य' तथा 'न्याय प्रवेश' नामक ग्रन्थ इसी काल में लिखे गये।

गुप्त काल में जैन धर्म को भी पर्याप्त मान्यता मिली इस युग में बल्लभी की प्रसिद्ध जैन सभा का आयोजन किया गया था। जैन धर्म भी गुप्त काल में भक्तिवाद से प्रभावित हुआ उसमें भी जैन तीर्थकारों की मूर्तियों की पूजा, अर्चना, स्तुति, आराधना आदि होती थी। जैन लोग भी तीर्थ यात्रा में दान पुण्य किया करते थे। गुप्तकाल में संस्कृत अत्याधिक लोकप्रिय और प्रगतिशील बन गई थी।

गुप्तकाल की धार्मिक अवस्था की एक उल्लेखनीय विशेषता उस काल में प्रचलित ग्रन्थ तथा गुरू पूजा है। गुप्तकालीन समाज में लोग भूत प्रेतों में विश्वास रखते थे। मानसार मेकं मनुष्यों में प्रचलित भूत, प्रेत, पिशाच, ब्रह्माराक्षस तथा बेताल आदि का विश्वास मिलता है।

गुप्तकाल में प्रचलित तथा मान्यता प्राप्त विविध धार्मिक विचारों ने एक अद्भुत धार्मिक वातावरण का निर्माण किया, उस काल की धार्मिक विविधता में एक रहस्यात्मक धार्मिक एकता सक्रियता तथा सहिष्णुता के दर्शन होते हैं। विपुल दान–दक्षिण का प्रचलन, व्रतों, स्नानों, उत्सवों, उपवासों, धार्मिक तीर्थ यात्राओं, रथयात्राओं आदि का आयोजन तत्कालीन धार्मिक सक्रियता के ही प्रभाव है। परोपकारिता, अहिंसा, कल्याण तथा हित को सर्वमान्यता प्राप्त थी। गुप्तकालीन धार्मिक सहिष्णुता तो आज के भारत के लिये भी अनुकरणीय है। गुप्तकाल सब धर्मो के पनपने का युग था इस युग में साम्प्रदायिक मतभेद नहीं था। हिन्दू मन्दिरों के पास बौद्धों का महाविहार वर्तमान था, और भगवान बुद्ध की प्रतिमा के पास जैन मूर्तियां थी।

## गुप्तकाल में वैष्णव मूर्तियाँ (प्रतिमायें) एवम् 'वास्तु कला'

"गुप्तकालीन मंदिरों में तकनीकी व निर्माण संबंधी अनेक विशेषताएं है इन मंदिरों का प्रारम्भ गर्भग्रह के साथ हुआ, जिसमें देव मूर्ति की स्थापना की जाती थी, यहां तक पहुंचने के लिये दालान होता था, जिसमें एक सभा भवन से होकर प्रवेश किया जाता था।, सभा भवन का द्वार ड्योड़ी में निकलता था। इस भवन के चारों ओर एक प्राचीरयुक्त प्रांगण होता था जिसके बाद में ओर अनेक पूजास्थलों की स्थापना होने लगी। इस काल में मन्दिरों की छतें अधिकांशतः सपाट होती थी, किन्तु शिखरयुक्त मन्दिरों का निर्माण भी प्रारम्भ हो चुका था। मंदसौर के लेख (472 ई.) के अनुसार दशपुर के मंदिर में अनेक आकर्षक शिखर थे। मन्दिर का निर्माण चबूतरे के ऊपर किया जाता था। और ऊपर जाने के लिये चारों ओर सीढ़ियां बनायी जाती थी। मन्दिरों के द्वार और स्तम्भ अलंकृत और सुसज्जित होते थे, परन्तु मंदिरों का भीतरी भाग सादा होता था, द्वारपाल के स्थान पर गंगा यमुना की प्रतिमाएं बनी होतीं थीं। चौखट पर शंख व पद्म भी बनाये जाते थे। इसका उल्लेख मेघदूत में मिलता है। मंदिर के प्रवेश द्वार को शुभ आकृतियों द्वारा अलंकृत करने का उल्लेख वाराहमिहिर ने भी किया है।"[1]

## अलंकृत विष्णु प्रतिमा

विष्णु सामान्यतः खड़े, शंख, चक्र, गदा और पद्मधारी चतुर्भुज, मुकुट , अधोवस्त्र और उत्तरीय धारण किये अंकित किये जाते हैं। अपने चारों आयुधों के चारों हाथों में विभिन्न क्रम से धारण करने के कारण उनकी मूर्तियाँ विभिन्न नामों से पुकारी जाती है।

"अष्टभुजी विष्णु का उल्लेख विष्णु धर्मोत्तर पुराण, वृहत्संहिता, ब्रह्मापुराण और हरिवंश में मिलता है, इस रूप की कुछ खण्डित मूर्तियां मथुरा क्षेत्र से प्राप्त हुई है, जो कदाचित् गुप्तकालीन है। विष्णु मूर्तियों की अपेक्षा उनके वराह, नरहिं और वामन अवतारों की मूर्तियाँ गुप्तकाल में अधिक प्राप्त होती है। उनके वामन अवतार की कुछ मूर्तियाँ त्रिविक्रम रूप की मिलती है। वराह का मूर्तन दो रूपों में मिलता है। एक रूप में मानव शरीर के साथ वराह मुख का अंकन है इस प्रकार की मूर्ति को भू वराह अथवा आदि वराह कहते हैं। इस प्रकार की एक मूर्ति गुप्तकालीन एरण से प्राप्त हुई है। मथुरा से गुप्तकालीन कुछ ऐसी मूर्तियाँ उपलब्ध

---

1. उपाध्याय भगवतशरण, गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 191–195

हुई है जो त्रिमुख है, इनमें बीच का मुख मानव मुख है। इसे नृसिंह, वराह विष्णु की संज्ञा दी गयी है और पुराणों में इसका उल्लेख महाविष्णु अथवा विश्वरूप विष्णु के नाम से हुआ है। कुछ मूर्तियों में इन मुखों के अतिरिक्त मूर्ति के प्रभामण्डल में 8 वसु 11 रूद्र और 12 आदित्यों आदि का अंकन मिलता है। इस प्रकार की एक मूर्ति गढ़वा (जिला इलाहाबाद) से प्राप्त हुई है। जिसमें आयुध धारी विष्णु के कन्धों और सिर के पीछे से आकृतियाँ उद्‌भुत होती अंकित की गई है। इन आकृतियों की पहचान संकर्षण, अनिरूद्ध और प्रद्युम्म के रूप में करके अनुमान किया ाजता है। कि वह विष्णु के चतुर्व्यह रूप का प्रतीक है।

विष्णु की इन सभी प्रकार की मूर्तियों में से अनेक में गदा और चक्र का अंकन मानुषी रूप (आयुध पुरूष) में हुआ है। यद्यपि इसका आरम्भ कुषाण काल में हो गया था, तथापि यह गुप्त काल का ही निजस्व है (अधिक सम्भावना है, कि कुषाणकाल की कही जाने वाली ये मूर्तियां आरम्भिक गुप्तकाल की होगी।)"[1]

इसी प्रकार विष्णु के वाहन गरूड़ का भी मानुषी रूप में स्वतन्त्र मूर्तन मिलता है। एरण के मातृ विष्णु, धन्य विष्णु वाले ध्वज स्तम्भ के शीर्ष के रूप में गरूड़ का मानवी रूप में अंकन हुआ है। वहां वे दोनों ही हाथों से सांप पकड़े हुए है। उनके सिर के पीछे चक्राकार प्रभामण्डल है।

गुप्तकाल में कृष्ण का अंकन विष्णु से स्वतन्त्र हुआ है और उनका यह अंकन प्रायः गोर्वधनधारी के रूप में हुआ है। गोवर्धनधारी कृष्ण की एक विशाल गुप्तकालीन मूर्ति काशी के भारत कला भवन में है।

गुप्तकाल धार्मिक सहिष्णुता का काल था। अतएव इस काल में ब्राह्मण बौद्ध तथा जैन तीनों सम्प्रदाय से संबंधित प्रतिमाएं बनायी गयी। पर प्रधानता ब्राह्मण प्रतिमाओं को ही रही। ब्राह्ममण धर्म से सम्बन्धित इस काल में विष्णु, शिव, लक्ष्मी, पार्वती आदि अनेक देवी देवताओं की मूर्तियां बनायी गयी, पर इसमें भी वैष्णव मूर्तियों की प्रधानता रही। गुप्तकाल में विष्णु से सम्बन्धित विभिन्न पौराणिक आख्यानों की लोकप्रियता के कारण विष्णु के विभिन्न अवतारों से सम्बन्धित मूर्तियों का निर्माण किया गया। मत्स्य, कच्छप, कूर्म, वराह, नृसिंह, परशुराम, वामन, राम कृष्ण आदि की मूर्तियाँ मिलती है। देवगढ़ में अनन्तशायी विष्णु, गजेन्द्र मोक्ष तथा राम कृष्ण की विविध लीलाओं से सम्बन्ध मूतियां अत्यन्त आकर्षक है।

---

1. गुप्त, पी.एल., गुप्त साम्राज्य, पृ. 566–568

गुप्तकाल में वैष्णव धर्म अपने चरमोत्कर्ष पर था। अभिलेखों में मूर्ति निर्माण के उल्लेख मिलते है। जूनागढ़ के लेख के अनुसार चक्रपालित ने एक विष्णु मंदिर का निर्माण किया, उसमें विष्णु की एक मूर्ति की स्थापना की गयी।

अधिकतर विष्णु की चतुर्भुजी मूर्तियाँ बनायी गई।इनमें उनके सिर के ऊपर मुकुट, गले में हार तथा केयूर तथा कानों में कुंडल प्रदर्शित किया गया है।

## वैष्णव प्रतिमाएँ

"वैष्णव प्रतिमाओं में भगवान् के प्रतीक शालिग्राम (नर्वदेश्वर) विष्णु के प्रतीक के रूप में पूजे जाते हैं। आज भी यत्र तंत्र मंदिरों में स्थापित मुख विष्णु प्रतिमा के साथ शालिग्राम भी अपना स्थान रखते है। प्रतीक के अतिरिक्त भगवान् विष्णु की प्रतिमा मिश्रित आकार अथवा मनुष्य के रूप में तैयार होने लगी। वैष्णव ग्रन्थों में वैखानसागम, पाँचरात्र संहित एवं पुराण आदि में भगवान् विष्णु के दो स्वरूपों व्यूह तथा विभव (अवतार) का वर्णन मिलता है। मंदिरों में प्रतिष्ठित विष्णु प्रतिमा को 'ध्रुवबेर' का नाम देते हैं। यानि अचल या स्थायी मूर्ति।

### 1. योग प्रतिमा'

जिस विष्णु की योगी पूजा करते है।

### 2. भोग प्रतिमा

साधारण जनता वैभव तथा धन की इच्छा से जिसे पूजा करें, यह भोग प्रतिमा कहलाती है।

### 3. वीर प्रतिमा

वह विष्णुप्रतिमा जिसे योद्धा अधिक शक्ति लाभ के लिए पूजा करते है।

### 4. अभिचारिक प्रतिमा–

ईर्ष्यावश यदि एक व्यक्ति अपने शत्रु के नाश के लिये जिस प्रतिमा की पूजा करें, वह अभिचारिक विष्णु प्रतिमा कही जायेगी।

इन चार प्रकार की प्रतिमाओं में कोई मूलक विभेद नहीं पाया जाता, किन्तु इस देवता के भुजाओं में स्थित आयुध के स्थान विभेद के कारण उपयुक्त नाम दिये जाते है। योग की स्थिति में विष्णु प्रतिमा के पिछले दो हाथों में शंख चक्र रहता

है सामने की बांयी भुजा कठयावलम्बित स्थिति में तथा दाहिना हाथ वदर मुद्रा में रहता है। भोग प्रतिमा में पिछली दो भुजाओं में शंख तथा चक्र और आगे की भुजाएँ वरद एवं अभव मुद्रा में दिखलायी पड़ती हैं। विष्णु की भार्या श्रीदेवी तथा भूदेवी दोनों तरफ खुदी हुई है।"[1]

वीर प्रतिमा के भुजाओं में शंख चक्र स्थित है, तथा उस विष्णु प्रतिमा के चारों तरफ अनेक देवता ब्रह्मा, शिव, सूर्य, चन्द्र आदि तथा लक्ष्मी और भूदेवी चित्रित है। अभिचारिक प्रतिमा का रंग काला है तथा चारों भुजाओं में आयुध वर्तमान है । इन चारों प्रकारों में विष्णु की स्थानक (खड़ी) आसन (बैठी) तथा शयन मूर्तियां निर्मित की जाती थी।

## पशु आकार

मछली, कच्छप तथा वराह के स्वरूप में मूर्तियां मिलती है। इस प्रकार की खजुराहों मूर्ति और एरण वाली (तोरमाण की) वराह प्रतिमा इसके ज्वलन्त उदाहरण है। मध्ययुगीन प्रतिमा के केन्द्र में मनुष्यकार विष्णु की प्रतिमा तथाउस मूर्ति को प्रभावशाली पर विभिन्न अवतारों का स्वरूप दिखलाई पड़ता है, उस में मछली तथा कच्छप का भी आकार खुदा हुआ है। यानि कलाकारों ने सर्वप्रथम तीन अवतारों के वास्तविक पशु आकार को भी कला में स्थान दिया है।

## मिश्रित आकार

"दूसरी श्रेणी की मिश्रित प्रतिमा को भी कलाविदों ने कला में स्थान देना उचित समझा नरसिंह की प्रतिमा तो स्थायी मिश्रित आकार की है शरीर मनुष्य का तथा सिर सिंह का किन्तु गुप्तकाल में जब वैष्णव मत का प्रचार बढ़ने लगा तथा दशावतार की कल्पना ने समाज में आदर पा लिया तो कलाकारों ने मत्स्य तथा कछुए की मूर्तियों में निचला भाग जानवर (मछली, कछुआ) का बनाया और जंधे से ऊपर मनुष्य का आकार तैयार किया। वराहावतार में सिर वराह तथा शरीर मनुष्य का निर्मित है। यही विष्णु का मिश्रित रूप है।"[2]

## मनुष्याकार प्रतिमा

जिस काल में समाज में मिश्रित प्रतिमा से उपासकों को संतोष न हुआ,

---

1. पाण्डेय, आर.एन. प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, पृ. 642–647
2. राय, उदय नारायण, गुप्त साम्राज्य और उनका काल पृ. 412–413

कलाविदों ने मनुष्य के आकार में भगवान विष्णु की प्रतिमा तैयार की। गुप्तकाल में विष्णु प्रतिमा का पूजन करते समय एक धारणा बन गई, कि मनुष्य रूप से (एक सिर दो हाथ) असुरों का नाश नहीं हो सकता। भगवान की असीमित शक्ति को मनुष्य के रूप में प्रदर्शित नहीं किया जा सकता। अतः विष्णु को बहुमुखी तथा बहुभुजी प्रतिमाएँ तैयार की गई। पांचरात्र मत के विकास होते समय विष्णु प्रतिमा का विस्तृत प्रदर्शन होने लगा। उस अलौकिक रूप में भगवान् विश्व का संरक्षण कर सके।

वृहत्संहिता में दो, चार तथा अष्टभुजी विष्णु प्रतिमा का वर्णन मिलता है चतुर्भुजी प्रतिमा ही प्रधानतः भारत में मिलती है, और चारों हाथों में चार आयुध शंख, चक्र, गदा तथा पद्य दृष्टिगोचर होते है। इन आयुधों का भुजाओं में विभिन्न प्रकार से स्थित होने के कारण ही चौबीस व्यूहों की कल्पना गुप्त युग में की गई थी। ईसवी सन् पूर्व में प्रचलित चार नाम वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरूद्ध के साथ बीस नये नामों को जोड़कर चौबीस व्यूह का नामकरण हुआ। केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, मधुसूदन, त्रिविक्रम, ऋषिकेश, दामोदर, पुरूषोत्तम, अच्युत, हरि आदि। विष्णु की चतुर्भुजी प्रस्तर तथा धातु प्रतिमाए समस्त भारत में प्राप्त हुई है। बादामी तथा कॉची से अष्टभुजी विष्णु प्रतिमा उपलब्ध हुई है। उन हाथों में चक्र, सर, गदा, खड्ग, शंख, खेटक, धनु आयुधों को छोड़कर एक हाथ कठिहस्त मुद्रा में दिखलाई पड़ता है। मथुरा से भी ऐसी अष्टभुजों प्रतिमा प्रकाश में आई है। एक खड़ी गुप्तकालीन प्रतिमा उपलब्ध हुई है। जैसे नृसिंह, वराह आदि। सम्मुख विष्णु प्रतिमा के बायीं ओर वराह तथा दाहिनी ओर सिंह का सिर दिखलाई पड़ता है। ऐसी प्रतिमा को विश्वरूप विष्णु भी कहा गया है। चार मुख की आकृतियों में केन्द्र में मनुष्य, दूसरा सिंह, तीसरा वराह तथा चौथा अदृश्य है। क्रमशः इन आकृतियों से वासुदेव, संकषर्ण, प्रद्युम्न तथा अनिरूद्ध का बोध होता है। क्रमशः ये ज्ञान, बल, ऐश्वर्य तथा शक्ति के द्योतक है इस प्रकार मानव आकार की प्रतिमा तैयार हो जाने पर सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल कलाकारों ने विष्णु की बहुभुजी तथा बहुमुखी प्रतिमा तैयार की।

समस्त विष्णु प्रतिमाओं के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है, कि तीन ही दशा में–

1. आसन
2. स्थानक
3. शयन प्रतिमाएं भारत में तैयार हुई है।[1]

---

1. भंडारकर, आर.जी., विष्णु शैव और अन्य धर्म, पृ. 309–311

## आसन रथ (बैठी हुई) विष्णु प्रतिमा

भगवान् विष्णु का एकांकी आसन (बैठी) मूर्ति अत्यन्त अल्य संख्या में मिलती है। बादामी से योगासन विष्णु की प्रतिमा प्राप्त हुई है कॉची तथा एलौरा से भी वैसी ही योगासन में विष्णु की चतुर्भुजी प्रतिमा उपलब्ध हुई है। सिर पर किरीट मुकुट तथा शरीर पर यज्ञोपवतीत दृष्टिगोचर होता है। कमल के आसन पर योग मुद्रा में बैठी विष्णु की प्रतिमाएँ मथुरा तथा खजुराहों से भी प्राप्त हुई हैं। मथुरा की विशेषता यह है कि चतुर्भुजी प्रतिमा के दो हाथ ध्यान मुद्रा में दिखलाए गए है। पिछले दो हाथों में चक्र तथा गदा है। अन्य दो आयुध कमल तथा शंख क्रमशः प्रभामण्डल तथा चौकी के( पीठ) पर खुदे है।

खजुराहों प्रतिमा में तो बाएं हाथ की तर्जनी मूर्ति के मुख के समीप खुदी हुई है। सम्भवतः मूर्ति की अंगुली लोगों का ध्यान शक्ति की ओर आकर्षित करती है। उसके बाई ओर एक हाथ में चक्र है। प्रस्तर मूर्ति के अतिरिक्त धातुप्रतिभा भी प्रकार में आई है। कमल आसन पर बैठी एक कांस्य (धातु) विष्णु प्रतिमा भी कलकत्ता के संग्रहालय में सुरक्षित है। चारों भुजाओं में शंख, चक्र, गदा और पद्य स्थित है। सुखासन शैली में बैठी इस मूर्ति की 'श्रीधर' का नाम दिया गया है।

1. आदिशेष तथा शेषनाग के गेंडुरी पर बैठी विष्णु की प्रतिमा दक्षिण भारत से प्रकाश में आई है, जिसे वीरासनमूर्ति कहते है।

2. बृहत्तर भारत (जावा) से गरूड़ स्कन्ध पर बैठी विष्णु प्रतिमा का पता चला है जो चतुर्भुजी है, भारत में इस प्रकार की मूर्ति का अभाव है।

3. बैठी युज्ञम प्रतिमा 'लक्ष्मी नारायण' के नाम से प्रसिद्ध है। जिसमें विष्णु के जाँधों पर लक्ष्मी आसीन है। गुप्तकाल में इस तरह की प्रतिमा अधिक संख्या में निर्मित हुई है।

## स्थानक (खड़ी) विष्णु प्रतिमा

विष्णु की आसन प्रतिमा पूजा के निमित्त अधिक संख्या में उपलब्ध हुई है। उत्तरी भारत में गुप्तकाल से मध्य युग तक सफेद तथा काले प्रस्तर की खड़ी प्रतिमाएं मिलती है। विष्णु की प्राचीनतम् प्रतिमा कुषाणयुग के मथुरा केन्द्र में बनी थी। इसमें एक हाथ अभय मुद्रा में है, तथा दूसरे में अमृतघट दिखलाई पड़ता है। अन्य दो हाथों में गदा तथा चक्र स्थित है। विष्णु की अन्य मूर्तियों में मुद्रा का

प्रदर्शन नहीं मिलता। इसी कारण विद्वानों की धारण बन गई है। यह मूर्ति बौद्ध प्रतिमा (बोधिसत्व) से मिलती जुलती है, और वह परिवर्तन काल का द्योतक है। उसी समय में बौद्धों के समान ब्राह्मण धर्म की मूर्तियां तैयार होने लगी, किन्तु आयुध इसकी विशेषता है। विष्णु के चार आयुधों में गदा तथा चक्र के पश्चात् शंख का स्थान है। पद्म सबसे पीछे समाविष्ट किया गया है।

कहने का तात्पर्य यह है कि, चौथी सदी के पश्चात चतुर्भुजी प्रतिमा मे चार आयुध स्थापित किये गये है। वैजयन्ती माला को कालान्तर में स्थान दिया गया है। उसी शताब्दी से विश्व रूप विष्णु की मूर्ति समाज में आई। गुप्तकाल के स्थानक विष्णु प्रतिमा प्रायः चतुर्भुजी मिली है। चारों हाथ में चार आयुध दिखलाई पड़ते है। धोती, चादर, शरीर पर अनेक आभूषण तथा किरीट मुकुट से प्रतिमा सुशोभित है।

## आयुध पुरूष

इस युग की एक प्रमुख विशेषता यह थी, कि विष्णु के दो हाथ होने पर भी चारों आयुधों का प्रदर्शन सुन्दर रीति से किया गया था। दो हाथों में आयुध, शंख तथा पद्म विराजमान हैं, तथा दोनों पार्श्व दो मनुष्य में आकृतियों के सिरे पर आयुध दिखाई पड़ते है। गदा (स्त्रीलिंग होने के कारण) को एक नारी उपाकृति के साथ तथा चक्र को पुरूष से सम्बन्ध दिखलाया है। इसी को कला में 'आयुध पुरूष' कहते है। किसी प्रतिमा में दोनों आयुध पुरूषों के सिरे पर विष्णु के हाथ स्थित है।

## हरिहर विष्णु प्रतिमा

खड़ी प्रतिमा के प्रसंग में हरिहर प्रतिमा का नामोल्लेख आवश्यक है। इस मूर्ति का दाहिना(आधा) भाग शिव का है। हाथ में सर्प तथा जटा उसके प्रमाण हे। आधा बायें भाग में विष्णु की प्रतिमा प्रकट होती है। सिरे पर किरीट मुकुट हाथ में शंख तथा गले में बनमाल दृष्टिगोचर होते हैं। किन्तु हरिहर प्रतिमा में शक्ति आकृति का सदा अभाव रहता है।

पूर्व मध्य युग से (6 वीं शती) पूर्वी भारत में वैष्णव मत का प्रचुर प्रचार हो गया और यहां तक की बौद्ध नरेश भी विष्णु प्रतिमा के लिये दान देने लगे खालीमपुर ताम्रपत्र में वर्णन आता है कि बंगाल के परम सौगत पाल नरेश धर्मपाल ने नरः नारायण (विष्णु) के लिये दान किया था।

वैष्णव मत का प्रभाव बौद्धमत (तंत्रयान) पर इतना पड़ा कि बंगाल में उसका

स्वरूप ही बदल गया। तन्त्रयान के ह्रास होने पर बंगाल में 'वैष्णव सहजिया' के नाम से नया मत प्रसारित हुआ। जिसकी परम्परा में हम चैतन्य को पाते है। उसी समय बुद्ध प्रतिमा के सिरे पर 'किरीट मुकुट' तैयार किया गया वैष्णव प्रभाव, समाज साहित्य तथा कला में भी स्पष्ट दिख पड़ता है। आश्चर्य तो यह है कि पाल नरेशों के बौद्ध होने पर भी वैष्णव प्रतिमाएं अत्यधिक संख्या में तैयार होती रही। मंत्रयान (वज्रयान) के युग में वैष्णव प्रतिमा का अधिक निर्माण एक आश्चर्य जनक घटना है। इस काल की विष्णु प्रतिमा पूर्ण थी। विष्णु भगवान एकाकी नहीं, किन्तु शक्ति के साथ (युगल) प्रदर्शित किये गये। काले कसौटी पस्तर की खड़ी प्रतिमा के मध्य में भगवान् विष्णु हैं। दोनों पार्श्व में लक्ष्मी तथा सरस्वती खड़ी हैं। दक्षिण भारत की प्रतिमाओं में सरस्वती के स्थान पर भूदेवी सुन्दर ढंग से प्रदर्शित हैं। प्रभामण्डल के ऊपरी प्रस्तर पर दस अवतारों की आकृतियां निर्मित दिख पड़ती हैं। उत्तरी भारत की मध्य युगीन विष्णु प्रतिमाएं अद्वितीय और सुन्दरतम हैं। वर्तमान काल में इसी खड़ी प्रतिमा (लक्ष्मी नारायण) का पूजन समाज में प्रचलित है।

## शयन विष्णु प्रतिमा

ब्राह्मण धर्मी मूर्तियों में केवल विष्णु की ही शयन प्रतिमा अभी तक उपलब्ध हुई है। कलाकारों ने इस शैली को कहां से ग्रहण किया यह एक प्रमुख प्रश्न है। सम्भवतः बुद्ध की महापरिनिर्वाण मूर्ति की भावना ग्रहण कर कलाकारों ने विष्णु की शयन प्रतिमा तैयार की हो। यदि दोनों की शैलियों का परीक्षण किया जाए, तो प्रकट होता है, कि बौद्ध तथा ब्राह्मण कलात्क नमूने में गहरा अन्तर है। बुद्ध की प्रतिमा शयन आसन में नहीं है। वह तो घोर निद्रा में प्रदर्शित की गई है। भगवान् विष्णु की शय्या को योग शयन प्रतिमा कहना सर्वथा उचित होगा। इसमें अनन्त नाग की गेंडुरी पर लेटी हुई मूर्ति तैयार की गई है। जिसका ऊपरी चौथाई भाग ऊँचा उठा है, और शेष तीन चौथाई भाग गेंडुरी पर स्थित है। दाहिना हाथ किरीट मुकुट को स्पर्श कर रहा है, तथा बांया हाथ शरीर को स्पर्श करता हुआ, कटक अवस्था में है। उस विष्णु प्रतिमा के साथ भृगु एवं मार्कण्डेय ऋषियों की आकृतियां (पुजारी के रूप में) और भूदेवी तथा लक्ष्मी पैर के समीप दिखाई पड़ती है। ऋषियों के समीप आयुध पुरूषों की आकृति भी बनी है।

भारत में ऐसी विष्णु प्रतिमाओं का निर्माण चौथी शती के पश्चात् होने लगा। उदयगिरि गुहा (बिदिशा के समीप, मध्य प्रदेश) में गुप्तकालीन अति सुन्दर विष्णु शयन प्रतिमा निर्मित है। देवगढ़ (उत्तर प्रदेश) से भी ऐसी प्रतिमा उपलब्ध हुई है।

जिसके ऊपरी भाग में देव समूह (ब्रह्मा, शिव, गणेश) आदि की आकृतियां दृष्टिगोचर होती हैं। राजपूताना की प्रतिमा भी इसी श्रेणी में रखी जा सकती हैं। कानुपर के समीप भितरगांव से प्राप्त मिट्टी के ढिकरा पवर शेषशायी विष्णु की आकृति मिली है।

उत्तरी भारत में इस तरह की प्रतिमा की बहुलता नहीं है, किन्तु दक्षिण में महाबलिपुरम तथा अयहोल में उदयगिरि नमूने के सदृश शेषशायी विष्णु मूर्ति विद्यमान है। दक्षिण भारत के अनेक मंदिरों में योगशयन प्रतिमा प्रतिष्ठित की गई हैं। जिसमें रंगनाथ मंदिर (त्रिची के समीप) का नाम विशेषतया उल्लेखनीय है। कुछ ऐसे तीन मंजिल के मन्दिर भी हैं। जिनमें आसन, (बैठी) स्थानक (खड़ी) तथा शयन की अवस्था में प्रतिमाएं प्रतिष्ठित की गई हैं। त्रिवेन्द्रम (केरल) के पद्यनाम मंदिर तथा श्रीरंग (मद्रास) के नमूने की शयन प्रतिमा उत्तरी भारत में कहीं नहीं मिलती। सम्भव है, दक्षिण के वैष्णव मतानुयायी योगशयन प्रतिमा की विशेष रूप से पूजा करते रहे हों।

## अवतार प्रतिमाएं

यदि वैदिक तथा पौराणिक विवरण पर विचार किया जाए और दस अवतारों का विश्लेषण किया जाए तो प्रकट होगा कि–

1. सत्युग में मत्स्य, कच्छप, वराह तथा नरसिंह के अवतार की कल्पना की जा सकती है।
2. त्रेता युग से वामन, परशुराम, दाशरथी राम, का सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है।
3. द्वापर युग में कृष्णावतार या बलराम की स्थिति मानी जा सकती है।
4. कलियुग में बुद्ध तथा कल्कि के अवतार का विचार युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

देवताओं का मानव रूप में अथवा अन्य जीवधारियों के रूप में मानवेचित कार्य करने की कथाएं प्रायः मिलती है। वे मनुष्य रूप में पथ प्रदर्शन करते हैं। तथा भक्तों को उपदेश देकर मानवों को स्वर्ग लोक प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

विष्णु धर्मोत्तर (अध्याय 46 में कहा गया है, कि ब्रह्मा के दो रूप हैं। प्रकृति और विकृति। विकृति को ही साकार ब्रह्मा कहते है। पूजा तथा ध्यान उस साकार से सम्बन्धित है)।

'प्रकृतिविकृतिस्तस्य रूपेण परमात्मनः
अलंक्ष्य तस्य तद्रूप प्रकृतिस्या प्रकीतिता।।
साकरा विकृतिर्शेया तस्य सर्व जगत्स्मृतम्
पूजाध्यानादिंक कतुसाकारस्यैव शक्यते'।।

मत्स्य, कच्छप तथा वराह अवतार के कथानक विस्तार पूर्वक वैदिक साहित्य में मिलता है। उसी कथन को पुराण में भी लिया गया। गुप्त युग में पुराणों का अन्तिम रूप से संकलन हो चुका था और उसी आधार पर कलाकार मूर्ति निर्माण करने लगे। यह सत्य है कि अवतार का आधार साहित्य (मुख्यता पुराण) है, परन्तु कला में मूर्तियाँ देशकाल के अनुसार तैयार की गई। उपरिलिखित तीन अवतार पशु तथा मिश्रित स्वरूप में भी प्रदर्शित हुए है।

वराह की(धड़ मानव का तथा सिर वराह का) मिश्रित मूर्ति का पूजन किया जाता है। इसी कारण महाबलिपुरम, बादामी, आरकाट तथा उदयगिरि गुहा में इसके नमूने मिलते है। इसमें सिर वराह का तथा धड़ मनुष्य के आकार का है। प्रस्तर की प्रतिमाएं वैखानसागम, अग्निपुराण तथा विष्णु धार्मोत्तर के वर्णन पर आधारित है। संसार जल ही जल था। प्रजापति ने जलमध्य पृथ्वी को देखा अतएव प्रजापति ने वराह का रूप धारण कर जल के भीतर निमज्जन किया और पृथ्वी को नीचे से ऊपर ले आए। (तैत्तिरिय ब्राह्मण 1,1,6) इस कार्य में वराह रूप विष्णु खड़े हैं। दो भुजाओं में शंख चक्र (अथवा गदा, पद्य) विद्यमान है। केहुनी पर (स्त्री वेष) में पृथ्वी बैठी हैं। और एक हाथ वे विष्णु उसे पकड़े हुए है। यहां मनुष्य का विशालकाय शरीर तथा वराह का सिर दिखाई पड़ता है। दाहिना पैर आदिशेष पर स्थित है दक्षिण की प्रतिमा में बांया पैर ऊपर उठा हुआ है तथा उसी पर पृथ्वी बैठी है। प्रतिहार राजा भोजदेव के सिक्के पर भी वराहविष्णु की आकृति खुदी है, परन्तु उसमें पृथ्वी का अभाव है। गुप्त युग से मध्य काल (चौथी से बारहवीं सदी) वराह अवतार की मूर्तिया तैयार होती रही। उत्तर मध्ययुगी होयसल कला में वराह भुजी वराह प्रतिमा का नमूना मिला है। वराह प्रतिमा में शक्तियों (भूदेवी या लक्ष्मी) की उपस्थिति के कारण वर्गीकरण किया गया है।

## 1. नृवराह

इस प्रतिमा में विष्णु भार्या (शक्ति) का अभाव है। उदयगिरि गुहा (बिदिशा के समीप) में विशाल वराह प्रतिमा का निर्माण गुप्तकाल में हुआ था। कुछ विद्वान इसे सम्राट द्वितीय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वारा मालवा, गुजरात आदि प्रदेशों के विजय

का द्योतक समझते हैं। यानि गुप्त सम्राट ने शकों द्वारा आक्रान्त पृथ्वी का संरक्षण किया था।

## 2. यज्ञ वराह

इस अवस्था में विष्णु प्रतिमा सिंहासन पर बैठी है तथा दोनों तरफ भूदेवी तथा लक्ष्मी भी उपस्थित हैं। यज्ञ भी ब्रह्मा का प्रतीक माना गया है।

"पुराणों में वराह के साथ यज्ञ का प्रतीक अधिक संवसित है।"

## 3. प्रलय वराह

इसमें वराह प्रतिमा ललितासन शैली में बैठी है। केवल भूदेवी की आकृति साथ में विद्यमान है। कलात्मक उदाहरणों से प्रकट होता है, कि वराह प्रतिमा को सम्पूर्ण भारत में जनसाधारण पूजा करते रहे। मद्रास महाबलिपुरम, बादामी, पूर्वी भारत तथा मध्य प्रदेश में प्राप्त प्रतिमाएं उसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

## नरसिंह अवतार

''इस मूर्ति के नाम से प्रकट होता है कि नारायण विष्णु ने मनुष्य आकार के साथ–साथ सिंह का अंग समिश्रित कर रूप धारण किया था। तैत्तिरिय आरण्यक में नृसिंहवतार के लिए 'वज्रनखाय तीक्ष्यदष्ट्रायधीमहि' की गायत्री दी गई है। हिरण्यकश्यप को मारने वाले (प्रहलाद को आर्शीवाद) देने वाले इसी श्रीनृसिंह भगवान् के चरित का चित्रण पुराणों में किया गया है। हिण्यकशिपु के ऐसा वरदान था कि न मनुष्य और न जानवर उसे मार सकता है। अतएव प्रहलाद के रक्षार्थ भगवान् ने मिश्रित कर रूप धारण कर नरसिंह का अवतार ग्रहण किया। अवस्था के अनुसार नरसिंह के तीन प्रकार की प्रतिमाएं उपलब्ध हुई हैं।

## 1. गिरिजा नरसिंह

पर्वत के गुफा से निकलने वाले नरसिंह।

## 2. स्थौन नरसिंह–

प्रहलाद की रक्षा करने के निमित्त स्तम्भ से उत्पन्न होने वाले नरसिंह का अवतार। इसमें विष्णु की चतुर्भुजी प्रतिमा है, तथा चारों आयुध को स्थान दिया गया है। एलोरा की आठ भुजी प्रतिमा है। किन्तु उसमें शास्त्रीय नियम का अभाव है। स्तम्भव से निकल कर भगवान हिरण्यकश्यप को मर रहे हैं।

## 3. लक्ष्मी नरसिंह

विष्णु भार्या लक्ष्मी नरसिंह के बाएं जाँध पर बैठी हैं, वह आलिंगन अवस्था में दृष्टिगोचर होती हैं। इसमें लक्ष्मी का एक पैर नीचे की ओर लटक रहा है। उत्तरी भारत में नरसिंह भगवान् के पूजा का उतना प्रचलन नहीं है। जितना दक्षिण भारत में पाया जाता है। श्रीमदभागवत् के सप्तम स्कन्ध में श्री नरसिंह भगवान का चरित्र चित्रण किया गया है।[1]

## वामन अवतार

''भगवान विष्णु ने वामन का रूप (अवतार) धारण कर तीन डगों में पृथ्वी को नाप लिया था, इसी के आधार पर कलाविदों ने वामनावतार की प्रतिमा तैयार की। वमनावतार की पौराणवित कथा का स्रोत शतपथ ब्राह्मण (1,2,5,7) में वामन प्रसंग समझा जाता है। परन्तु ऋग्वेद के विष्णुसूक्तों में बहुश संकेतित है। प्रथम मण्डल के 154 सूक्त के अनुशीलन से विष्णु के वैदिक स्वरूप का पूर्ण परिचय मिल जाता है। उनके विशिष्ट कार्यों में पृथ्वी को तीन पगों में मापने के कारण विष्णु को 'उरूगाय' तथा उरूक्रंम का विशेषण दिया गया। इद विष्णुविंचक्रमें में मेधा निदधं परम् समूढ़मस्य पांसुरे (ऋग्वेद 1,22,17)।

पौराणिक प्रसंग का मूलरूप शतपथ ब्राह्मण की उक्ति 'वामनो ह विष्णुरास' में मिलता है। प्रसंग संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है।

देव–असुर दोनों आपस में विवाद करने लगे। तीक्ष्ण स्वभाव वाले असुरों से देवगण परास्त हो गये। समस्त भुवन को अपना मान कर उसे विभाजित करने का इरादा किया ताकि उसी के द्वारा आजीविका निर्वाह करगें इसे सुनकर देवगण अपने अंश के लिए यज्ञरूपी विष्णु को आगे कर (नेता बनाकर) असुरों के स्थान पर गये। देवता बोले, कि पृथ्वी का बंटवारा मत करो इसमें हमारा भाग भी है। असुरों ने कहा जितने क्षेत्र पर विष्णु (जो वामन थे) सोते हैं वह भाग तुमको मिलेगा। इस कार्य में (यज्ञ के बराबर भूमि उपलब्ध होने का कार्य) यज्ञ विष्णु का हाथ था, इसी आख्यान को पुराणों में वामनावतार प्रसंग में उपस्थित किया गया है। अन्तर इतना ही है, कि पुराणों में असुरों कगे राजा बलि का नाम आता है। पुराणों में तीन क्रमों में पृथ्वी, स्वर्ग तथा बलि के शरीर को मापने की वार्ता मिलती है। इसी पौराणिक

1. उपाध्याय भगवत शरण, गुप्तकाल का सांस्कृति इतिहास, पृ. 218–220

कथा के आधार पर कलाकारों ने वामन विष्णु की प्रतिमा निर्मित की। बलि के यज्ञशाला में ब्रह्माचारी के वेष में भगवान् उपस्थित हुए थे। इसलिये वामनावतार के विभिन्न स्वरूपों में ब्रह्मचारी वेषधारी प्रतिमा मिलती है, जो मूर्ति पांच तालमान में तैयार की गई है। ब्रह्माचारी के वेष में कोपीन, वस्त्र, छत्र तथा कमण्डल लिए प्रतिमा बनी है। मूर्ति बलि से तीन पग की भूमि मांग रही है।

कहने का तात्पर्य यह है, कि वामन को ब्रह्माचारी अथवा साधारण मनुष्य के रूप में प्रदर्शित किया गया है। आठवीं सदी की भव्य वामन प्रतिमा दोहरे कमलासन पर खड़ी चारों आयुध सहित तथा वनमाला धारण किए काशी विश्वविद्यालय के कलाभवन में सुरक्षित है।

विष्णु के वामनावतार का दूसरा स्वरूप विराट रूप में प्रदर्शित किया गया है, इसतमें तीन डग के कथानक को लेकर तीन विभिन्न आकार सामने आते हैं, जिसे 'त्रिविक्रम' का नाम दिया जाता है।

1. विराट पुरूष का बांया पैर दाहिने घुटने के बराबर उठा हुआ दिखलाई पड़ता है।

2. बांया पैर नाभि के समान्तर फैला हुआ है।

3. बांया पैर अन्तरिक्ष की ओर ऊपर ललाट के समतल दिखाई पड़ता है। दक्षिण भारत में तीसरे प्रकार के विराट पुरूष (वामनावतार) की मूर्ति में विष्णु के पैर को ब्रह्मा जल से धो रहे हैं। और उसे नदी के रूप में (मछली सहित जल धारा) दिखाया गया है। विराट पुरूष (वामनावतार) की प्रतिमा प्रायः चतुर्भुज बनायी जाती थी। शंख, चक्र दो हाथों में दिखाई पड़ता है। तीसरा हाथ ऊपर की ओर संकेत करता हुआ, तथा चौथा बांए पैर के समतल में प्रदिर्शत है।[1]

'विराट पुरुष' का दाहिना पैर पृथ्वी पर अचल सा दिख पड़ता है। बॉया पैर ही तीन ड़गों के मापने में बार–बार प्रयुक्त किया गया है। विष्णु धर्मोत्तर में वर्णन आता है, कि उस वामन के सम्मुख बलि तथा उसकी पत्नी खड़ी है। शुक्राचार्य भी उपस्थित है जो बलि को भगवान के वामन रूप को संकेत कर आगाह कर रहे है।

---

1. शंकर भाष्य, विष्णु सहस्त्र नाम, पृ. 54–59

कुछ प्रतिमा में छत्र दिखाई पड़ता है, 'त्रिविक्रम' की इस प्रकार की प्रदर्शन में इन्द्र, वायु, ब्रह्मा पैर का प्रक्षालन करते तथा शिव अंजलि मुद्रा में दिखाई गये हैं।

एलौरा के दशावतार गुहा में भी विष्णु का विराट रूप दिखलाई पड़ता है।

होयसल शैली में निर्मित वामन प्रतिमा अति सुन्दर एवं अलंकृत है, जिसकी समता नहीं की जा सकती। उस प्रतिमा में दाहिना पैर ऊपर मापने के निमित्त उठा हुआ है। बांया पैर जमीन पर स्थित है। इस प्रकार कथानक के आधार पर कलाकार यन्त्र–तन्त्र कुछ अधिक आकृतियों को जोड़ वामन के विराट रूप का प्रदर्शन करते रहे हैं।

संक्षेप में विष्णु के आध पांच अवतारों (मत्स्य, कच्छप, वराह, नरसिंह एवं वामन) स्रोतों का अनुशीलन यहां प्रस्तुत किया गय है। दशावतार के अन्तिम दो अवतारों बुद्ध तथा कलिन्द के विष्णु में हम जानते हैं, कि बुद्ध को जन्म लिये केवल ढाई हजार वर्ष हुए और ब्राह्मण धर्मानुयायी पण्डितों ने बुद्ध की गणना दशावतार में की। इसी काल में भविष्य में कल्कि अवतार होने वाला है। अतः इन दोनों के लिए प्राचीन स्रोत्र ढूढ़ने की आवश्यकता नहीं है। मध्य के तीन अवतारों परशुराम–राम तथा कृष्ण के सम्बन्ध में पर्याप्त पोषक सामग्री नहीं मिलती है। परशुराम का अवतार वामन तथा दाशरथी राम के मध्य में माना जाता है। मत्स्य पुराण में परशुराम को अवतारों में इनका सोलहवां स्थान है। मध्ययुगीन दशावतार की आकृतियों में परशुराम भी दृष्टिगोचर होते हैं। पालयुगीन मुख्य विष्णु प्रतिमा के प्रभावली में भी अवतारों की आकृतियां बनी हैं। जिसमें परशुराम छठे स्थान पर दिख पड़ते हैं। इनका चरित्र महाभारत तथा पुराणों में वर्णित है। तथा कीर्तिवीर्य हैहय का नारा एवं क्षत्रिय शासकों को इक्कीस बार संहार की घटना परशुराम के जीवन का महत्वपूर्ण वृत्तान्त है। यह अवतार राम तथा कृष्ण के सदृश ही ऐतिहासिक माना जाता है।

सातवां अवतार राम का है, जो अयोध्या नरेश दशरथ के पुत्र थे। रामकथा से सम्बन्धित व्यक्तियों के नाम यन्त्र–तन्त्र मिलते हैं। जैसे शतपथ ब्राह्यध्ण में जनक। परन्तु राम ऐसा अभिध्यान वैदिक काल में राजाओं तथा ब्राह्मणों में उपलब्ध न था, इस आधार पर कोई निश्चित मत स्थापित नहीं किया जा सकता । मगध शैली एवं बंगाल की दशावतार आकृतियों में राम (दशरथी) प्रस्तर पर खुदे दिखाई पड़ते है।

विष्णु अवतारों के क्रम में कृष्ण को आठवां अवतार माना गया है। भागवत की सूचि में(3.22) राम (बलराम) तथा कृष्ण दोनों अवतार उल्लिखित है। कृष्ण को स्वयं भगवान (कृष्णस्तु भगवान स्वयं) मानने पर बलराम आठवें अवतार का स्थान ग्रहण कर लेते है।

इसी कारण अनेक पुराणों में राम (बलराम) के नाम अवतार की सूची में वर्णित है। इनकी चतुर्भुजी मूर्ति बनायी जाती थी। बाएं भाग के ऊपर हाथ में (हल) तथा निचले हाथ में शंख रखने का विधान है। दाहिनी ओर ऊपरी हाथ में मूसल तथा निचले हाथ में चक्र रखने का नियम कलात्मक उदाहरणों से ज्ञात हो जाता है। बलराम आदिशेष के अवतार थे, तथा कृषि से सम्बन्धित होने के कारण उनके हाथ में हल को प्रधान स्थान दिया गया है। यद्यपि ईसा पूर्व सदियों में संकर्षण (बलराम) की पूजा कृष्ण  के साथ होती रही, पर कृष्ण को स्वयं भगवान् मान लेने पर उनके भ्राता बलराम ने अवतार का स्थान ले लिया। इस प्रकार व्यूह बलराम तथा विभव बलराम का वर्गीकरण हो सकता है। ईसवी पूर्व दूसरी शती की प्रतिमा मथुरा से प्राप्त हुई है जिसमें धोती पगड़ी पहने पुरूष की आकृति है। मूषल तथा हल की स्थिति से उसे बलराम की मूर्ति मानते हैं। इसमें सर्प छत्र भी वर्तमान है। व्यूह संकर्षण (बलराम) के हाथों में वासुदेव विष्णु के आयुध मिलते हैं।

ग्वालियर से बलराम की एक सुन्दर प्रतिमा मिली है, जिसमें 'तालध्वज' वर्तमान है। इसके आधार पर बलराम द्वारा धेनुक(सिर रहित गर्दभ राक्षस) के संहार की कथा वर्णित की जाती है। बलराम ने गर्दर्भ राक्षस को ताल वृक्ष के समीप वेग से फेंक दिया, और वह मर गया। सम्भवतः तालध्वज उसी घटना की याद दिलाता है।

बुद्धावतार की कथा का स्रोत्र अवैदिक है। गौतम बुद्ध का जीवन चरित नितान्त विख्यात है। बुद्धमत के हीनयान शाखा में बुद्ध का वैयक्तिक जीवन ही आदर्श माना गया है, उनके कथित 'अष्टागिक मार्ग' का अनुसरण ही साधक को अर्हत की उन्नत अवस्था पर पहुंचा सकता है। ऐसा कहा गया है। इसी कारण ईसवी पूर्व सदियों में भारतीय कला में बुद्ध के प्रतीक पूजित होते रहे। ईसवीं सन् के आरम्भ से महायान का उदय हुआ। जिसमें गौतम बुद्ध देवता के रूप में ग्रहीत किये गये। उनकी प्रतिमा निर्मित की गई जिसकी पूजा बौद्ध मतानुयायी करने लगे। उसी मत में 'बोधिसत्व' की कल्पना उपस्थित की गई। करूणा तथा दया से पूर्ण बोधिसत्व की मूर्ति भी बनने लगी। इस प्रकार महायान में गौतम बुद्ध तुषित स्वर्ग के निवासी होने पर

लोकोत्तर बुद्ध हो गये, और लोकोतरवाद के सम्मुख उनका मानव रूप एकदम तिरोहित हो गया।

बाह्मणधर्म में भी बुद्ध विष्णु के अवतार माने गये। इसका एकमात्र कारण यह था, कि बौद्ध धर्म के उपासकों को वैदिक धर्म में पुर्नदीक्षित करने के निमित्त बुद्धावतार के विचार को समाज में प्रचलित किया गया तथा उसके लिए सफल प्रयास भी हुआ। एक धार्मिक क्रान्ति उत्पन्न हुई और बुद्ध को अवतारों में गणना करना उस क्रान्ति का महनीय साधन था। अशोक तथा कनिष्क के पश्चात् कोई भी शासक इसे राजधर्म मानने को तैयार न था, और न भारत के बाहर बुद्ध धर्म के प्रसार एवं प्रचार के निमित्त प्रयत्नशील रहा। कुमारिलभट्ट ने बौद्धों के दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रौढ़ रूप में खण्डन किया तथा शंकर ने उनके तर्क की धज्जियां उड़ा दी। यही कारण था, कि बौद्ध मत अपने मूलस्थान भारत से निष्कासित हो गया। कुमारिल ने पुराणों का हवाला देकर स्पष्ट शब्दों में घोषणा की, कि शाक्य कलियुग में विप्लव मचाने वाले है।[1]

पाल युग में मध्य युगीन बुद्ध मूर्ति विष्णु की मुख्य प्रतिमा के प्रभावली पर खुदी दिख पड़ती है। दशावतार की जो आकृतियां प्रस्तर पर खुदी है, उनमें नवां स्थान बुद्ध को दिया गया है। अतएव शास्त्रीय उल्लेख का समर्थन प्रस्तर पर खुदी मूर्तियों से हो जाता है। कनिष्क की स्वर्ण मुद्रा पर जिस रूप में बुद्ध की आकृति दृष्टिगोचर होती है, वैसी आकृति मगध शैली में तैयार की गई। इसमें सिर के चारों ओर प्रभामण्डल शरीर पर चीकार तथा दहिना हाथ अभय मुद्रा में है। मध्ययुगीन बौद्धमत एवं बौद्ध कला पर वैष्णव धर्म। का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। तंत्रयान का नवीन रूप 'वैष्णव सहजियां' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वैष्णव सहजिया के साथ बुद्ध प्रतिमा में किरीट मुकुट दिखलाया गया। बिहार एवं बंगाल से मध्य युगी बुद्ध मूर्तियां प्रायः मुकुट के साथ ही मिलती है कहने का तात्पर्य यह है, कि पुराणों की धार्मिक क्रान्ति ने कला को अछूता न छोड़ा और बुद्ध मूर्ति में भी परिवर्तन आ गया।

विष्णु का अन्तिम तथा दसवां अवतार कल्कि के नाम से शास्त्राों में उल्लिखित है। शास्त्र का कथन है, कि यह अवतार भविष्य में होगा। जब प्रजा का नितान्त उत्पीड़न होगा और अधर्म अपनी ऊँचाई पर पहुंच जायेगा। महाभारत (शा.प.अ.448) तथा मत्स्य पुराण (47.248) दोनों में कल्कि अवतार का रोचक वर्णन मिलता है।

---

1. शंकर भाष्य, विष्णु सहस्त्र नाम, पृ. 61–65

भागवत (2.7.38) में स्पष्ट कथन है, कि धर्म की स्थापना तथा अधर्म का विनाश ही अवतार का उद्देश्य है।

मध्य युग के खुदे प्रस्तरों पर कल्कि का स्वरूप अश्वरोही की तरह ही दिखलाया गया है। सूर्य के पुत्र रेवन्त की भी आकृति इसी तरह की है, परन्तु रेवन्त की प्रतिमा में संगीतज्ञों की टोली अन्य अनुचर तथा कुत्ते की आकृतियां दृष्टिगोचर होती है। पाषाण मूर्ति के अतिरिक्त विष्णु की कांस्य धातु की प्रतिमा स्थान–स्थान पर उपलब्ध हुई है तक्षशिला की कांस्य प्रतिमा (आ.स.ए.रि.1935,36) चतुर्भुजी है। शंख, चक्र, गदा तथा पद्म के अतिरिक्त सिर पर किरीट और शरीर में हार, यज्ञोपवतीत, वनमाला दिखलाई पड़ता है। शिरचक्र (प्रभावली) भी अनुपात के अनुसार ही बना है। रंगपुर (बंगाल) की चतुर्भुजी स्थानक विष्णु मूर्ति भी कांस्य धातु की है।

## गौड़ अवतार

'भागवत' में विष्णु के अन्य अवतारों का स्पष्ट उल्लेख है। सनक, सनन्दन, सनातन, ऋषभ, पृथु, धन्ववीर, सनत्कुमार, नारद, दत्तात्रेय, नारायण आदि के नाम मिलते हैं। (भागवत 1,3) विष्णु भगवान के अन्य गौड़ अवतार भी यत्र–तत्र भारत में पूजित है। दत्तात्रेय दक्षिण भारत में लोकप्रिय देवता हैं, जिनकी पूजा आज भी प्रचलित है। अनन्त नाम से जो मूर्ति मिलती है, उसमें चार मुख तथा बारह हाथ दिखलाई पड़ता है। हरिहर प्रतिमा में आधा अंग विष्णु तथा आधे भाग में शिव की आकृति है। मुकुट बनमाला से विष्णु का तथा जटा, त्रिशूल एवं सर्प से शिव का बोध होता है। विष्णु के गौड़ अवतारों के नाम भागवत के अन्य स्कन्दों में मिलते हैं। नारद, नर–नारायण, कपिल, यज्ञ, वेदव्यास, मान्धाता, हयग्रीव आदि के नाम उल्लिखित हैं। शास्त्रीय विवेचन की पुष्टि प्रत्येक स्थल पर नहीं होती। यह आवश्यक नहीं था, कि कलाकार सभी (मुख्य तथा गौड़) अवतारों की प्रतिमा तैयार करें, तो भी दशावतारों के बाद दत्तात्रेय, हरिहर,नारद, हरग्रीव आदि की आकृतियाँ मिलती है। देवी भागवत में वर्णन आता है, कि राक्षस को ध्वंस करने के लिए विष्णु ने आधा घोड़े तथा आधा मनुष्य की आकृति धारण की थी, जो हयग्रीव के नाम से प्रसिद्ध हुई।

## लक्ष्मी

विष्णु भगवान से सम्बन्धित देवियों में श्री भूदेवी, एवं सरस्वती के नाम आते

है। दक्षिण भारत के विष्णु प्रतिमा में (लक्ष्मी) दाहिनी ओर तथा भूदेवी(पृथ्वी) बाईं ओर खड़ी दिखलाई पड़ती है। दोनों विष्णु की भार्या मानी जातीं हैं। उत्तर भारत में भूदेवी के स्थान को सरस्वती ने ग्रहण कर लिया। अतः भगवान् के संयुक्त प्रतिमा में दो देवियों को सर्वदा पार्श्व में स्थान दिया गया । लक्ष्मी कमल को लिये तथा सरस्वती वीणा सहित चित्रित है।

## वाहन

सभी देवताओं के वाहन का वर्णन शास्त्रों में मिलता है गरूड़ विष्णु के वाहन कहे गए है। यद्यपि गरूड़ पक्षी की आकृति बहुत प्राचीन समय से किसी न किसी प्रसंग में उल्लिखित मिलती रही। गुप्त काल से गरूड़ को विष्णु भगवान् के वाहन के रूप में स्वीकार किया गया।

चौर्थी सदी से गुप्त सिक्के पर गरूड़ की आकृति सर्वत्र पाई जाती है। यदि वैदिक सूर्य तथा विष्णु को एक मान लिया जाए, तो चक्र तथा गरूड़ का विष्णु से सम्बन्ध स्वतः, सिद्ध हो जाता है। चक्र के रूप में सूर्य भ्रमण करते हैं, और उस रथ में एक ही चक्र मानते हैं। गरूड़ सूर्य के सारथी अरूण का भ्राता है। महाभारत में (आदि पर्व अ. 48) गरूड़ द्वारा अमृत लाने का वर्णन मिलता है। उस कथानक में यह वर्णित है, कि अमृत पात्र को कुश आस पास पर रखा गया, जिसे इन्द्र शीघ्र उठा ले गये। कुश पर कुछ बूंद अमृत गिर गया जिसे नाग चखना चाहता था। कुश आस से उसकी जिव्हा कटकर दो भागों में बंट गई, उस कारण गरूड़ सर्प का शत्रु (नाशक) बन गया। पक्षियों में सबसे द्रुतगामी गरूड़ को विष्णु का वाहन निर्धारित करना आवश्यक था क्योंकि विष्णु संसार के रक्षार्थ नाना रूप ग्रहण करते हैं, तथा गरूड़ के सहारे निश्चित स्थान पर पहुंच जाते हैं।[1]

## चार स्वरूप

शिल्परत्न में गरूड़ पक्षी की दो भुजाएं, चोंच की तरह नाक तथा आश्चर्यजनक पंख का विवरण मिलता है। यह प्रसिद्ध है, कि बालखिक्य ऋषि के जीवन रक्षा करने पर जिस साधारण पक्षी को आशीष मिली, वह गरूड़ के नाम से विख्यात हुआ। वह कठिन बोझ भी सहन कर सकता है।

अवेस्ता की टीका में 'गरूत्मान' की समता गरूड़ से की जाती है, तथा दोनों

---

1. गुप्त मनिलाल, विष्णु पुराण, पृ. 19–21

ही पर्यायवाची शब्द है। कला में गरूड़ की अभिव्यक्ति कई प्रकार से की जाती है। विष्णु मंदिर के सभामण्डल में अंजलि मुद्रा में गरूड़ की चतुर्भुजी मूर्ति का वर्णन है, पर कला में चतुर्भुजी प्रतिमा (विष्णु के प्रतीक के साथ अथवा एक हाथ में छत्र, दूसरे में अमृतघट तथा शेष दो हाथ अंजली मुद्रा में) का ही प्रचार था। दूसरे स्थानों से गरूड़वाही विष्णु प्रतिमा उपलब्ध हुई है। जो गरूड़ की हथेली पर है। ऐसी प्रतिमा भारत के बहार दक्षिण पूर्व एशिया के द्वीप जावा से भी मिली है। तीसरा स्वरूप वैष्णव  मंदिरों के सम्मुख स्वतम्भ पर गरूड़ की मूर्ति स्थित मिलती है। उस स्थान पर मनुष्य का शरीर तथा नाक ओर चोंच (पक्षी सदृश) गरूड़ का है। चौथी आकृति मथुरा से प्राप्त हुई है, जिसमें गरूड़ मनुष्य के आकार में खड़ा है। पीठ और छोटे पंख हैं, तथा हाथ में सर्प पकड़े है। इन चार स्वरूपों में गरूड़ भगवान् विष्णु के यशस्वी वाहन के रूप में (कला में) चित्रित है।

## आयुध पुरूष

वैष्णव प्रतिमाओं का विवरण आयुध पुरूषों के बिना अधूरा सा प्रतीत होगा। विष्णु के चार आयुध शंख, चक्र, गदा, पदम के नाम शास्त्रों मिलते है। इन्हीं को कला में मनुष्य रूप में दिखलाया गया है जिसे 'आयुध पुरूष' का नाम दिया गया है। विष्णु भगवान के चारों भुजाओं में चार आयुध रहते हैं; परन्तु कभी कला में दो हाथ तथा पार्श्च में दो पुरूष की आकृतियाँ खुदी मिलती हैं जिनके सिरे पर आयुध रक्खे हैं, मनुष्य के सिर पर चक्र होने से 'चक्र पुरूष' कहलाता है। आदि। पौराणिक ग्रन्थों में आयुध पुरूष के नामकरण से सर्वथा पुल्लिंग का प्रयोग नहीं मिलता शब्द के लिंगभेद के अनुसार आयुध पुरूष का लिंग निश्चित किया गया है, इसी लिए चक्र पुरूष, गदा देवी या शंख पुरूष कहते है। इसमें चक्र तथा शंख पुल्लिंग हैं और गदा स्त्रीलिंग शब्द है। कलात्मक उदाहरणों में विष्णु प्रतिमा के दोनों पार्श्व में आयुध पुरूष की आकृतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। आयुध उनके सिरे पर वर्तमान है। जिस समय मुख्य प्रतिमा पर हाथ आयुध पुरूष के सिरे पर स्थित रहता है। उस समय विष्णु भार्या श्री तथा पुष्टि (सरस्वती) की आकृतियाँ वर्तमान नहीं रहती। गुप्त युग में अधिकतर चक्र तथा गदा की अभिव्यक्ति आयुध पुरूष के रूप में की गई है। पूर्व मध्ययुगीन कला में शंख तथा कमल भी आयुध पुरूष के आकृति में मिले है। 7 वीं सदी के पश्चात् कला में आयुध पुरूषों का अभाव सा है। चौबीस परगना से विष्णु की योगस्थानक प्रतिमा मिली है, जिसमें गदा देवी और चक्र पुरूष दिखलाई पड़ते है। यह 21 वीं सदी की मूर्ति है।

आयुधों में चक्र युद्ध का शस्त्र है। गदा में दुष्टों का दमन तथा शंख से अहंकार का विनाश होता है, पद्य विश्व की उत्पत्ति का द्योतक है। विष्णु तथा वराह पुराणों में आयुधों का विवरण मिलता है, जो कला के नमूनों से मिलते जुलते हैं। पटना संग्रहालय में भी आयुध पुरूषों के सुन्दर नमूने सुरक्षित है।[1]

## गुप्तकाल के वैष्णव मंदिर

गुप्तकाल में वैष्णव धर्म का पुनरूत्थान हुआ। धार्मिकता के कारण देवताओं के मंदिरों का निर्माण होने लगा था।[2] यद्यपि भिन्न–भिन्न मंदिरों में विभिन्न देवताओं की मूर्तियों की स्थापना की गयी थी, परन्तु उन सबकी कला में साम्य दिखायी पड़ता है। इन मंदिरों की निर्माण शैली, सज्जा आदि के आधार पर इनकी निम्नलिखित विशेषताएं है –

1. मंदिरों का निर्माण ऊँचे चबूतरों पर हुआ है।
2. चबूतरों पर चढ़ने के लिए चारों ओर सीढ़ियां है।
3. प्रारंभ में मंदिरों की छते चपटी होती थी (सपाट) किन्तु बाद में शिखरों का निर्माण प्रारम्भ हुआ।
4. मंदिरों की बाहारी दीवारें सादी थीं। उन पर किसी प्रकार का अलंकरण नहीं होता था।
5. मंदिरों के भीतर गर्भ गृह होते थे, जिनमें मूर्तियों की स्थापना होती थी। साधारणतः गर्भगृह में एक अलंकृत द्वार होता था। द्वार स्तम्भ पर गंगा और यमुना की मूर्तियां अंकित होती थी।
6. गर्भगृह के चारों ओर प्रदक्षिणापथ रहता था जो छत आवृत होता था।
7. मंदिर की छत पर अलंकृत प्रतिमायें स्तंभों पर टिकी होती थी। स्तभों के शीर्ष भाग पर एक–एक वर्गकार पाषाण खंड पर चार–चार सिंह एक दूसरे से पीठ सटाये हुये आधे बैठे दिखाई पड़ते थे।
8. मंदिर के आगे बहुधा एक द्वार मंडप होता था, जो स्तभों पर आश्रित रहता था।

---

1. गुप्त मनिलाल, विष्णु पुराण, पृ. 25–26
2. गुप्तकाल के पूर्व के मदिंर लकड़ी व टिम्बर के बनते थे, सिंह, अमर प्राग्धारा अंक 2, पृ. 124, उ.प्र. राज्य पुरातत्व संगठन की शोध पत्रिका अंक 1991–1992

गुप्तकालीन मंदिरों की वास्तुकला को ध्यान में रखकर उनका दो श्रेणियों में वर्गीकरण किया गया है– प्रारंभिक गुप्तकालीन (319–550) मंदिरों जिसमें भूमरा के नचना मंदिर आते हैं इनकी छतें सपाट हैं। दूसरे उत्तर गुप्तकालीन मंदिर (551–605 ई.) जिसमें देवगढ़ (जिला ललितपुर) का मंदिर आता है। यह मंदिर शिखर युक्त है।[1]

गुप्त काल के अनेक मंदिरों का उल्लेख है। गुप्तकालीन प्रमुख मंदिर निम्नलिखित है।

## 1. एरण के वैष्णव मंदिर

विष्णु और वराह के मंदिरों में सपाट छत, गर्भगृह और स्तंभों पर आधृत द्वारा मंडप है। एरण के वर्तमान विष्णु मंदिर का पुनरूद्धार गुप्तकाल के बाद हुआ।

## 2. भूमरा का विष्णु मंदिर

सतना (मध्य प्रदेश) में भूमरा नामक स्थान पर विष्णु मंदिरों का निर्माण पांचवी शताब्दी के लगभग मध्यकाल में हुआ इस मंदिर का केवल भू गर्भगृह विद्यमान है, इसके चारो ओर का चबूतरा प्रदक्षिण पथ का द्योतक है। गुप्तकालीन

---

*अ. विलसड़ में प्राप्त कुमारगुप्त प्रथम के काल के अभिलेख में महासेन के मंदिर का उल्लेख है (कार्पस 3,36 और आगे)।*

*आ. भिनरी (जिला गाजीपुर) स्थित स्कंदगुप्त के स्तंभलेख में विष्णु के मंदिर की स्थापना का उल्लेख हे (कापर्स, 3,53)।*

*इ. कहांव (जिला देवरिया) स्थित स्कंदरगुप्त के काल के स्तंभ लेख (कार्पस, 3,65) के निकट बुकानन ने दो ध्वस्त मंदिर देखे थे।*

*ई. इंदौर (जिला बुलंदशहर) से प्राप्त स्कंदगुप्त के काल के ताम्रलेख में सूर्य मंदिर का उल्लेख है (कार्पस, 3,68)।*

*उ. बुधगुप्त के काल का दामोदरपुर ताम्रलेख में दो देवफुला के बनाने का उल्लेख है(एमि. 15,138)।*

*ऊ. बुधगुप्त के शासनकाल के एरण स्थित स्तंभ लेख में दो भाईयों द्वारा विष्णु ध्वज की स्थापना का उल्लेख है, जिसका संबंध मंदिर से रहा होगा( कार्पस, 3,89)।*

*ए. एरण स्थित तोरमाण का अभिलेख वराह मूर्ति पर है (कार्पस, 3,159,35,10,82–83)।*

---

1. उपाध्याय वासूदेव, साम्राज्य का इतिहास, पृ. 210–211

मंदिरों के प्रायः सभी लक्षण इसमें विद्यमान हैं। द्वारस्तंभ के दायें बायें गंगा और यमुना की मूर्तिया अंकित है। इसके गर्भ गृह का प्रवेश द्वार और मंडप प्रारंभिक गुप्तकालीन मंदिरों की अपेक्षा अधिक अलंकृत है।

## 3. नचना का वैष्णव मंदिर

भूमरा के समीप (प्राचीन अजयगढ़ राज्य में) यह वैष्णव मंदिर स्थित है। इस स्थान पर दो मंदिर हैं, किन्तु पार्वती मंदिर पहले का है, और दूसरा सांतवी शताब्दी का है। किन्तु यह दुमंजिला है और इसमें अलंकरण न्यून कोटि है।

## 4. देवगढ़ का दशावतार मंदिर

ललितपुर जिला में बेतवा नदी के तट पर स्थित देवगढ़ में एक ध्वंस्थ विष्णु मंदिर है। इसमें अनंतशायी विष्णु की प्रतिमा है। मंदिर की जगतीपीठ ऊंचे चबूतरे पर है। चबूतरों के चारों ओर साढ़े पंद्रह फुट लम्बी सीढ़ियां है। राखालदास बनर्जी का अनुमान है, कि गर्भगृह के चारों ओर ढका प्रदक्षिणा पथ रहा होगा। गर्भगृह बाहार से वर्गाकार साढ़े अठारह फुट और भीतर से पौने दस फुट है। उसके चारों ओर की दीवारें तीन फुट सात इंच मोटी हैं, भूमरा की तरह ही इसके द्वार हैं। इस मंदिर का विशेष महत्व इसलिए है, कि इसके शिखर हैं, जो संभवतः भारत में शिखर का सबसे प्राचीन उदाहरण है। उसके परवर्तीकरण के मंदिर में सपाट छत का स्थान शिखर लेने लगता है।[1]

## 5. भीतरी गांव का मन्दिर

"कानपुर जिला कानपुर नगर से लगभग दक्षिण में भीतरगांव स्थित है। जहां गुप्तकालीन एक भव्य मंदिर है। यह ईटों का प्राचीनतम् शिखरयुक्त मंदिर है। यह मंदिर एक ऊँचे चबूतरे (जगतीपीठ) पर निर्मित है। इसकी तीन की ओर बहारी दीवारें बीच में आगे की ओर निकली हुई है, पूर्व की ओर (सामने)ऊपर जाने की सीढ़िया और द्वार है, द्वार के भीतर मंडप है, और फिर उसके आगे गर्भ गृह में जाने का द्वार है। गर्भगृह के ऊपर एक कमरा है, मंदिर की छत शुंडाकार है। इसकी बाहारी दीवारों को देवी देवताओं की मूर्तियों से सजाया गया है।[2]

---

1. बनर्जी, दी ऑफ इम्पिरियल गुप्ताज़, पृ. 135–138
2. पुरातत्व विभाग (ग्वालियर राज्य) का वार्षिक प्रतिवेदन, पृ. 119

## 6. तिगवा का मंदिर

"जबलपुर जिला (मध्य प्रदेश) में तिगवा नामक स्थान पर ऊँचे टीले पर एक मंदिर स्थित है। कनिंधम के मतानुसार उस स्थान पर दो मंदिर थे, एक सपाट छतवाला और दूसरा आमलकयुक्त शिखरवाला यह उदयगिरि के गुप्त मंदिर के समान है। कनिंधम ने इसे पांचवी शताब्दी का माना जाता है। काष्ठ के उपरकण का पत्थर में अनुकरण, वस्तु की प्रारंभिक अवस्था की ओर संकेत करता है। बचे हुए वर्तमान मंदिर का गर्भगृह वर्गाकार आठ फुट है। उसके भीतर नरसिंह की मूर्ति प्रतिष्ठित है।[1]

## 7. सांची का मंदिर

सांची के महास्तूप के दाहिनी ओर एक छोटा सा गुप्तकालीन सपाट छतों वाला मंदिर है। और चार स्तंभों पर आधृत है। इसमें द्वार मंडप है। स्तंभों के अतिरिक्त भवन में कही भी अलंकरण नहीं है यह भीतर से वर्गाकार 8 फुट 2 इंच और बाहर से 20 फुट लम्बा और पौने तेरह फुट चोड़ा है।

## 8. उदयगिरि का मंदिर

बिदिशा से 34 मील उत्तर की ओर उदयगिरि में सांची के मंदिर के समान एक गुप्तकालीन मंदिर है। इसमें भी गर्भगृह और मंडप है। छत सपाट है[2]

## 9. मुकंद दर्रा मंदिर

कोटा (राजस्थान) में एक पहाड़ी दर्रे के अन्दर मुकंद दर्रा नामक एक छोटा सा मंदिर है। इसकी छत सपाट है स्तंभों पर आधृत मंडप है। मंडप से लगभग चार फुट हटकर तीन और दो–दो अर्ध स्तंभ है। उन पर शीर्ष, शीर्ष पर सिरदल और सिरदल पर कमल अंकित चौकोर पत्थर रखे है, मंदिर के चारों ओर प्रदक्षिणा पथ है। अर्ध मंडप भी है इसे गुप्तकाल के प्रारंभ का मंदिर माना जाता है।

---

*1. माधव स्वरूप वत्स कृत टेम्पुल ऐट देवगढ़(नेम्वायर्स आफ आर्कियोलोजिकल सर्वे आफ इंडिया नं. 17) और कनिंधम कृत आर्कियोजिकल सर्वे रिपोर्ट, 10,105।*

---

1. कनिंधम कृत आर्कियों लोजिकल सर्वे रिपोर्ट, 11,40 और आर्कियोंलोजिकल सर्वे आफ इडिया– एनुअल रिपोर्ट, 1908–09 पृ. 8।
2. उपाध्याय भगवत शरण, गुप्तकाल का सांस्कृति इतिहास, पृ. 114–115

## 10. शंकरमठ का मंदिर

तिगवा (जबलपुर) से तीन मील पूरब की ओर कुंडा नामक ग्राम में एक लाल पत्थर द्वारा निर्मित छोटा सा विष्णु मंदिर है। जो शंकरगढ़ के नाम से पुकारा जाता है यह लम्बे पत्थर द्वारा निर्मित है। जिसमें चूना या गारे का प्रयोग नहीं किया गया है। इसे प्रारंभिक गुप्तकालीन माना गया है।[1]

## 11. ऐइहोलि का मंदिर

महाराष्ट्र के बीजापुर जिला के अंतर्गत ऐइहोलि में एक गुप्तकालीन मंदिर है। इसकी बनावट अन्य गुप्त मंदिरों से मेल खाती है। यहां गंगा और यमुना की मूर्तियां अंकित है।

## 12. कहौम (कंहाव) का मंदिर

देवरिया जिला में कंहाव नामक स्थान पर जैन ध्वज स्तंभ के निकट एक गुप्तकालीन मंदिर है। यह भीतरगांव और बोधगया के मंदिरों के समान है। कनिंधम ने भी मंदिर के ध्वंसाशेष का उल्लेख किया है। उसका गर्भगृह केवल नौ वर्ग फुट है, और उसकी दीवार केवल डेढ़ फुट मोटी है।

## 13. आहिच्छत्र का मंदिर

आहिच्छत्रा (जिला बरेली) में उत्खनन के फलस्वरूप एक विष्णु मंदिर के अवशेष मिले हैं। मंदिर का निर्माण अनेक तल्लों की पीठिका पर हुआ था। और पीठिका का प्रत्येक तल अपने ऊपर के चौकोर स्वरूप के चारों ओर प्रदक्षिणापथ का कार्य करता था। गंगा यमुना की मूर्तियों के चिन्ह मिले हैं इसे 450 और 650 ई. के बीच का माना जाता है।

## 14. पवाया का मंदिर

अहिच्छत्र के समान ही तीन तल्लों का ईटों का निर्मित एक चौकौर वास्तु पद्मावली(पवाया) से प्रकाश में आया है नीचे तल्ले का ठोस भाग सादा है। ऊपरी तल्लों के बाहारी भाग अनेक फलकों एवं अर्ध स्तंभों से अंलकृत था, और उनके ऊपरी भागों में गवाक्षों की कतार थी। तल्लों के ऊपर गर्भगृह के होने का अनुमान किया गया है। और नीचे के तल प्रदक्षिणा पथ का काम करते थे, संभवतः यह विष्णु मंदिर था।[2]

---

1. मुखर्जी, आर.के., दः गुप्ता. एम्पायर, पृ. 300–302
2. उदय नारायण राय, प्राचीन भारत में नगर तथा नागरिक जीवन, पृ. 60–62

## 15. महाबोधि मंदिर

बोधगया के महाबोधि मंदिर को चीनी यात्री हुएनसांग ने देखा था। इसमें गवाक्षों की अनेक पंक्तियां थी, जिनमें बुद्ध की मूर्तियां रखी थी। भीतरगांव के मंदिर की भांति यह भी ईटों द्वारा निर्मित था। इसमें भी शिखर, गवाक्षी की पंक्तियाँ ऊपर कमरे ओर द्वार के सिरे वृत्ताकार थे, इन मंदिरों के अतिरिक्त गुप्तकालीन मंदिर के समान नालंदा ओर कुशीनगर आदि स्थानों में भी गुप्तकालीन सरीखे मंदिर बने थे।

# उपसंहार

गुप्तकाल को प्राचीन भारत का क्लासिक युग या स्वर्णयुग कहा गया है। पारंपरिक भाषा में इसका अर्थ ऐसे युग से है, जिसमें साहित्य, वास्तुकला व ललित कलाएँ एक ऐसे स्तर पर पहुंच जायें, कि वे आने वाले युगों के लिये आदर्श बन जाएं। इस काल में जीवन स्तर पर्याप्त ऊँचाई पर पहुंचा हुआ था।

गुप्तकाल को हिंदू पुनर्जागरण का काल मानना भी कठिन है। गुप्त मूर्तिकला के सर्वोत्तम उदाहरण सारनाथ की मूर्तियों और चित्रकला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण अंजता के भित्ति चित्रों में देखे जा सकते हैं। पुराणों की रचना तथा वे सिक्के व शिलालेख है जिनसे गुप्त राजाओं द्वारा वैष्णव धर्म को प्रोत्साहन देने का प्रमाण है।

शकों और हूणों से युद्ध करने के कारण राम गुप्त को छोड़, अन्य गुप्त सम्राटों को राष्ट्रीयता की पुर्नस्थापना का श्रेय दिया गया है। इसी युग में देश का एकीकरण किया गया। गुप्त वंश के अभ्युदय से पहले भारत अनेक छोटे–छोटे राज्यों में विभक्त था। गुप्त साम्राज्यवाद के कारण वे राज्य समाप्त हो गए और भारत में एक संयुक्त, केन्द्रित तथा सशक्त प्रशासन की स्थापना हुई। विदेशी तथा देशी राज्य दृष्टि से लुप्त हो गए।

गुप्त शासक एक कार्य कुशल शासन प्रणाली स्थापित करने में सफल हुये। सारे देश में एक ही शासन पद्धति स्थापित की गई। नागरिक तथा सैनिक सेवाओं की पुनर्व्यवस्था की गई। कर्मचारी प्रजा के हित का चिन्तन करने लगे। अराजकता तथा अव्यवस्था को समाप्त किया गया। अतः शान्ति, व्यवस्था तथा सुरक्षा स्थापित हो गई। गुप्त काल में घरेलू तथा विदेशी वाणिज्य तथा व्यापार में अत्यधिक वृद्धि हुई। चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा पश्चिमी क्षत्रपों के राज्य को साम्राज्य में मिला लेने के बाद ये और भी बढ़ने लगे। वाणिज्य और व्यापार की वृद्धि से देश में सम्पत्ति तथा समृद्धि में भी वृद्धि हुई। भारत के पश्चिमी तट पर पाये गये बहुत से सोने के सिक्कों से ज्ञात होता है, कि भारत का व्यापारिक सन्तुलन उसके हित में ही था।

इसी युग में ही भारत ने सांस्कृतिक विकास तथा उपनिवेश स्थापना का कार्य आरम्भ किया। भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता, जावा, सुमात्रा, बाली, बोर्नियों, चीन आदि में फैल गई। इसी समय बृहत्तर भारत की स्थापना हुई।

गुप्तकाल से ही संस्कृत का अध्ययन विकसित हुआ गुप्त शासकों के संरक्षण में इसमें पर्याप्त सहायता मिली। वे किसी स्थान पर भी किसी से तथा सभी से कुछ सीखने को तत्पर थे। यह बात वराहमिहिर के इस कथन से स्पष्ट होती है, "यवन म्लेच्छ है फिर भी नक्षत्र विज्ञान उन्हीं से आरम्भ हुआ, अतः देवताओं की तरह उनका मान करना चाहिए।"

गुप्त काल से ही ललित कला ने भी अद्‌भुत प्रगति की। भवन–निर्माण कला, मूर्ति कला तथा चित्रण कला तथा मूर्तिकला की तीन परस्पर समबद्ध कलाओं ने सफलता का उच्चशिखर प्राप्त किया। भारतीय कलाकारों ने अभूतपूर्व सफलताएं प्राप्त की।

गुप्त शासक ही अंतिम हिन्दू साम्राज्य निर्माता थे, और इसी युग में हिन्दू ध र्म का पुनरूत्थान भी हुआ। यदि यह मान भी लिया जाए, कि गुप्त वंश के अभ्युदय से पूर्व भी हिन्दू धर्म ने सिर उठाना आरम्भ कर दिया था तो इतना कहना ही होगा कि हिन्दू धर्म का गुप्त काल में ही सर्वाधिक विकास हुआ। गुप्त शासकों ने वैष्णव धर्म को सशक्त बनाया और इसे एक नयी स्फूर्ति प्रदान की।

गुप्त सम्राटों के काल में भारतवर्ष सामाजिक एवं भौतिक उन्नति की उल्लेखनीय पराकाष्ठा पर पहुंच चुका था। समुद्रगुप्त देश को एकबद्ध करने की भावना (धरणिबन्ध) से प्रेरित था। उसके उत्तराधिकारियों का 'कृत्स्नपृथ्वीविजय' तथा 'सर्वपृथ्वीविजय' उसकी योजना के अन्तर्गत आता था। गुप्त काल में शान्ति और व्यवस्था की स्थापना हुई, जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय जीवन के विविध क्षेत्रों में सर्वागीण विकास सम्भव हो सका।

गुप्तों की शासन व्यवस्था की प्रशंसा करता हुआ चीनी यात्री फाहियान

लिखता है, कि भारत वर्ष के लोग समृद्ध एवं सम्पन्न थे। उन्हें किसी तरह की लिखा पढ़ी नहीं करनी पढ़ती थी। वे न्यायालयों  के बन्धनों से मुक्त थे। जो राजकीय भूमि को जोतते थे, उन्हें उसकी उपज का अल्प भाग कर के रूप में देना पड़ता था। उन्हें व्यक्तिगत स्वन्तत्रता प्राप्त थी। अतएव राज्य उनके व्यक्तिगत मामलों में हस्तक्षेप नहीं करता था। कठोर दण्ड या फासी की सजा नहीं दी जाती थी। लोग अपराध के अनुसार हल्का या कड़ा दण्ड पाते थे। राजद्रोह या सम्राट के जीवन के विरूद्ध षड़यन्त्र करने पर उनका केवल दाहिना हाथ काट लिया जाता था। राजा के अंगरक्षक या परिचारक तथा अन्य कर्मचारी अच्छा वेतन पाते थे और इस कारण सन्तुष्ट थे। जूनागढ़ के लेख में गुप्तों की शासन व्यवस्था की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि  उस समय कोई दुःखी, दरिद्र, व्यसनी, कठिन दण्ड से पीड़ित अथवा राजकीय नियन्त्रणों से कष्टयुक्त नहीं था। कालिदास ने अपने आदर्श नरेश के शासन प्रबन्ध की प्रशंसा करते हुये कहा है कि उनके शासन काल में उपवनों में मद पीकर सोती हुई पुर सुन्दरियों के वस्त्र को वायु तक नहीं छू सकता था। भला उनके आभूषणों को चुराने का साहस किसमें संभाव्य था। कालिदास गुप्तकालीन थे, अतएव यह गुप्तों के ही शासन की प्रशंसा हो सकती है। गुप्तों के राज्यकाल में कहीं भी चोरी और डकैती का कोई भय नहीं था।

राजा (सम्राट) न्याय, सेना तथा दीवानी विभाग का अध्यक्ष था। प्रधान सेनापति के रूप मे उसे सेना का नेतृत्व करना पड़ता था। महत्वपूर्ण नियुक्तियां वह स्वयं करता था। लोग सम्राट को पृथ्वी की तरह ईश्वर का प्रतिनिधि समझते थे। प्रयाग प्रशस्ति में समुद्रगुप्त को देव कहा गया है (लोकधाम्नों देवस्य)। इस लेख के अनुसार वह मनुष्य वहीं तक था, जहां तक कि वह लौकिक क्रियाओं का अनुष्ठान करता था। प्रयाग प्रशस्ति में उसे 'अचित्यपुरूष (भगवान विष्णु के तुल्य) कहा गया है तथा  उसकी तुलना कुबेर, वरूण, इन्द्र तथा यमराज आदि से की गई है धनदवरूणेन्द्रान्तकसमस्य'। वह 'परमदैवत्' उपाधि धारण करता था। यह उपाधि उसकी दैवी उत्पत्ति की ओर संकेत करती है। उसकी कतिपय अन्य उपाधियां थी; उदाहरण, महाराजाधिराज, एकाधिराज, परमेश्वर तथा चक्रवर्तिन सम्राज्य के विभिन्न भागों की यथातथ्य सूचना पाने के हेतु सम्राट बताया करता था। सम्राट शासन के

कार्यो में मंत्रिमंडल की सहायता लेता था। इसके सदस्यों को अमात्य, सचिव अथवा मन्त्री कहा जाता था।

गुप्त वंश के समय में भारतीय समाज चार जातियों में विभक्त था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। व्यक्ति को चार 'आश्रमो' या जीवन के विभिन्न भागों के लिये कुछ कर्त्तव्य निर्धारित थे। राजा समाज का रक्षक था। ब्रह्माणों के आदर्शों तथा कर्तव्यों के सम्बन्ध में बहुत सी जानकारी प्राप्त होती है। वे बौद्धिक और आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने के पक्ष में थे। उन्हें सांसारिक वस्तुओं से कोई सरोकार न था। योगी ब्राह्मण 'सिद्धि' और 'मोक्ष' की प्राप्ति के लिये 'ध्यान' या चिन्तन करते थे। मुनि लोग कठिन तपस्या करते थे। भक्ति ही उनके जीवन का एकमात्र कर्म था। समाज के सभी अंग ब्राह्मण को आदर की दृष्टि से देखते थे। यदि संत किसी स्थान पर रहते थे तो उस स्थान को पवित्र समझा जाता था। राजवंशों के आचार्य या अध्यापक ब्राह्मण ही होते थे। गुप्त अभिलेखों में कई गोत्रों का उल्लेख है, यथा भारद्वाज गोत्र, भार्गव गोत्र, आग्नेय गोत्र, गौतम गोत्र, वत्स्य गोत्र, कश्यप गोत्र, कण्व गोत्र इत्यादि।

गुप्तकाल में दास प्रथा प्रचलित थी। यह प्रथा भारतीय समाज में गुप्तों के पूर्व से ही चली आ रही थी। समाज की इकाई संयुक्त परिवार था। गुप्त काल के अभिलेखों में परिवार का मुखिया पिता या वयोवृद्ध व्यक्ति होता था वही परिवार कें हित में दान पुण्य करता था। समाज में विवाह का महत्वपूर्ण स्थान था। यद्यपि एक पत्नी सर्वमान्य थी। चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा कुमार गुप्त प्रथम की अनेक पत्नियां थी। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने अपने ज्येष्ठ भ्राता रामगुप्त की विधवा पत्नी ध्रुवदेवी से विवाह किया था। अनमेल वृद्ध विवाहों का भी प्रचलन था।

गुप्तकालीन समाज में कुछ साक्ष्यों द्वारा यदा – कदा सती प्रथा के उदाहरण भी प्राप्त होते है। गुप्तकालीन समाज का खान पान भी विविधापूर्ण एवं रूचिकर था। फाह्यान ने स्पष्ट लिखा है – 'लोग सुअर तथा मुर्गियां समाज द्वारा बहिष्कृत है, शिकार खेलते है, तथा मांस का क्रय का करते है। गुप्तकालीन समाज के वस्त्राभूषण के विषय में तत्कालीन साहित्यिक ग्रन्थों तथा कलाकृतियों से प्रचुर

ज्ञान प्राप्त होता है। जनता साधारण सूती वस्त्रों का प्रयोग करती थी। समृद्ध पुरूष और उच्च श्रेणी के लोग रेशमी, ऊनी, तथा मलमल के वस्त्र धारण करते थे। गुप्तकालीन समाज में मनोरंजन के विविध रूपों का प्रचार था। स्त्री–पुरूष शतरंज तथा चौपड़ की तरह कोई खेल खेलते थे। गुप्तकाल में उत्सवों में सम्मिलित होना अथवा भाग लेना सामाजिक शिष्टता का प्रतीक माना जाता था। गुप्त सम्राट विष्णु के उपासक थे।गुप्त सम्राट अपने आपको 'परमभागवत' कहते थे।गुप्तकाल में वैष्णव धर्म संबंधी सबसे महत्वपूर्ण अवशेष देवगढ़ (झांसी) का दशावतार मंदिर है। जिससे ज्ञात होता है, कि मुख्य मंदिर के चारों ओर अन्य देवताओं के चार छोटे छोटे पूजा स्थल है। इस मंदिर में शेषनाग की शैया पर विश्राम करते हुए नारायण विष्णु को दिखाया गया है।

गुप्तकाल में भागवत धर्म अपनी पराकाष्ठा पर था। सन् 300 से 650 ई. के बीच वैष्णव धर्म का केवल प्रसार ही नहीं हुआ वरन् अनेक रूपों में उसका विकास भी हुआ। यह विकास प्रधानता अवतारवाद के रूप में था। वैष्णव धर्म में पहले से चले आ रहे अवतारवाद के विचार को विशेष रूप से विकसित किया गया। ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार विष्णु के 39 अवतार हुये किन्तु 10 अवतारों को आम तौर पर स्वीकार किया गया है। नारायण संकर्षण, लक्ष्मी जैसे देवी–देवताओं को वैष्णव धर्म का अंग मान लिया गया है। पुराणों का जो अब रूप प्राप्त होता है उसकी रचना इसी काल में हुई। हिन्दू धर्म के साहित्य को लोकप्रिय बनाने और उसमें नवीनता लाने की दृष्टि से ब्राह्मण धर्मशास्त्रों का संशोधन और परिवर्तन गुप्तकाल में हुआ, रामायण व महाभारत को अंतिम रूप दिया गया उन विद्वानों में हरिषेण, वप्पभट्टी तथा वासुल महत्वपूर्ण है। कालिदास की प्रसिद्ध रचनायें ऋतुसंहार, मेघदूत, कुमारसंभव तथा रघुवंश गुप्तकालीन ही है। शूद्रक का मृच्छकटिकम् अपवाद है। विशाखदत्त ने दो नाटकों की रचना 'मुद्राराक्षस' और ' देवीचन्द्रगुप्तम्' गुप्त युग में की। गुप्त कालीन ग्रन्थ विष्णु पुराण के अनुसार ब्राह्मण । अपने नाम के अन्त में शर्मा, वैश्य और शूद्र, वर्मा, गुप्त एवं दास शब्द जोड़ने लगे।

गुप्त राजाओं के राजाश्रय से वैष्णव धर्म लोकप्रियता की चरम सीमा पर

पहुंचा। अनेक गुप्त नरेशों का व्यक्तिगत धर्म वैष्णव धर्म था। चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के समान अनेक गुप्त सम्राटों ने अपने सिक्कों पर नाम के साथ 'परमभागवत' विशेषण का प्रयोग किया है। चन्द्रगुप्त द्वितीय और समुद्रगुप्त के सिक्के पर विष्णु वाहन गरूड़ की प्रतिमा अंकित है। इन मुद्राओं के ऊपर वैष्णव धर्म के अन्य प्रतीक शंख, चक्र, गदा, पदम तथा लक्ष्मी भी प्राप्त होते हैं। गुप्त सम्राटों के काल में अनेक वैष्णव मंदिरों का निर्माण हुआ।

## अभिलेख

गुप्त नरेशों का व्यक्गित धर्म वैष्णव मत था। उनकी उपाधि 'परमभागवत' थी। प्रयाग प्रशस्ति के अनुसार उनकी राजाज्ञाएं गरूड़ध्वज से अंकित (गरूत्मदःक) हुआ करती थी। अनेक शिलालेखों में भक्तों द्वारा बनवाये गये विष्णु मंदिरों व विष्णुध्वजों का वर्णन है। गंगाधर अभिलेख में विष्णु को 'मधुसूदन' कहा गया है। चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य ने विष्णुपद नामक पर्वत के ऊपर विष्णुध्वज की स्थापना की थी। स्कंद गुप्त के एक स्तंभ लेख में वासुदेव कृष्ण की मूर्ति का उल्लेख है, और यह कहा गया है कि उसकी पूजा के लिये एक ग्राम का दान किया गया था। स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ का स्तम्भ लेख तथा बुधगुप्त का एरण का स्तम्भ लेख विष्णु की स्तुति से आरम्भ होता है। जूनागढ़ के लेख के अनुसार चक्रपालित नामक कर्मचारी ने विष्णु मन्दिरों का निर्माण किया।

गुप्त काल में वैष्णव धर्म पूर्ण रूप से विकसित हो चुका था। विष्णु की अनेक अवतारों की मूर्तियां बनायी जाने लगी। अवतारों में वराह, कृष्ण और राम अधिक लोकप्रिय थे। गुप्त मूर्तियों से ज्ञात होता है, कि विष्णु और उसके विभिन्न अवतारों की पूजा उससमय बहुत लोकप्रिय थी। विष्णु की मूर्ति में मानव सिर के साथ वाराह और सिंह के सिर दिखाया गया है, जिसे गुप्त मूर्तिकारों की कुशलता का स्मारक माना गया है। प्रयाग में गंगा–यमुना के संगम पर विलीन दृश्य प्रस्तुत किया गया। उनके चिहन थे गंगा यमुना देवियां जो अपने–अपने वाहन मकर और कछुए पर खड़ी है।

गुप्त कलाकारों ने देवगढ़ मन्दिर चित्रित किया। वह हिन्दू मूर्तिकला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। गुप्त काल में बुद्ध मूर्तियों बनाई जाती थी। गुप्त काल में बुद्ध की मूर्तियों के बाल धुंधराले हैं। बुद्ध मूर्ति के दीप्ति चक्र में विभिन्न प्रकार के ललित अलंकारों का प्रयोग किया गया है। गुप्त कलाकारों ने पारदर्शक वस्त्र प्रयोग किए । उन मूर्तियों में कला की नवीनता तथा सजीवता दिखाई देती है। मथुरा से प्राप्त विष्णु मूर्ति गुप्त कला का श्रेष्ठ उदाहरण है। इसमें सन्तोष और शान्त आत्म चिन्तन दिखाई पड़ता है।

# " परिशिष्ट "

भारत वर्ष हृदयस्थल कहा जाने वाला वीरभूमि बुन्देलखण्ड अपने सांस्कृतिक महत्व के लिय किसी अन्य प्रान्त से कम नही रहा। यहाँ हिन्दू, जैन और बौद्ध धर्मो की त्रिवेणी निरन्तर प्रभावित होती रही है। खजुराहो के विश्व विख्यात मंदिरो में जैन तीर्थ स्थलो की प्रतिमाओं से प्रतिष्ठित दो जैन मंदिर तथा जैन धर्म से प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से सम्बन्धित अनेक प्रतीकों का होना, तथा देवगढ़ में दशावतार मंदिर के उपर पहाड़ी पर जैन अतिशय क्षेत्र का होना तथा दुधई, चाँदपुर और बानपुर में लगातार जैन प्रतिमाओं का पाये जाना चन्देल शासकों की धार्मिक सहिष्णुता और धर्म निरपेक्षता का उदारवादी नीति का ज्वलंत उदाहरण है। इसी प्रकार बुन्देलखण्ड के किसी भी स्थलों से बुद्ध, विधि तत्वों, चातक कथाओं के चित्र आदि से सम्बन्धित स्मारक इस क्षेत्र में प्राप्त हुये है।

मध्य प्रदेश के सागर जिले की खुरई तहसील में स्थित उरण नामक ग्राम में पाँचवी, छठी शताब्दी की (गुप्तकालीन) एक स्थानक विष्णु मूर्ति प्राप्त हुई जो है, जो बड़ी ही अथितीय है। ऐसे ही नृवराह और पशुवराह की भी मूर्ति यहाँ से प्राप्त हुई है।[1]

उत्तर प्रदेश के ललितपुर जनपद के अन्तर्गत स्थित चाँदपुर में तो वराह मंदिर भी निर्मित था जिसके अवशेष आज भी विद्धमान है यहॉ विष्णु मंदिर निर्मित है, यहॉ एक लक्ष्मी नारायण मंदिर भी है जो इस क्षेत्र के वैष्णव मत की पुष्टि करता है। यह समस्त स्मारक आजकल केन्द्र सरकार के संरक्षण में है।

देवगढ़ का दशावतार मंदिर तो अपनी स्थापत्यीय विशेषताओं के कारण इस क्षेत्र में खजुराहो के पश्चात, द्वितीय स्थान पर प्रतिष्ठित है, खजुराहो आने वाला हर पर्यटक देवगढ़ अवश्य आता है। और दशावतार मंदिर को देखकर आश्चर्यचकित रह जाता है इसकी द्वार शाखो आत्मना कलात्मक है। बीच–बीच में सुन्दर बल्लरियों व वौनी आकृतियों से गर्भगृह के प्रवेश द्वार को अलंकृत किया गया है। इसमें दाम्पत्य प्रेम के दृश्य बड़ी कुशलता से उकेरे गये हैं। गर्भगृह में इस समय यहॉ गुप्त शासक रामगुप्त की कुछ ऐसी मुद्रायें मिली है, जिन पर उनका राजचिन्ह गरूण ध्वज बना है। कुछ सिक्को पर राजगुप्त लिखा है, एरण में सिक्के और मुद्राये न केवल रामगुप्त के वैष्णव होने का संकेत करती है अपितु उसको एतिहासिकता भी प्रमाणित करती है। मंदिर के ललाटबिम्ब पर शेषासीन विष्णु की मूर्ति है, जिसके आस पास नृसिहं तथा वामन बैठे हैं।

---

1. बन्देलखण्ड का पुरातत्व, पृष्ठ–74

मंदिर की तीन ओर सुन्दर फलक लगे हैं। दक्षिण की ओर शेषशायी विष्णु की मूर्ति है यहाँ विष्णु को शेषनाग के उपर शयन करते हुये दिखाया गया है लक्ष्मी उनका पैर दबा रही है, उनकी नाभी से निकले कमल पर बृहमा आसीन हैं। आकाश में इन्द्र, शिव और अन्य देवता गज अपने अपने वाहनों पर आरूढ़ होकर इस लीला को देखने आये हैं। इसमें गजेन्द्र मोक्ष भी चित्रण हैं। साथ ही रामायण और कृष्ण लीला में भी दृश्य बड़ी कुशलता से चित्रित किये गये हैं।

चाँदपुर दुधई में भी विष्णु की अनेक स्थानक तथा अस्थानक प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं। यहाँ से नृसिंह तथा वामन की भी मूर्तियाँ मिली हैं। नृसिंह अवतार की एक प्रतिमा में विष्णु भगवान को हिरण्य काशीपुर से आमने–सामने युद्ध करते हुये दिखलाया गया है। यहाँ से विष्णु की अष्टभुजी तथा चतुर्विंशित मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं, जो कला और मूर्ति विज्ञान की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। समस्त प्रतिमायें वर्तमान में रानी महल संग्रहालय झांसी में संकलित है। यहाँ पर दामोदर, केशव, नारायण और श्रीधर के सुन्दर अंकन हुये हैं।

कालिंजर में एक चौदह भुजी विष्णु की मूर्ति प्राप्त हुई है, जिनकी संख्या अन्यत्र न के बराबर हैं। अतः इस प्रतिमा का विशेष महत्व है। बानपुर से शेषशायी विष्णु की आदमकद प्रतिमा प्राप्त हुई है।[1]

खजुराहो के आस–पास विष्णु के कई मंदिर मिले हैं, जो न केवल अपनी स्थापत्यीय विशेषताओ के लिये प्रसिद्ध हैं, अपितु वे इस क्षेत्र में वैष्णव धर्म की व्यापकता के लिये भी महत्वपूर्ण है। खजुराहो से तीन किमी0 दक्षिण एवं जतकारी ग्राम से लगभग 3 फलांग दक्षिण पश्चिम की ओर राजनगर से वसीठा जाने वाले बस मार्ग पर खुदार नाला के दक्षिण किनारे पर चतुर्भुज अथवा जतकरी का विष्णु मंदिर निर्मित हैं। यह जवारी के विष्णु मंदिर की भाँति ही बना हैं। यह मंदिर मिथुन–चित्रण अथवा अश्लील दृश्यांकन से मुक्त हैं।[2]

यहाँ दूसरा मंदिर देवी जगदम्बी का हैं। सम्प्रति इस मंदिर में माता पार्वती की प्रतिमा स्थापित हैं। पार्वती जगदम्बा स्वरूपा हैं अतः यह मंदिर जगदम्बी के नाम से प्रसिद्ध हो गया हैं। इस मंदिर के गर्भगृह के सिरदल के मध्य देश विष्णु के उपस्थित रहने के कारण इस मंदिर की प्राचीनता विष्णु मंदिर के नाम से ही स्थापित की जाती है। खजुराहो परिवार का एक और विष्णु मंदिर वर्तमान में लक्ष्मण मंदिर के नाम से विख्यात हैं। यह मंदिर पंचायतन शैली में निर्मित हैं इस मंदिर की नीचे वाली पट्टिका में ललाटबिम्ब में लक्ष्मी की प्रतिमा का अंकन हैं। अतः इस मंदिर की मान्यता विष्णु मंदिर के रूप में मान्य हैं। यहाँ के वामन अवतार मंदिरों के दक्षिण में लगभग 200 मीटर की दूरी पर जवारी मंदिर निर्मित है। जो विष्णु को समर्पित हैं।

---

1. बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, पृष्ठ 46–47

गर्भगृह में इस समय यहॉं गुप्त शासक रामगुप्त की कुछ ऐसी मुद्रायें मिली है, जिन पर उनका राजचिन्ह गरूण ध्वज बना है। कुछ सिक्को पर राजगुप्त लिखा है, एरण में सिक्के और मुद्राये न केवल रामगुप्त के वैष्णव होने का संकेत करती है अपितु उसको एतिहासिकता भी प्रमाणित करती है। मंदिर के ललाटबिम्ब पर शेषासीन विष्णु की मूर्ति है, जिसके आस पास नृसिहं तथा वामन बैठे हैं।

छोटा परन्तु सुन्दर, अलंकृत आकार संयोजन में परिपूर्ण होने के कारण इस मंदिर की वस्तुरत्न की संज्ञा दी गई हैं। 1

विष्णु का पंचम अवतार वामन सर्वमान्य हैं। बृहमा मंदिर के पास ही वामन अवतार का मंदिर निर्मित है। इसकी निर्माण शैली जगदम्बी एवं चित्रगुप्त मंदिर के समतुल्य हैं।

विष्णु को समर्पित एक मंदिर वरूआसागर (झांसी), रहित्या और हमीरपुर और मेन्सवाह (सागर) में भी स्थित है। 2

---

1. कृष्णदेव, खजुराहो, पृष्ठ– 36
2. एन्श्येन्ट, बुन्देलखण्ड, पृष्ठ–15

# ग्रन्थ सूची

## आधार ग्रन्थ

अथर्ववेद, वर्लिन, 1856.

अग्निपुराण, आनन्दाश्रम, प्रेस, 1900.

अमरकोश, (अमरसिंह कृत) बनारस, 1950.

अर्थशास्त्र (कौटिल्य कृत) अनुवादक आर. शामाशास्त्री, मैसूर, 1929.

आदिपुराण (जिनसेन कृत) वाराणसी, 1956.

ऋग्वेद (भाग 1 से 4 तक) लन्दन, 1890.

ऐतरेय ब्राह्मण (अनुवादक ए.बी. कीथ) कैम्ब्रिज, 1920.

कालका पुराण (सं. डॉ. चमन लाल गौतम) बरेली, 1986.

कादम्बरी (बाणकृत) अनुवादक एम.आर. काले, बम्बई, 1928.

कालिदास ग्रन्थावली (सं. पं. सीताराम चतुर्वेदी) वाराणसी, 1980.

बौधायन धर्मसूत्र, आक्सफोर्ड, 1882.

भागवतपुराण, गोरखपुर

मुद्राराक्षस (विशाखदत्त कृत)

मत्स्य पुराण, बरेली

मनुस्मृति, बम्बई

वशिष्ठ धर्मसूत्र, बम्बई, 1883

वायुपुराण, बरेली, 1967

वाराहपुराण

बाजसनेय संहिता

वासुदेवार्जुनाभ्यां (पाणिनि)

विष्णुपुराण (सं.) एच.एच. विल्सन, कलकत्ता, 1961

विष्णुसहस्रनाम (शंकर भाष्य)

## सहायक ग्रन्थ (हिन्दी)

अग्रवाल, वासुदेव शरण, पाणिनि कालीन भारतवर्ष, बनारस वि.सं. 2012

अवस्थी, अवध बिहारी लाल, प्राचीन भरतीय भूगोल, लखनऊ, 1972

उपाध्याय, भगवतशरण, गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास

उपाध्याय, भरत सिंह, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, इलाहाबाद, वि.सं.2018

उपाध्याय, वासुदेव, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, इलाहाबाद,1939

प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, 1970

ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द्र, भारतीय प्राचीन लिपि माला (तृतीय संस्करण)

ओझा, राम प्रकाश, उत्तरी भारतीय अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन

कपूर, यदुनन्दन, हर्ष, 1957

गुप्त, परमेश्वरी लाल, गुप्त साम्राज्य, वाराणसी, 1991

भारत के पूर्वकालिक सिक्के, वाराणसी, 1996

प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख (खण्ड एक) वाराणसी, 1988

गोयल, श्रीराम, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, मेरठ, 1987

समुद्रगुप्त पराक्रमांक, मेरठ, 1987

गुप्तकालीन अभिलेख, मेरठ, 1984

प्राचीन नेपाल का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, बनारस, 1973

प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह, जयपुर, 1982

झा. जितेन्द्र नारायण एवं श्रीमाली कृष्ण मोहन, प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली, 1998

तिवारी गोरेलाल, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, काशी सं. 1990

द्विवेदी कैलाशनाथ, ऋग्वैदिक भूगोल, कानपुर 1985

प्रणवदेव, बुन्देलखण्ड का भौगोलिक इतिहास, जयपुर,2002

पाठक, विशुद्धदानन्द, उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास, लखनऊ, 1973

पाल, ब्रन्टन, गुप्त भारत की खोज (अनु.)

पाण्डेय, विमलचन्द्र, भारत वर्ष का सामाजिक इतिहास

प्राचीन भारतीय इतिहास

पाण्डेय, आर.एन. प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास

प्रारम्भिक भारत का राजनैतिक इतिहास

वाजपेयी कृष्णदत्त, भारतीय वास्तुकला का इतिहास, लखनऊ 1972

भण्डारकर,आर.जी., विष्णु , शैव और अन्य धर्म

महाजन, विद्याधर, प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली 1999

गुप्तकालीन भारत

मनराल, पी.डी. प्राचीन भारत का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास

मिश्र जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास

मिश्र, शिवनन्दन, गुप्तकालीन अभिलेखों से ज्ञात तत्कालीन सामजिक एवं आर्थिक दशा, 1973

राय, उदयनारायण, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, इलाहाबाद, 1965

गुप्त सम्राट और उनका काल, इलाहाबाद, 1971

विद्यालंकार, सत्यकेतु, भारत का सांस्कृतिक इतिहास

शर्मा, आर.एस. प्राचीन भारतीय राजनैतिक विचार एवं संस्थायें

शुक्ल, देवीदत्त, प्राचीन भारत में जनतंत्र

त्रिपाठी, भागीरथ प्रसाद, बुन्देलखण्ड की प्राचीनता, वाराणसी,1965

त्रिवेदी, एस.डी., बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, झांसी, 1984

श्रीवास्तव, एम.पी. प्राचीन अद्भुत भारत की सांस्कृतिक झलक, इलाहाबाद, 1988

श्रीवास्तव, कृष्णचन्द, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति

# सहायक ग्रन्थ (अंग्रेजी)

Alean, John, .Catalogue of the Coins of Ancient India, London, 1936.

Altekar, A.S. Position of Women in Hindu Civilization, Dehli, 1956.

Altekar, A.S. The Coinage of the Gupta Empire, Benaras, 1957.

Apte, V.S. Sanskrit English Dictionary.

Banerjea R.D. Gupta Lectures.

The Age of Imperial Guptas.

Banerjea, J.N. Development of the Hindu Iconography, Calcutta, 1956.

Bhandarkar, R.G. Vaisnavism, Saivisrm and minor Religious systems, Varanasi, 1969.

Dinkar, R.N. Civilization of the Gupta Age.

Fleet, JOhn Faithful, Corpus Inscriptions, Vol-III.

Gupta, P.L. The Imperial, Guptas.

Goyal, Sri Ram . History of the Imperial Guptas, Allahabad, 1967.

Joshi, Vishweshwaranand, Indological Journal.

Kaushal, Sarala, Gupta Civilization.

Mookerji, R.K. The Gupta Empire, Bombay, 1959.

Majumdar, R.C, & Altekar, A.S. (Ed.) The Vakataka - Gupta Age, Lahore, 1946.

Misra, S.N. Ancient Indian Republics, Meerut, 1976.

Raychaudhuri, H.C. Plotical History of Ancient India, Calcutta, 1953.

Rosers, Catalogue of coins collected by C.J.

Salatore, R.N. Life in the Gupta Age, Bombay, 1943.

Shah,K.K. Ancient Bundelkhand, Delhi,1988.

Shukla, R.S. India As known to Haribhadra Suri, Meerut, 1989.

Srivastava, Om Prakash Lal, Archacology of Erich, Varanasi, 1991.

## पत्रिका

अजस्रा, लखनऊ

ऋतम्, लखनऊ

इतिहास, नई दिल्ली

तुलसी चेतना (मासिक) मऊरानीपुर

दूधाधारी वचनामृत (मासिक) हरिद्वार

प्राग्धारा, उ.प्र. राज्य पुरातत्व संगठन की शोध पत्रिका, लखनऊ

शोधादर्श, लखनऊ

संग्रहालय पुरातत्व पत्रिका, लखनऊ

सम्मेलन पत्रिका, इलाहाबाद

## Journals Periodical etc.

Annals of Bhandarkar Oriental Research Institute

Annual Reports of the Archaeological Survey of India

Bombay Gazetteer

Corpus Inscriptionum Indicarum

Epigraphia Indica

Encyclopaedia of Indian Cluture

Indian Antiquary

Indian Review

Indian Historical Quarterly

Jaina Antiquary

Jina Manjari

Journal of Roya Asiatic Society of Bengal.

Lalitakala

Purana